श्री गणेश वर्णी दि० जैन ग्रन्थमाला प्रकाशन संख्या ३४

महाकवि देवीदास कृत

देवीदास-विलास

बुन्देली-हिन्दी-कवि की अद्यावधि अप्रकाशित दुर्लभ रचनाओं का सर्वप्रथम सम्पादन एवं प्रकाशन

सम्पादन-समीक्षा

डॉ. (श्रीमती) विद्यावती जैन

एम. ए. (द्वय) स्वर्णपदक प्राप्त, पी-एच.डी. साहित्यरत्न.

अध्यक्ष— हिन्दी विभाग,

म.म. महिला महाविद्यालय आरा, (बिहार)

(वीर कुँवरसिंह विश्वविद्यालय)

प्रकाशक

श्रीगणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान

नरिया, वाराणसी

वी. नि. सं. २५२१ सित., १९९४

General Editors

Prof. Dr. Raja Ram Jain, Arrah (Bihar, India)

Prof. Udai Chandra Jain, Varanasi .(U.P., India)

Published by

Sri Ganesh Varni Digambar Jain Sansthan

Naria, Varanasi— (U.P., India) 221005

© Sri Ganesh Varni Digambar Jain Sansthan

First Edition, September 1994

Price : Rs. 200.00

Printed at

Tara Printing Works

Varanasi

सम्मान्य सम्पादक

प्रो. डॉ. राजाराम जैन, आरा, (बिहार)

प्रो. उदयचन्द्र जैन, वाराणसी

प्रकाशक

श्रीगणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान

नरिया, वाराणसी— २२१००५

© श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान वाराणसी

प्रथम संस्करण, सितम्बर १९९४

मूल्य : रु. २००.००

मुद्रक

तारा प्रिंटिंग वर्क्स

वाराणसी

Sri Ganesh Varni Dig. Jain Publication Series No. 34

Poet Devīdāsa's

DEVĪDĀSA-VILĀSA

Written in old Bundeli-Hindi

Critically edited for the first time from old rare Mss. with an exhaustive Introduction, critical and comparative study and glossary etc.

By

Dr. (Smt.) VIDYAWATI JAIN

M.A. (Double, Gold Medalist), Ph.D., Sahitya-Ratna

Head of Hindi Department, M.M. Mahila College, Arrah (Bihar)

(Under V.K.S. University Services)

Published by

ŚRĪ GAṆEŚA VARṆĪ D.J. SAṀSTHĀNA

NARIA, VARANASI, (INDIA)

1994

शौरसेनी जैनागमों के परम उद्धारक,

बुन्देलभूमि के यशस्वी सुत,

महान् स्वतन्त्रता सेनानी,

कर्मठ समाजसेवी,

दार्शनिक, विचारक एवं निर्भीक ओजस्वी वक्ता, जिनवाणी-
सेवा के लिए सदा समर्पित व्यक्तित्व

तथा

महाकवि देवीदास के साहित्य के प्रकाशन के प्रेरक सूत्रधार,

श्रद्धेय पूज्य पण्डित फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री
की पुण्य-स्मृति में सादर समर्पित

— विद्यावती जैन

FROM THE PUBLISHER

Devidas-Vilas is a majestic work of the late 18th century. Its composer Shri Devidas was a gifted poet of Bundeli-Hindi. Besides he was a highly sensitive, spiritually inclined individual and matured philosopher. He had complete command on expression, classical forms of stanza and the varied literary styles. Also, he was a master of the different kinds of musical modes and melodies. The scholarly introduction to the work contains a detailed exposition and commentary on these and other aspects of *Devidas-Vilas*. It is indeed amazing to note that such a popular and scholarly poet of his times, who gave Bundeli-Hindi a strong literary base, has remained rather unknown and neglected for so long.

One of the important aims of Shri Ganesh Varni (Research) Institute has been to bring to light the rare and unpublished ancient Jain manuscripts. Accordingly, the Institute had published, a few years ago, the historical work of the great poet of Apabhramsh Maha-kavi Raidhu entitled ``*Acharya Bhadrabahu-Chanakya-Chadragupta Kathanak evam Raja Kalki Varnan*'' (Edited by Prof. (Dr.) Rajaram Jain) the publication has been highly acclaimed by scholars. The present work- *Devidas-Vilas* belongs to this category of publication.

We are greatly indebted to Dr. (Mrs.) Vidyawati Jain, who has restored the present work its rightful glory, and has carried out the delicate task of editing and making a critical and comparative study. She has rendered a great service to the literary world by unfolding the many facets of the personality and creativity of the poet Devidas.

We are hopeful that the Hindi literary world will gain new impetus and direction from this publication.

4th July, 1994
Shri Ganesh Varni Digambar Jain Sansthan
Naria, Varanasi—221 005

ASHOK JAIN
Vice-Chairman

प्रधान सम्पादकीय

महाकवि देवीदास के साहित्य को देखकर यह प्रतीत होता है कि उनका नाम कोई व्यक्तिवाची संज्ञा नहीं, बल्कि उत्तर-मध्यकालीन आध्यात्मिक-साहित्य का एक पर्यायवाची नाम बन गया है। महाकवि के व्यक्तिगत जीवन के अध्ययन से विदित होता है कि वे एक ऐसे नैष्ठिक श्रावक थे, जिनका परिवार तो बहुत बड़ा था किन्तु आजीविका के साधन अत्यल्प। वेवश परिस्थितियों के कारण वे अपने कन्धे पर अथवा बैल पर व्यापारिक वस्तुएँ लादकर (इस प्रक्रिया को बुन्देलखण्ड में आज भी बंजी-भौरी के नाम से जाना जाता है) ग्रामीण एवं आटविक इलाकों में बेचते फिरते थे और उससे उनकी जो भी आय होती थी, उसीसे अपने पूरे परिवार का भरण-पोषण किया करते थे। फिर भी, आत्मिक-सन्तोष तथा देव-शास्त्र एवं गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति उनमें इतनी अटूट थी, कि आर्थिक विपन्नता तथा उत्कट सुख-दुख के क्षणों में भी वे समवृत्ति से अपनी नियमित साहित्यिक साधना के लिए समय निकाल लेते थे। इस दृष्टि से हिन्दी-साहित्य के महान् रहस्यवादी सन्त कबीर से देवीदास की तुलना की जा सकती है। सन्त कबीर भी आजीविका हेतु तन्तुवाय (जुलाहे) का कार्य करते थे किन्तु समता-वृत्ति उनमें इतनी अधिक थी कि उन्होंने जिस अध्यात्मवाद से ओतप्रोत रहस्यवादी-काव्य साहित्य का प्रणयन किया, वह विश्व-वाङ्मय के अनूठे साहित्य की कोटि में आ गया।

महाकवि देवीदास की भी यही स्थिति थी। साधुओं का सान्निध्य, शास्त्र-श्रवण, नियमित-स्वाध्याय, आत्मचिन्तन एवं मनन ने उनमें गहरी आत्मानुभूति उत्पन्न की और उसीके सहारे उन्होंने हिन्दी-साहित्य के रीतिकालीन परिवेश में भी आध्यात्मिकता की जो धारा प्रवाहित की, वह विस्मयकारी एवं ऐतिहासिक मूल्य की सिद्ध हुई है। कवि ने जैनविद्या के विविध पक्षों को, कुछेक प्रसंगों को छोड़कर, प्रायः सीधीसादी सरल बुन्देली-हिन्दी में प्रकाशित किया है। चाहे वह जैन-दर्शन का पक्ष हो अथवा अध्यात्म, आचार अथवा पूजा-अर्चा का, चाहे इतिहास तथा संस्कृति का पक्ष हो अथवा समाज-शास्त्र का, उसने आगम-परम्परा को ध्यान में रखते हुए सभी विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। यही नहीं, उसने चित्र-बन्ध-

काव्य जैसी दुरूह एवं मस्तिष्क को द्राविड़ी प्राणायम करा देने वाली शैली में भी कुछ आध्यात्मिक रचनाएँ लिखकर अपनी विशिष्ट तकनीकी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनके अतिरिक्त भी रहस्यवादी एवं कूटपदों की रचनाकर हिन्दी-साहित्य में कबीर एवं सूर के बाद की अवरुद्धप्राय धारा को भी पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया। उसकी विस्तृत चर्चा प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना में यथास्थान की गई है।

देवीदास एक सन्त कवि थे और स्वस्थ समाज एवं राष्ट्र निर्माण की दिशा के गम्भीर विचारक थे। इसीलिए ''मनमथ नेजा नोंक सी'' के रीतिकालीन घोर संयोग-शृंगार की साहित्यिक-धारा के प्रवाह को उन्होंने आध्यात्मिक मोड़ देने का प्रयत्न किया। जिस प्रकार सूर एवं मीरा ने करताल लेकर अपनी संगीतात्मक राग-रागनियों को गा, बजाकर गाँवों एवं नगरों में अध्यात्म का अलख जगाया, उसी प्रकार देवीदास ने भी विविध शास्त्रीय एवं लोकानुरूप विविध राग-रागनियों के माध्यम से बिना किसी वर्गभेद अथवा वर्णभेद के, विविध विदेशी आक्रमणों से जर्जर एवं विविध अपमानों से उत्तप्त एवं पीड़ित तथा अपनी प्राचीन परम्पराओं की सुरक्षा के लिए व्याकुल मानवता में आशा एवं विश्वास जगाने का अथक प्रयत्न किया।

वर्णी संस्थान डॉ. (श्रीमती) विद्यावती जैन के प्रति अपना आभार व्यक्त करता है, जिन्होंने कठोर परिश्रम कर साहित्य जगत के एक विस्मृत महाकवि देवीदास की अप्रकाशित दुर्लभ रचनाओं का उद्धार कर उनका आधुनिक मानदण्डों के अनुरूप सम्पादन किया तथा विविध दृष्टिकोणों से तुलनात्मक एवं साहित्यिक समीक्षा प्रस्तुत की। मौलिक ग्रन्थ लेखन की अपेक्षा पाण्डुलिपियों का सम्पादन जितना दुरूह है, उतना ही वह धैर्यसाध्य, कष्टसाध्य एवं व्ययसाध्य भी। किन्तु सम्पादिका ने अपने साहित्यिक एवं सेवा सम्बन्धी अन्य दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी इस दिशा में जो श्रमसाध्य कार्य किया है, वह अत्यन्त सराहनीय है।

श्री गणेशवर्णी दि. जैन संस्थान का यह एक गौरव-ग्रन्थ माना जायगा, क्योंकि पूज्य गणेशप्रसाद जी वर्णी (जिनकी पुण्य-स्मृति में उक्त संस्थान संस्थापित है) स्वयं बुन्देलखण्डी थे और महाकवि देवीदास का जन्म-स्थल एवं साहित्यिक साधना-स्थल भी उनके जन्म-स्थल के अंचल में ही था और दोनों ही बुन्देलीभाषा एवं बुन्देलीभूमि के महान् सपूत थे। अतः यह एक सुखद संयोग ही माना जायगा कि प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन वर्णी-संस्थान की ओर से किया जा रहा है।

इसके प्रकाशन में यद्यपि कुछ विलम्ब हो गया है, फिर भी यह सन्तोष का विषय है कि संस्थान के पदाधिकारियों, विशेष कर प्रो. डॉ. अशोककुमार जैन (उपाध्यक्ष), प्रो. डॉ. सुदर्शनलाल जैन (प्रभारी-मन्त्री) तथा डॉ. सुरेशचन्द्र जैन (संयुक्त मन्त्री) आदि के विशेष सहयोग से इसका सुन्दर प्रकाशन सम्भव हो सका। इसके लिए हम उनकी सादर सराहना करते हैं तथा विश्वास करते हैं कि आगे भी संस्थान के सभी कार्यों में इसी प्रकार के उदार सक्रिय सहयोग मिलते रहेंगे।

श्री गणेश वर्णी दि. जैन संस्थान
नरिया, वाराणसी
श्रुतपञ्चमी, १६ जून, १९९४

प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन
प्रो. उदयचन्द्र जैन

आभार प्रदर्शन

जनवरी, १९७७ की वह सुनहरी दोपहर मुझे अभी भी स्मरण है, जब शौरसेनी आगम साहित्य के महान् उद्धारक श्रद्धेय पूज्य पण्डित फूलचन्द्र जी सिद्धान्ताचार्य, वाराणसी से मेरे घर पधारे। उनका आगमन मुझे ऐसा लगा जैसे मरुस्थल में कल्पवृक्ष मिल गया हो। पता नहीं, पूर्व जन्म के किन सुकर्मों का वह सुफल था कि एक सरस्वती पुत्र मेरी कुटिया पर आनायास ही आ गया। उस क्षण की अनिर्वचनीय आनन्दानुभूति की अभिव्यक्ति को शब्दों में बाँध पाना मेरे लिए कठिन हो रहा है।

भोजनादि के बाद उन्होंनें अपने आने का उद्देश्य जब मुझे बताया तो मैं आश्चर्यचकित रह गई। वे बोले— "बेटी, तुम्हें अप्रकाशित प्राचीन पाण्डुलिपियों के अध्ययन एवं समीक्षा का अच्छा अनुभव है। तुम्हारे लेखन में चुस्ती एवं प्रामाणिकता है। अतः बहुत ही विश्वासपूर्वक एक अप्रकाशित दुर्लभ पाण्डुलिपि तुम्हें देने आया हूँ। तुम्हें इसका उद्धार ही नहीं, बल्कि अपने साहित्यिक कार्यों की व्यस्तता में से समय निकालकर इसके सम्पादन एवं समीक्षा के लिए प्राथमिकता देना है। चूँकि यह पाण्डुलिपि गणेश वर्णी संस्थान की अमूल्य निधि है, अतः इसका प्रकाशन वर्णी संस्थान की ओर से किया जायगा।" मैं नतमस्तक थी। वे भावावेश में बोलते रहे—

"यह 'देवीदास-विलास' है। उसके लेखक कवि देवीदास बुन्देलखण्ड के लोकप्रिय कवि तथा श्रमण संस्कृति के गौरव पुत्र थे। हिन्दी-जगत में यह कवि सर्वथा अपरिचित है। अतः इसका साहित्यिक मूल्यांकन अत्यावश्यक है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि जैनेतर हिन्दी के भक्त कवियों में इनका स्थान सुनिश्चित किया जाय। मेरी समझ से अभी तक हिन्दी जैन-साहित्य में इस दिशा में कोई भी कार्य नहीं हुआ है और इसी कारण हमारा अतिसमृद्ध हिन्दी जैन-साहित्य उपेक्षित, नगण्य या साम्प्रदायिक श्रेणी में डाल दिया गया है, जो कि एक दुखद स्थिति है। यदि इस कृति के माध्यम से उस अभाव की कुछ भी क्षतिपूर्ति हो सके और अगली पीढ़ी के लिए कुछ प्रेरणा मिल सके, तो मुझे बड़ा सन्तोष होगा।"

पूज्य पण्डित जी के उक्त शब्द अभी भी मेरे कानों में गूँज रहे हैं। उनकी भावनाओं को आदर देने हेतु उनके आदेश को शिरोधार्य करने के अतिरिक्त मेरे सामने दूसरा कोई चारा न था। अपनी सीमित शक्ति एवं बुद्धि की अल्पता को जानते हुए भी साहस बटोरती रही और उक्त पाण्डुलिपि के सम्पादन के लिए साधन सामग्री

जुटाने लगी। किन्तु पारिवारिक झंझटों, सामाजिक दायित्वों की पूर्ति तथा महाविद्यालय सेवा सम्बन्धी अति व्यस्तताओं के कारण इस कार्य में तीव्रता न आ सकी। पाठान्तरों के लिए अन्य प्रतियों की खोज में भी भटकती रही किन्तु प्रयत्नों में अधिक सफलता नहीं मिल सकी। इधर, यह भी हार्दिक इच्छा थी कि जैसे भी हो, पूज्य पण्डित जी के जीवनकाल में ही यह ग्रन्थ प्रकाशित एवं विमोचित हो जाय तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी किन्तु अनेक दृश्य तथा अदृश्य दुखद व्यवधानों, जिनकी चर्चा यहाँ अप्रासंगिक होगी, के कारण प्रेस कापी तैयार हो चुकने के बाद भी वह समयानुसार प्रेस में न जा सकी और अब दीर्घान्तराल के बाद उसका प्रकाशन सम्भव हो सका है। आज इस प्रकाशन के प्रेरक-सूत्रधार पूज्य पण्डित जी यद्यपि इस संसार में नहीं हैं किन्तु मुझे इसका हार्दिक सन्तोष है कि इस ग्रन्थ में मैंने उनके निर्देशानुसार ही बहुत ईमानदारी के साथ शोध-परक एवं तुलनात्मक कार्य किया है और यह भी विश्वास है कि यदि पण्डित जी स्वयं उस ग्रन्थ को देख सके होते, तो वे अवश्य ही सन्तुष्ट-प्रमुदित होते।

इस ग्रन्थ के सम्पादन में मुझे अन्य जिन सज्जनों ने उपकृत किया है, उनमें से श्रीवर्णी संस्थान के वर्तमान उत्साही उपाध्यक्ष तथा जैन विद्या के लिए समर्पित युवा-विद्वान् डॉ. अशोककुमार जी जैन (रुड़की विश्विद्यालय) की विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ के उच्चस्तरीय मुद्रण-प्रकाशन के लिए व्यवस्था की। संस्थान के वर्तमान कार्यकारी मन्त्री डॉ. सुदर्शनलाल जी (संस्कृत-विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दु वि. वि.), संयुक्त मन्त्री डॉ. सुरेशचन्द्र जैन तथा संस्थान के अन्य पदाधिकारियों के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय-समय पर उपेक्षित सहायताएँ प्रदान की। वर्णी-संस्थान के व्यवस्थापक डॉ. कपिलदेव गिरि ने प्रारम्भिक प्रूफ संशोधित कर सहायता की तथा तारा प्रिंटिंग वर्क्स के मालिक श्री रविप्रकाश पण्ड्या ने इसका सुरुचिपूर्ण मुद्रण किया, उनके प्रति भी मैं हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

ग्रन्थ सम्पादन में अनेक सन्दर्भ ग्रन्थों तथा शोध पत्र-पत्रिकाओं से भी मैंने अपेक्षित प्रेरणाएँ एवं सहायताएँ ली हैं, अतः उनके सम्मान्य लेखकों एवं सम्पादकों के प्रति भी मैं विनम्र आभार व्यक्त करती हूँ।

अप्रकाशित प्राचीन पाण्डुलिपि का सम्पादन मौलिक ग्रन्थ-लेखन की अपेक्षा कितना दुरूह, समय-साध्य एवं धैर्य-साध्य होता है, इसका अनुभव केवल उस मार्ग के पथिक-विद्वान् ही कर सकते हैं। उसके सम्पादन एवं मूल्यांकन में साधनापूर्ण पर्याप्त एकरस एकान्त, एकाग्रता, लम्बी-लम्बी बैठकों एवं सजगता की आवश्यकता

होती है, साथ ही अनेकविध प्रासंगिक एवं आनुषंगिक सामग्री के अध्ययन की भी अपेक्षा होती है। इतना सब किए जाने के बाद भी उसमें अनेक त्रुटियों के रह जाने की सम्भावनाएँ हैं। उनके लिए मैं सहृदय सुविज्ञ पाठकों से सादर क्षमायाचना करती हुई विनम्र प्रार्थना करती हूँ कि वे उन त्रुटियों की सूचना मुझे देने की कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में उनका संशोधन किया जा सके। किमधिकम्—

तुक अच्छर घटि बढि सबद अरु अनर्थ जो होई।
अल्पमति मुझ पर छिमा करि धरियो बुध सोई।।

विनयावनत
विद्यावती जैन

श्रुतपंचमीमहापर्व
१३ जून, १९९४
महाजन टोली नं. २
आरा (बिहार) ८०२३०१

ग्रन्थ संकेत-सूची

अंग.	—	अंगपूजा
अजित.	—	अजितनाथ जिनपूजा
अनन्त.	—	अनन्तनाथ जिनपूजा
अभि.	—	अभिनन्दननाथ जिनपूजा
अरह.	—	अरहनाथ जिनपूजा
अष्ट.	—	अष्टप्रातिहार्य पूजा
अष्टा.	—	अष्टादश दोषरहित जिनपूजा
आदि.	—	आदिनाथ जिनपूजा
आदि पु.	—	आदिपुराण
उपदेश.	—	उपदेश-पच्चीसी
कुंथ.	—	कुन्थुनाथ जिनपूजा
कबीर ग्रन्था.	—	कबीर ग्रन्थावली
कबीर वचना.	—	कबीर-वचनावली
कबीर साखी.	—	कबीर-साखीसुधा
केवल.	—	केवलज्ञान के दस अतिशय
केशव.	—	केशव-कौमुदी
कौटिल्य.	—	कौटिल्य-अर्थशास्त्र
ग्र. प्र.	—	ग्रन्थ-प्रशस्ति
चंद.	—	चन्द्रप्रभु जिनपूजा
चक्रवर्त्ती.	—	चक्रवर्त्ती-विभूति-वर्णन
चतुर्वि.	—	चतुर्विंशति जिनपूजा
जन्म.	—	जन्म के दस अतिशय
जायसी ग्रन्था.	—	जायसी ग्रन्थावली
जिन.	—	जिनस्तुति
जिननामा.	—	जिननामावली
जिनवन्दना.	—	*चतुर्विंशति जिनवन्दना*
जिनांत.	—	जिनांतराउलि

जीवचतु.	—	जीवचतुर्भेदादिबत्तीसी
जूववरा	—	जूववरापद
जोग.	—	जोग पच्चीसी
तिलोय	—	तिलोयपण्णत्ति
तीनमूढ़	—	तीनमूढ़ अरतीसी
तैत्तरीय	—	तैत्तरीय उपनिषद्
दरसन	—	दरसन-छत्तीसी
दसधा	—	दसधा-सम्यक्त
द्वादश	—	द्वादशानुभावना
देव.	—	देवकृत चौदह अतिशय
धर्म.	—	धर्म-पच्चीसी
धर्मनाथ.	—	धर्मनाथ जिनपूजा
नमि.	—	नमिनाथ-जिनपूजा
नेमि.	—	नेमिनाथ जिनपूजा
पंचपर	—	पंचपद-पच्चीसी
पंचवरन.	—	पंचवरन के कवित्त
पट	—	पद-पंगति
पद्म.	—	पद्मनाथ-जिनपूजा
परमात्म.	—	परमात्म प्रकाश
परमानंद.	—	परमानन्द स्तोत्र
पार्श्व.	—	पार्श्वनाथ जिनपूजा
पाहुड.	—	पाहुडदोहा
पुकार	—	पुकार-पच्चीसी
पुष्प	—	पुष्पनाथ जिनपूजा
बुद्धि.	—	बुद्धि-बाउनी
बृहत्.	—	बृहत्कल्प
बृहत्कथा	—	बृहत्कथाकोश
ब्रह्माण्ड	—	ब्रह्माण्डपुराण
पल्लि	—	मल्लिनाथ जिनपूजा

महावीर.	—	महावीर जिनपूजा
मानस.	—	रामचरितमानस
मारीच.	—	मारीचभवान्तराउलि
मुनि.	—	मुनिसोव्रत जिनपूजा
राग.	—	राग-रागिनी
रामचरित.	—	रामचरितमानस
लछना.	—	लछनाउली-पथ
वासु.	—	वासुपूज्य जिनपूजा
विनय.	—	विनयपत्रिका
विमल.	—	विमलनाथ जिनपूजा
विवेक.	—	विवेक बत्तीसी
वीत.	—	वीतराग पच्चीसी
शान्ति.	—	शान्तिनाथ जिनपूजा
शीतल.	—	शीतलनाथ जिनपूजा
शीलांग.	—	शीलांग चतुर्दशी
श्रेयांस.	—	श्रेयांसनाथ जिनपूजा
संभव.	—	सम्भवनाथ जिनपूजा
सन्देश.	—	सन्देश रासक
सप्त.	—	सप्तव्यसन
सुपार्श्व.	—	सुपार्श्व नाथ जिनपूजा
सुमति.	—	सुमतिनाथ जिनपूजा
स्वजोग.	—	स्वजोग राछरौ
स्वयम्भू.	—	स्वयम्भूस्तोत्र-तत्वदीपिका
हितो.	—	हितोपदेश
हिन्दी जैनपद.	—	हिन्दी जैनपद-संग्रह

विषय-सूची (प्रस्तावना)

विषय		*पृष्ठ संख्या*
	From the Publisher	**vii**
	प्रधान सम्पादकीय	**ix**
	आभार प्रदर्शन	**xiii**
	ग्रन्थ संकेत-सूची	**xvi**
१.	**युगीन परिस्थितियाँ**	**१**
	(क) पृष्ठभूमि	
	(ख) कवि देवीदास के बुन्देलखण्ड के वैभव की एक झाँकी	२
	(ग) प्रति परिचय	४
	(घ) प्रति की विशेषताएँ	४
	(ङ) प्रतिलिपि सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ	५
२.	**ग्रन्थकार : व्यक्तित्व**	**५**
	(क) कवि परिचय	५
	(ख) कवि-काल-निर्णय	६
	(ग) वंश-परम्परा	९
	(घ) जन्म एवं निवास-स्थल	१०
३.	**समकालीन राजा**	**११**
४.	**बहु-आयामी व्यक्तित्व के धनी कवि देवीदास**	**१२**
	(क) एक भक्त-कवि के रूप में	१३
	(ख) कवि का अध्यात्म-रसिक-रूप	१५
	(ग) तत्वदर्शी रूप	१७
५.	**काव्य-प्रतिभा**	**१८**
	व्यक्तिगत-जीवन	**१९**
	(क) कवि देवीदास, एक वणिक् के रूप में	१९
	(ख) बहुज्ञता	२०
	(ग) कवि की विनम्रता	२२
	(घ) कवि के जीवन की कुछ प्रेरक घटनाएँ	२३

(१) समरसता २३

(२) सच्चरित्रता २४

(३) शान्तभाव द्वारा हृदय परिवर्त्तन २५

(४) मितव्ययता २६

६. **कृतित्व (उपलब्ध रचनाएँ)** २७

(क) देवीदास-विलास : नामकरण की समस्या तथा वर्गीकृत रचनाओं का परिचय २८

(ख) प्रवचनसार २९

(ग) चिद्विलास-वचनिका ३०

(घ) चौबीसी पाठ आदि तथा ३०

(ङ) (१/१) परमानन्द स्तोत्र, (१/२) जिनस्तुति, ३०
(१/३) जिननामावली, (१४) चतुर्विंशतिजिनवन्दना,
(२/१) पंचवरन के कवित्त [लाल, काला, श्वेत, पीला एवं हरा-रंग], (२/२)३० सप्तव्यसन, (२/३) दसधा सम्यक्त्व, (२/४) द्वादसानुभावना, (२/५) शीलांग चतुर्दशी, (२/६) धरम-पच्चीसी, (२/७) पंचपद-पच्चीसी, (२/८) पुकार-पच्चीसी, (२/९) वीतराग-पच्चीसी, (२/१०) उपदेश-पच्चीसी, (२/११) जोग-पच्चीसी, (२/१२) जीवचर्तुर्भेदादि बत्तीसी, (२/१३) विवेक बत्तीसी, (२/१४) दर्शन छतीसी, (२/१५) तीन-मूढ़ता अरतीसी, (२/१६) बुद्धिबाउनी, ३२
(३/१) जिनांतराउली, (३/२) मारीच भवान्तराउली,
(३/३) लछनाउली पथ, (तीर्थंकर नाम एवं उनके लाञ्छन।)
(३/४) चक्रवर्ती विभूति-वर्णन [चक्रवर्ती की नौ निधियाँ, चौदहरत्न तथा १७ प्रकार के वैभव का संक्षिप्त वर्णन]

(४.क) राग रागनियाँ, ५२

(४.ख) पदपंगति खण्ड, ५२

(५.) चित्रबन्ध रचनाएँ ५३

(६/१) हितोपदेश (६/२) स्वजोग राछरौ ५३

(७/१) जन्म के दस अतिशय, (७/२) केवलज्ञान के दस अतिशय (७/३) देवकृत १४ अतिशय ५४

(८/१-२५) चतुर्विंशति जिनपूजा वर्गीकरण तथा अष्ट द्रव्य नामादि (८/२६) अंग पूजा, (८/२७) अष्ट प्रतिहार्य-पूजा, (८/२८) अनन्त चतुष्टय पूजा, (८/२९) अष्टादश-दोष रहित जिनपूजा ५७

काव्य-वैभव **६२**

(क) रसयोजना ६२

(ख) अलंकार-निरूपण ६४

(ग) मानवीकरण (Personification) ६६

(घ) प्रतीक योजना ६७

(ङ) छन्द-योजना ६८

(१) छप्पय अंतरलापिका ६८

(२) छप्पय अंतलापथ ६९

(३) तेईसा अछिरचेतनी ७०

(४) गंगोदक-छन्द ७०

(५) छप्पय सर्वलघु ७०

(६) सवैया सर्वगुरु ७१

(७) राछरौ ७१

(८) तुकगुपत दोहरा ७१

(९) अर्ध तुकगुपत गतागत दोहरा ७२

(च) भाषा-विश्लेषण ७२

— बुन्देली बोली का एक सुन्दर उदाहरण ७४

(छ) गुण ७५

(ज) कूटपद ७५

(झ) सूक्तियाँ ७७

(ञ) शैली ७८

(१) उपदेश-शैली ७८

(२) प्रश्नोत्तर-शैली ७९

(३) निषेध-शैली ७९

(४) प्रबोधन-शैली ७९

(५) पद-शैली ७९

८. **भौगोलिक-सन्दर्भ** ८०

(१) देश, (२) ग्राम, (३) मटंब, (४) खेट (५) कर्वट (६) पट्टन (७) द्रोणमुख (८) संवाहन, (९) अन्तर्दीप, (१०) दुर्गाटवी,

९. **राजनैतिक-सन्दर्भ** ८३

(१) राजा, (२) अधिराजा, (३) महाराजा, (४) अर्धमाण्डलिक (५) माण्डलिक (६) महामाण्डलिक, (७) अर्धचक्री, (८) चक्रवर्ती

१०. **देवीदास की रचनाओं का जैन एवं जैनेतर भक्त-कवियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन** ८५

(१) आत्मा-परमात्मा ८६

(२) परमात्मा के विविध नाम ८८

(३) परमात्मा की भक्ति ८९

(४) निर्गुण-सगुण ९०

(५) निरंजन ९२

(६) सद्गुरु ९३

(७) नाम-स्मरण ९५

(८) मन ९६

(९) सारग्राही वस्तु का ग्रहण ९७

(१०) माया-मान का त्याग ९८

(११) बाह्याडम्बर एवं जाति-पाँति-खण्डन ९८

(१२) शास्त्र-ज्ञान-समीक्षा १००

(१३) सख्य-भक्ति १०१

(१४) दास-भक्ति १०३

(१५) अनुभव १०४

(१६) आनन्दानुभवजन्य-समरसता १०५

विषयसूची (मूलपाठ)

१. स्तोत्र-स्तुति-वन्दना-खण्ड **१११**

(१) परमानन्द स्तोत्र-भाषा १११
(२) जिनस्तुति (राग-ढार हरदौर की) ११३
(३) जिननामावाली ११४
(४) चतुर्विंशति-जिनवन्दना ११५

२. संख्यावाची-साहित्य-खण्ड **१२२**
(दर्शन, सिद्धान्त, अध्यात्म एवं नीतिपरक मिश्रित साहित्य)

(१) पंचवरन के कवित्त १२२
(२) सप्त-व्यसन-वर्णन १२३
(३) दसधा-सम्यक्त १२४
(४) द्वादसानुभावना १२६
(५) शीलांग-चतुर्दशी १३०
(६) धरम-पच्चीसी १३१
(७) पंचपद-पच्चीसी १३३
(८) पुकार-पच्चीसी १३९
(९) वीतराग-पच्चीसी १४२
(१०) उपदेश-पच्चीसी १४९
(११) जोग-पच्चीसी १५१
(१२) जीवचतुर्भेदादि बत्तीसी १५८
(१३) विवेक-बत्तीसी १६१
(१४) दरसन-छत्तीसी १६३
(१५) तीनमूढ़ता-अरतीसी १७०
(१६) बुद्धिबाउनी १७३

३. पुराणेतिहास, भूगोल, राजनीति एवं शरीर-लक्षण-साहित्य-खण्ड **१८९**

(१) जिनांतराउली १८९
(२) मारीच-भवान्तराउली १९१
(३) लछनाउली १९८
(४) चक्रवर्त्ती-विभूति-वर्णन १९८
चौदह रत्न वर्णन एवं अन्य वैभव वर्णन १९८

४. शास्त्रीय-संगीतबद्ध पद साहित्य-खण्ड २०३

(क) राग-रागनी-पद (विविध प्रकार की राग-रागनियाँ) २०३

(१) राग केदारौ २०३, (२) राग सोरठ २०३, (३) राग कनरी २०४, (४) राग गौरी २०४, (५) राग विरावर २०४, (६) राग मलार २०५, (७) राग विरावर २०५, (८) राग नट २०५, (९) राग नट २०६, (१०) राग नट २०६, (११) राग सोरठ २०६, (१२) राग जैजैवंती २०७, (१३) राग जैजैवंती २०७, (१४) राग रामकली २०७, (१५) राग भैरौं २०८, (१६) राग रामकली २०८, (१७) राग विरावर २०९, (१८) राग विरावर २०९, (१९) राग भैरौं २०९, (२०) राग नट २१०, (२१) राग जैजैवंती २१०, (२२) राग भैरौं २१०, (२३) राग ईमन २११, (२४) राग ईमन २११, (२५) राग जैजैवंती २११

(ख) पद पंगति-खण्ड २१२

(१) राग विरावर २१२, (२) राग विराउर २१२, (३) राग सारंग २१२, (४) राग सोरठ २१३, (५) राग ईमन २१३, (६) राग ईमन २१३, (७) राग सारंग २१४, (८) राग ईमन २१४, (९) राग ईमन २१५, (१०) राग धनासिरी २१५, (११) राग धनासिरी २१५, (१२) राग ईमन २१६, (१३) राग धनासिरी २१६, (१४) राग सारंग २१७, (१५) राग सोरठ २१७, (१६) ख्याल दादरौ २१७, (१७) दादरौ २१८, (१८) दादरौ २१८, (१९) राग गौरी २१९, (२०) राग गौरी २१९, (२१) राग कानरौ २१९, (२२) राग सारंग २२०, (२३) राग सोरठ २२०, (२४) राग सोरठ २२०, (२५) राग गौरी २२१, (२६) राग सोरठ २२१, (२७) राग सोरठ २२२, (२८) राग ईमन २२२.

५. विशिष्ट् चित्रबन्ध-काव्य-खण्ड २२३

(१) पर्वत-बन्ध-कवित्त २२३

(२) दोहा-चूलीबन्ध २२४

(३) गीतिका मडरबन्ध २२५

(४) दोहा कपाटबन्ध २२६

(५) दोहा कटारबन्ध २२६

(६) दोहरा चन्द्रमाबन्ध २२७
(७) दोहरा चन्द्रमाबन्ध २२८
(८) दोहरा कमलबन्ध २२९
(९) दोहरा कमलबन्ध २३०
(१०) दोहरा कमल-बन्ध २३१
(११) दोहरा कमल-बन्ध २३२
(१२) दोहा पर्वत-बन्ध २३३
(१३) गीतिका मडर-बन्ध २३४
(१४) सर्वतोमुख-चौबीसा बन्ध २३५
(१५) कवित्त-बन्ध में कवित्त अरिल्ल, दोहा, चौपही एवं सोरठा २३५
(१६) सर्वतोमुख सवैया-चौबीसा बन्ध २३६
(१७) दोहा धनिक-बन्ध २३६
(१८) दोहरा तुकगुपत-बन्ध २३७
(१९) दोहरा तुकगुपत-बन्ध २३७
(२०) दोहरा अर्द्धतुकगुपत गतागत-बन्ध २३७

६. सम्बोध-प्रबोध-साहित्य-खण्ड २३८
(१) हितोपदेश २३८
(२) स्वजोगराछरौ २३९

७. अतिशय (आश्चर्य) वर्णन-खण्ड २४१
(१) जिनवर-जन्म के दस अतिशय २४१
(२) केवलज्ञान के दस अतिशय २४२
(३) देवकृत चौदह अतिशय २४३

८. चतुर्विंशति-जिन एवं अन्य-पूजासाहित्य-खण्ड २४६
(१) चतुर्विंशति जिनपूजा २४६
(२) आदिनाथ-जिनपूजा २४८
(३) अजितनाथ-जिनपूजा २५१
(४) सम्भवनाथ-जिनपूजा २५४
(५) अभिनन्दननाथ-जिनपूजा २५८
(६) सुमतिनाथ-जिनपूजा २६१

(७) पद्मप्रभु-जिनपूजा २६५
(८) सुपार्श्वनाथ-जिनपूजा २६८
(९) चन्द्रप्रभु-जिनपूजा २७०
(१०) पुष्पदन्त-जिनपूजा २७३
(११) शीतलनाथ-जिनपूजा २७६
(१२) श्रेयासंनाथ-जिनपूजा २७९
(१३) वासुपूज्य-जिनपूजा २८३
(१४) विमलनाथ-जिनपूजा २८६
(१५) अनन्तनाथ-जिनपूजा २८९
(१६) धर्मनाथ-जिनपूजा २९३
(१७) शान्तिनाथ-जिनपूजा २९६
(१८) कुन्थुनाथ-जिनपूजा ३००
(१९) अरहनाथ-जिनपूजा ३०४
(२०) मल्लिनाथ-जिनपूजा ३०७
(२१) मुनिसुव्रतनाथ जिन-पूजा ३१०
(२२) नमिनाथ-जिनपूजा ३१३
(२३) नेमिनाथ-जिनपूजा ३१६
(२४) पार्श्वनाथ जिन-पूजा ३२०
(२५) महावीर-जिनपूजा ३२३
(२६) अंग पूजा ३२६
(२७) अष्टप्रातिहार्य-पूजा ३२७
(२८) अनन्त चतुष्टय-पूजा ३२८
(२९) अष्टादश दोष रहित-जिनपूजा ३२९

९. ग्रन्थकार- प्रशस्ति ३३२

१०. परिशिष्ट-खण्ड स्तुतिपद ३३३

(१) जूववरा ३३४
(२) पदि ३३५
(३) पद ३३५
(४) एकेन्द्रिय सैनी-असैनी ३३५

११. शब्दानुक्रमणिक ३३६

१२. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ३६०

प्रस्तावना

१. युगीन परिस्थितियाँ

(क) पृष्ठभूमि-- कवि का व्यक्तित्व और उसके व्यक्तित्व को सँवारने वाली युगीन परिस्थितियों का उसके साहित्य के प्रणयन में विशेष महत्व होता है क्योंकि उसकी अन्तश्चेतना उन परिस्थितियों से अनुप्राणित होकर ही सर्जन का कार्य करती हैं। साहित्य स्वयं कोई स्वतन्त्र इकाई नहीं, बल्कि वह तत्तद्युगीन विचारों एवं परिस्थितियों का सुपरिणाम होता है। वह एक रचनात्मक प्रक्रिया है, इसलिए उसका सम्बन्ध सामाजिक-जीवन के साथ विशेष रूप से जुड़ा रहता है। समाज और साहित्य परस्पर सापेक्ष हैं, अतः साहित्य को समाज का प्रतिबिम्ब भी कहा गया है। सामाजिक सम्बन्धों के कारण कवि अथवा साहित्यकार में एक ऐसी स्फुरणशील चेतना का विकास होता है, जो अन्यान्य विचारों एवं सिद्धान्तों को जन्म देती है। यही चेतना साहित्य और इतिहास की गतिविधि की भी सर्जनकारी तत्व के रूप में मुखरित होती हैं। साहित्य का इतिहास समाज के विकास का भी इतिहास होता है और वह मानव के जीवन-मूल्यों का चित्रण करता है। इस तथ्य से भी सभी सुपरिचित हैं कि हिन्दी-सहित्य का जन्म राष्ट्रिय जीवन की सामान्य परिस्थितियों से हुआ और आधुनिक-काल का साहित्य भी हमारी राष्ट्रीय जागृति का द्योतक बना।

कवि देवीदास का युग भारत की परतन्त्रता का युग था। राष्ट्र एवं समाज एक के बाद एक (मुगलों एवं अंग्रेज़ों की) दोहरी पराधीनता से प्रताड़ित था, जिसके कारण राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक एवं धार्मिक जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा था। ऊपर से सामन्ती-व्यवस्था ने समाज को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर दिया था। राजा और सामन्त विलासिता के पंक में आकण्ठ निमग्न थे। सुरा और सुन्दरी, यही उनके जीवन का लक्ष्य रह गया था। प्रजा भी राजा का अनुसरण कर उन्हीं के पद-चिन्हों पर चल रही थी। चारों ओर विलासिता का वातावरण छाया हुआ था। दरबारी कवि राजाश्रित रहकर उनके मनोनुकूल काव्य-रचना करने में अपने को भी धन्य मान रहे थे। ''मनमथ नेजा नोंकि सी''[१] जैसी घोर शृंगारिक कविता के लिखने का बोलबाला था। फिर भी उस विपरीत वातावरण में कवि देवीदास ने अदम्य उत्साह के साथ अध्यात्म एवं भक्तिरस की जैसी मंदाकिनी प्रवाहित की,

---

१. बिहारी रत्नाकर; पद ६

वह ऐतिहासिक है। उन्होने विषम परिस्थितियों में भी राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर एक सच्चे लोकनायक की भाँति हिन्दी में ऐसे साहित्य का प्रणयन किया, जो गिरते हुए मानव-मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने में पूर्ण रूप से सक्षम है।

आत्मचिन्तन, आत्मविकास एवं उसके माध्यम से स्वस्थ-समाज एवं राष्ट्र-निर्माण ही उनका प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् के आदर्श रूप को अपने काव्य के माध्यम से मुखरित करने का अथक प्रयास किया है। लोककल्याण की भावनाओं का गान करने में जहाँ उन्होंने एक ओर विभिन्न सामान्य छन्दों एवं लोक-संगीत का आश्रय लिया, वहीं दूसरी ओर यमन, बिलावल, सारंग, जयजयवंती, रामकली, दादरा, गौरी, केदार, धनाश्री आदि राग-रागनियों का सहारा भी लिया है। उन्होंने भक्ति के शास्त्रीय एवं सहज दोनों पक्षों का उद्घाटन करके भक्ति को जन-सामान्य के लिए भी सहज बना दिया है।

इस प्रकार कवि देवीदास ने रीतिकाल में भी अध्यात्म एवं भक्ति की जैसी गंगा-जमुनी धारा प्रवाहित की, वह बुन्देली हिन्दी-साहित्य के इतिहास की स्वर्णिम-रेखा बनकर उभरी है।

(ख)कवि देवीदास के बुन्देलखण्ड के वैभव की एक झाँकी

भारत की हृदयस्थली मध्यप्रदेश के सीमान्त पर एक ऐसा भी प्रदेश है, जो रामायण एवं महाभारत-कालीन इतिहास के अनेक तथ्यों को अपने अस्तित्व में समाहत किए हुए है. किन्तु दुर्भाग्य से परवर्त्ती कालों में वह उपेक्षित होता रहा है। यद्यपि चेदि, हैहय, कलचुरि, चन्देल, गहड़वाल एवं बुन्देला ठाकुरों ने वहाँ अनेक स्वाभिमान पूर्ण पराक्रमीं कार्य किए हैं और अपनी अतीतकालीन महिमामयी परम्पराओं को सुरक्षित रखने के लिए वे सर्वस्व न्यौछावर करते रहे हैं। इतिहास इसका साक्षी है। वर्तमान मे उसी उपेक्षित महामहिम-भूखण्ड को बुन्देलखण्ड के नाम से जाना जाता है।

यही वह पुण्यभूमि है, जहाँ मगध के द्वादशवर्षीय अकाल के समय आचार्य भद्रबाहु अपने १२ सहस्त्र मुनिसंघ तथा नवदीक्षित मगध-सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य (प्रथम) के साथ बिहार करते हुए रुके थे और यहाँ से आगे बढ़कर दक्षिण भारत की ओर गए थे। यही वह भूमि है, जहाँ मातृभूमि की सुरक्षा के लिए वीर चम्पतराय बुन्देला ने अपने शौर्य-वीर्य का पुरजोर प्रदर्शन किया था, यही वह पुण्यभूमि है, जहाँ महाराजा छत्रशाल ने परनामी-सम्प्रदाय के महान् साधक स्वामी प्राणनाथ का आशीर्वाद प्राप्त कर बुन्देल-भूमि को श्री-समृद्धि प्रदान कर उसे नया तेजस्वी जीवन

प्रदान किया था। बुन्देल-केशरी छत्रशाल का वह साहित्यिक-प्रेम हिन्दी-साहित्य कभी भी भुला नहीं सकता, जब उन्होंने अपनी ही धरती के लाल महाँकवि भूषण की विदाई के समय उनकी पालकी में अपना कन्धा दिया था और उस रूप में साहित्य एवं सहित्यकार को महान् सम्मान दिया था। यही वह भूमि है, जहाँ के राजाओं— मधुकरशाह एवं इन्द्रजीत सिंह ने मुगलों के विरोध में एक ओर जहाँ अपने शौर्य-वीर्य एवं पराक्रम के चमत्कार दिखलाए थे, वहीं दूसरी ओर गोपी-कृष्ण की स्मृति में अपनी लेखनी का हृदयस्पर्शी चमत्कार भी दिखलाया था। एक हिन्दी कवि के रूप में महाराजा मधुकरशाह का यह पद— "ओड़छौ[1] वृन्दावन सौं गाँव" आज भी बुन्देलखण्ड के झोपड़ों से महलों तक सर्वत्र सुनाई देता है. यही वह भूमि है, जहाँ जगनिक एवं गोस्वामी तुलसीदास के बाद महाकवि केशव, प्रवीणराय, कवियित्री— केशव पुत्रवधु, बिहारी, बलभद्र, खड़गसेन कायस्थ, गोविन्दस्वामी, वीरबल, रहीमखाँ, हरिराम, टोडरमल, आसकरण, चतुर्भुज, कल्याण, बालकृष्ण, गदाधर एवं अमरेश प्रभृति कवियों ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से इसे महिमा-मण्डित किया था। हिन्दी जैन कवि भुवानीदास ने भी सुन्दर गीतों की रचना की, जो आज भी बुन्देलभूमि में लोक गीतों के रूप में प्रचलित हैं।

वन्दनीय बुन्देलखण्ड विविध कलाकृतियों, मठों एवं मन्दिरों का प्रारम्भ से ही प्रमुख केन्द्र रहा है। वहाँ शायद ही ऐसा कोई ग्राम, कस्बा, नगर अथवा शहर हो, जहाँ जैन एवं जैनेत्तर हस्तलिखित पोथियों का भाण्डार न हो। किन्तु शताब्दियों से उनका आलोड़न-विलोड़न नहीं हो पाया है और हजारों-हजार पोथियाँ (हस्तलिखित-ग्रन्थ) काल-कवलित हो चुकी एवं होती चली जा रही हैं। बुन्देली कवियों की इसी शृंखला में हिन्दी के एक जैन कवि देवीदास भी अपना विशेष महत्व रखते हैं, जिन्होंने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया। इन रचनाओं का संग्रह देवीदास-विलास नाम से प्रसिद्ध है और वे प्रायः सभी अप्रकाशित हैं। उपलब्ध प्रति का परिचय निम्न प्रकार है—

---

१. ओड़छौ वृन्दावन सौ गाँव.
गोबरधन सुख-सील पहरिया जहाँ चरत तृन गाय।।
जिनकी पद-रज उड़त सीस पर मुक्त-मुक्त हो जाय।
सप्तधार मिल बहत वैत्रवे जमना-जल उनमान।।
नारी नर सब होत पवित्र कर-कर के स्नान।
सोथल तुंगारण्य बखानो ब्रह्मा वेदन गायौ।।
सो थल दियो नृपति मधुकुर कौ श्रीस्वामी हरदास बतायौ।
(बुन्देलखण्ड की एक लोकप्रिय अनुश्रुति)

(ग) प्रति परिचय

'देवीदास-विलास' नामकी उक्त संग्रह-कृति वाराणसी के श्री गणेश वर्णी दिगम्बर जैन संस्थान में उपलब्ध है। उसकी मात्र एक ही प्रति उपलब्ध हो सकी है। उसकी कुल पत्र संख्या १५७ हैं, जिनमें से १५० पत्र तो पूर्णरूप से लिखे हुए हैं। इसके पश्चात् के ४ पत्र खाली है, उसके बाद एक पत्र लिखा हुआ है। फिर १ पत्र खाली है और उसके अगले पत्र में केवल ४ पंक्तियाँ लिखी हुई हैं। कृति में कवि की छोटी-बड़ी ३८ रचनाओं का संकलन है। प्रति का प्रारम्भ कृति की विषयवस्तु से हुआ है। पुनः तीन पत्र खाली है। तत्पश्चात मूल रचना का प्रारम्भ हुआ है, जो इस प्रकार है—

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। अथ परमानन्द-स्तोत्र भाषा लिख्यते।

और अन्त इस प्रकार होता है—

बिना विद्या बिना ब्रम्हाना कोई भोगी रमनी बिना ।

छत तले किं जन्मा किर्त्ते बिना ।।

प्रति के पत्रों की लम्बाई ७.१'' तथा चौड़ाई ५'' है। प्रति के प्रारम्भिक १२ पत्रों तक प्रत्येक पृष्ठ में ९-९ पंक्तियाँ, पृ. २४ तक १०-१० पंक्तियाँ एवं २५वें पृष्ठ से ११-११ पंक्तियाँ लिखी हुई मिलती हैं। प्रति पंक्ति में वर्ण-संख्या २१ से २४ के मध्य है। यद्यपि इस प्रति की स्थिति अच्छी है किन्तु प्रारम्भ और अन्त के कुछ पत्र अत्यन्त जीर्ण हो गए हैं। ग्रन्थ का मूल विषय काली स्याही में लिखा गया है, किन्तु पत्र की संख्या, विषय का प्रारम्भ एवं अन्त तथा पूर्ण विराम लाल-स्याही में अंकित है। पत्र के बाएँ किनारे पर १'' जगह छोड़ी गई और दाएँ किनारे पर १/२'', ऊपर और नीचे क्रमशः १-१/२'' एवं १/२'' इंच जगह छोड़ी गई है।

(घ) प्रति की विशेषताएँ

(१) इस ग्रन्थ में सर्वत्र ख के स्थान पर ष का प्रयोग किया गया है।

(२) नकार के स्थान पर नकार और णकार दोनों के प्रयोग मिलते हैं।

(३) भूल से छूटे हुए पदों अथवा वर्णों को हंसपद देकर उन्हें हाँसिये में लिखा गया है तथा वहाँ सन्दर्भ-सूचक पंक्ति-संख्या अंकित कर दी गई है। यदि छूटा हुआ वह अंश ऊपर की ओर का है, तो वह ऊपरी हाँसिये में और यदि नीचे की ओर का है, तो वह नीचे की ओर, और वहीं पर पंक्ति संख्या भी दे दी गई है।

(४) अशुद्ध मात्राओं एवं पदों को मिटाने के लिए कभी काली एवं कभी लाल स्याही का प्रयोग किया गया है तथा भूल से लिखे गए अनपेक्षित शब्दों के सिरे पर छोटी-छोटी खड़ी ३-४ रेखाएँ खींच दी गई हैं।

(५) पत्र ११४ से लेकर पत्र १२० अ तक चित्रबन्धकाव्य सम्बन्धी विभिन्न चित्र दिये गए हैं और उन चित्रों में ग्रन्थागत कुछ छन्दों का नियोजन किया गया है। कुल मिलाकर उन चित्रों की संख्या २४ है। जैन हिन्दी साहित्य में यह प्रयोग सम्भवतः सर्वप्रथम किया गया है।

(६) भ— व्यंजन की आकृति अपभ्रंश-युग की शैली से समानता रखती है।

(७) हुं— की आकृति भी अपभ्रंश-युग का स्मरण दिलाती है।

(८) पृ. ७९ और ८० के बीच कुछ पत्रों को काटकर उन्हें फूल पत्तियों का आकार दिया गया है। प्रतीत होता है कि ऐसा करके ग्रन्थ की शोभा बढ़ाने का प्रयास किया गया है।

(ङ) प्रतिलिपि सम्बन्धी कुछ त्रुटियाँ

(१) पत्र संख्या १७ अ, २६ अ एवं ४४ अ खाली है।

(२) पत्र संख्या ६६ एवं ९४ पर क्रमशः ६५ और ९३ ही लिखा गया है, जिससे पत्रों की क्रम-संख्या में अन्तर आ गया है।

(३) पत्र संख्या ४३ पर नम्बर नहीं है एवं ४५ पर ४३ लिखा गया है, जिस कारण आगे की क्रम-संख्या में भी परिवर्तन आ गया है।

२. ग्रन्थकार : व्यक्तित्व

(क) कवि परिचय

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, कवि देवीदास रीतिकालीन भक्त कवि हैं। गृहस्थ होते हुए भी एक ओर जहाँ वे भक्ति-रस की अजस्र-धारा में डुबकियाँ लगाते रहते थे, वहीं दूसरी ओर, अध्यात्म, चिन्तन एवं मनन में भी लीन रहते थे। आत्मचिन्तन की ओर इनका विशिष्ट ध्यान था। इनकी अनुभूति का धरातल अत्यन्त गहन और विस्तृत था। उन्होंने काव्य के सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् इन तीनों अवयवों में से शिवम् पर अधिक बल दिया है। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि कवि ने सत्यम् एवं सुन्दरम् की उपेक्षा की है। बल्कि सत्यम् और सुन्दरम्

तो उनके काव्य में स्वाभाविक और उदात्त रूप से वर्णित हुए ही हैं, किन्तु लोकहित को ध्यान में रखकर उन्होंने सद्‌वृत्तियों के प्रेरक आवश्यक पक्षों का निरूपण विशेष रूप से किया है।

संसार के दुःखों का मूल कारण राग और द्वेष है। ये दोनों मनोविकार ही अनेक विकारी-भावों को जन्म देते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, तृष्णा एवं ईर्ष्या आदि को जागृत करने वाले राग और द्वेष ही है। यहीं दोनों मानव को अनादिकाल तक भव-संसार का भ्रमण कराते रहते हैं और अष्ट-कर्म रूपी राक्षस उसे कन्दुक के समान यहाँ से वहाँ उछालते रहते हैं। उक्त भावों के कारण ही मनुष्य में विवेक नहीं रह जाता और इसी कारण वह आत्मा के अस्तित्व में भी पूर्ण विश्वास नहीं कर पाता। कवि देवीदास ने उक्त विचारों की अभिव्यक्ति तथा आत्म-तत्व की प्रतिष्ठा के लिए देवीदास-विलास की रचना की, जिसमें उन्होंने विभिन्न काव्य-रूपों के द्वारा आत्म-तत्व का परिचय दिया और मानव को स्वानुभव के द्वारा उसे प्राप्त करने की प्रेरणा दी है।

(ख) कवि-काल-निर्णय

भारतीय स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व बुन्देलखण्ड की ओरछा स्टेट की राजधानी टीकमगढ़ (वर्तमान में मध्यप्रदेश का एक सामान्य जिला) के दिगौड़ा नामके ग्राम में कविवर देवीदास का जन्म हुआ था। उनका विस्तृत जीवन-परिचय तो अनुपलब्ध है किन्तु बाह्य एवं अन्तर्साक्ष्यों के आधार पर मधुकरी-वृत्ति से कुछ परिचय अवश्य मिल जाता है। उन्होंने अपनी कृतियों के अन्तिम प्रशस्ति पद्यों एवं पुष्पिकाओं में अपनी जन्मभूमि एवं कर्मभूमि पर जो क्षीण प्रकाश डाला है, उसी से उनके ग्राम, माता-पिता, भाई-बहिन, जाति-वंश एवं समकालीन राजा के सम्बन्ध में कुछ जानकारी उपलब्ध हो जाती है। किसी-किसी रचना में उसके समापन-काल एवं स्थान का भी उल्लेख मिलता है, जिससे उसके रचना-स्थल, रचनाक्रम एवं समय-निर्धारण में भी सहायता मिल जाती है। अपनी ''वर्तमान-चौबीसी-पाठ'' नामक रचना के अन्त में उसने ग्रन्थकार-प्रशस्ति अंकित की है, जो निम्न प्रकार है—

संवतु अष्टादस परै एक बीस को बास,
सावन सुदी परिभात रवि धरां उगी दिन जास।
धरां उगी दिन जास गाम कौ नाम दिगौड़ा,
जैनी-जन बस-बास औड़छै सौ पुर ठौड़ा।

सावंतसिंह नरेस देस परजा सब थवंतु,
जह निरभै करि रची यह सुपूजा धरि सवंतु।
गोलालारे जानियो वंश खरौआ होतु।
सोनवयार सु बैंक तसु पुनि कासिल्ल सुगोत्र।
पुनि कासिल्ल सुगोत्र सिकसिकहारा खेरौ,
देस भदावर माँहि जो सुन रचौ तिनि भेरौ।
कैलगमा के वसनहार संतोस सुभारे,
देवीदास सुपुत्र दिगौड़ा गोलालारे।।

उक्त प्रशस्ति पद्य से यह तो स्पष्ट होता है कि उक्त चौवीसी पाठ की रचना कवि ने वि. सं. १८२१ के श्रावण शुक्ल रविवार के प्रभात काल में की थी. किन्तु उसके जन्म-समय के सम्बन्ध में किसी प्रकार का कोई उल्लेख अभी तक नहीं मिल सका है। हिन्दी साहित्य के इतिहास से भी उसके सम्बन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं मिलती और उत्तरवर्त्ती कवियों या लेखकों ने भी इस पर कोई प्रकाश नहीं डाला।

श्रद्धेय पं. नाथूराम जी प्रेमी (बम्बई) ने हिन्दी-जैन-साहित्य के इतिहास में उनका सर्वप्रथम संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया था, किन्तु उनके जन्म-समय के सम्बन्ध में वे भी मौन रहे[१]। डॉ. कामता प्रसाद जी जैन ने पं. नाथूराम प्रेमी का अनुसरण करते हुए बतलाया कि कवि देवीदास दुगौडह गाँव (जिला झांसी) के रहने वाले थे और उन्होंने परमानन्द-विलास (सं. १८१२). प्रवचनसार-छन्दोबद्ध, चिद्विलास वचनिका एवं चौबीसी-पाठ नामक कृतियों की रचना की थी[२]। पं. परमानन्द शास्त्री ने भी अनेकान्त (पत्रिका) में उनकी रचनाओं का उल्लेख करते हुए, उनके जीवन की कुछ मार्मिक घटनाओं का उल्लेख तो किया, किन्तु जन्म-समय की कोई चर्चा नहीं की[३]। डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री ने भी उक्त सूचनाओं के आधार पर उनकी रचनाओं का उल्लेख मात्र किया है[४]।

---

१. हिन्दी-जैन-साहित्य का इतिहास, पृ. ८०, नाथूराम प्रेमी, जैनग्रन्थ रत्नाकर, हीराबाग, बम्बई, सन् १९१७

२. हिन्दी जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. २१८, डॉ. कामता प्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९४७

३. अनेकान्त, अक्टूबर १९५२, पृ. २७३-२८३.

४. *हिन्दी जैन-साहित्य परिशीलन, भाग २, पृ. २१२*

प्रतीत होता है, श्री प्रेमीजी आदि के सम्मुख कवि देवीदास की सभी मूल रचनाएँ नहीं थी, इसी कारण वे कवि का समय-निर्धारण नहीं कर सके। अपनी कुछ रचनाओं में से किसी-किसी रचना के अन्त में कवि ने उसका समापन वर्ष, तिथि एवं दिन का उल्लेख किया है। जैसे कवि ने 'जीवचतुर्भेदादिबत्तीसी' नामक रचना की समाप्ति[१] वि. सं. १८१०; बुद्धिबाउनी[२] की वि. सं. १८१२; द्वादशभावना[३] और विवेकबत्तीसी[४] की वि. सं. १८१४, उपदेशपच्चीसी[५] की वि. सं. १८१६, वर्तमान चौबीसी-पाठ[६] की वि. सं. १८२१ एवं प्रवचनसार[७] कि रचना वि. सं. १८२४ में की थी। इन उल्लेखों से कवि के रचना-काल के निर्धारण में पर्याप्त सहायता मिल जाती है।

अद्यावधि उपलब्ध रचनाओं में प्राप्त तिथियों के आधार पर कवि की सम्भवतः प्रथम रचना 'जीवचतुर्भेदादिबत्तीसी' का समाप्तिकाल वि. सं. १८१० ज्ञात होता है। कवि की कृतियों का अध्ययन करने से उसकी लेखनी की क्रमिक प्रौढ़ता, विकास एवं विषय की गम्भीरता का स्पष्ट ज्ञान होता है। अतः उपर्युक्त रचना-समाप्ति कालों एवं विषय-प्रतिपादन की परिनिष्ठत भाषा-शैली को देखते हुए यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि वि. सं. १८१० से वि. सं. १८२४ के मध्य कवि ने अपने साहित्य का प्रणयन किया। अब यदि उसने ३० वर्ष की आयु से अपना लेखन-कार्य प्रारम्भ किया हो तो उसका कुल समय वि. सं. १७८० से वि. सं.

---

१. "सत अष्टादस दस अधिक संवतु अस्विन मास।
कृष्ण पंचमी भौम दिन पहु विरदंत प्रकास।।"

२. "संवतु साल अठारह सै पुनि द्वादस और धरौ अधिकारे।
चैतसुदी परमा गुरुवार कवित्त जबै इकठे करि धारे।।"

३. "संवतु १८१४ भादौं सुदि १३ सनउ।"

४. "साल अठारह सौ सु फिर धरौ चतुर्दस और।
दुतिय कुंवार सुदी द्वादसी गुरवासर सुय ठौर।।"

५. "संवतु १८१६ जैठ वदी १२ लिखित ललितपुर मझा सुहस्त।"

६. "इतिश्री वर्तमान जिन पूजा भाषा देवीदास कृत सम्पूर्ण। समाप्तं। संवतु, १८२१ वर्ष अस्वनि सुदी ३ भौमवासरे शुभं भवतु। लिखी गाँव दुगौड़े अथ प्रभावना अंग कारन निरभिलास।।"

७ "संवत १८२४ की ससाल है। सावन सदी स आठै परयो सोमवार है।"

१८३० तक ५० वर्ष तक का निर्धारित किया जा सकता है। अतः जब तक उसके जीवन-काल सम्बन्धी अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं हो जाते, तब तक कवि का कुल जीवन काल वि. सं. १७८० से १८३०तक मानने में कोई हानि नहीं।

(ग) वंश-परम्परा

देवीदास की "प्रवचनसार" नामक रचना के अनुसार उनके पिता का नाम संतोष एवं माता का नाम मणि था[१]। देवीदास की एक बहिन और सात भाई थे। बहिन का नाम सेली था। भाईयों के नाम इस प्रकार थे—

१. देवीदास २. छगन ३. लल्ले, ४. मरजाद, ५. गंगाराम, ६ गोपाल और ७. कमल। इसका उल्लेख उन्होंने अपनी ग्रन्थकार-प्रशस्ति में स्वयं किया है[२]।

ये सभी भाई एक साथ नहीं रहते थे। कवि के कथनानुसार छगन शिवपुरी में (छिपुरी), लल्ले ललितपुर में कमल कारी (टीकमगढ़ के पास) में मरजाद एवं गंगाराम टिहरी (टीकमगढ़) में तथा देवीदास एवं गोपाल दिगौड़ा में रहते थे, व्यापारिक कारणों से ही सम्भवतः इन भाईयों को अलग-अलग रहना पड़ा था।

कवि ने भाइयों के व्यक्तित्व अथवा कृतित्व के सम्बन्ध में कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है। केवल उनकी संख्या, नाम एवं निवास-स्थान का ही विवरण दिया है। परन्तु उक्त पंक्तियों से यह अवश्य ज्ञात हो जाता है, कि सभी भाईयों के प्रति देवीदास का प्रगाढ़-स्नेह था और अपने भाईयों के आग्रह पर उन्होंने कई रचनाएँ भी लिखी थी।

---

१. "दुगौड़ो सु ग्रांम जामै जैनी की धुकार है,
तहाँ के सुवासी संतोष मनि सुगोलालारे।
खरौवा सुवंश जाके धर्म विवहार है,
तिनही के सुपुत्र देवीदास तिन्ही पूरी करै,
ग्रन्थ यह नाम जाको प्रवचनसार है।।" (दे. णाणसायर पत्रिका, २/६३)

२. "सेली के सहकारी भाई,
छिपुरी छगन ललितपुर लल्ले,
कारी कमल बसत मन भायें,
टिहरी में मरजाद तथा पुनि,
गंगाराम बसत तिन भाये।
देवीदास गुपाल दिगौडे उदै कवित्त कला के गाए।।
भाषा करि जिनेश्वर पूजा छहौं वीर की आज्ञा पाए।।
(दे. वर्त्तमान चतुर्विंशति पूजा-प्रशस्ति)

उन्होंने ग्रन्थकार-प्रशस्ति में अपनी जाति एवं वंश का स्पष्ट उल्लेख किया है। तदनुसार उनकी जाति गोलालारे अर्थात् गोलाराड थी, वंश खरौआ, गोत्र कासिल्ल एवं बैंक अथवा मूल सोनवयार था। टीकमगढ़, ललितपुर, ग्वालियर, झाँसी, इन्दौर, सागर, दिल्ली, भोपाल जिलों में आज भी इस जाति एवं वंश के लोग विद्यमान हैं। यह ८४ जातियों में से एक प्रमुख जैन जाति मानी जाती है[१]।

(घ) जन्म एवं निवास-स्थल

कवि देवीदास ने अपने जन्म-स्थान के सम्बन्ध में स्पष्ट बतलाया है कि उनका जन्म कैलागमाँ (जिला टीकमगढ़, मध्यप्रदेश का एक ग्राम) नामक स्थान पर हुआ था। तत्पश्चात् वे दिगौड़ा ग्राम में आकर रहने लगे थे। यद्यपि उनके पूर्वज ''भदावर-देश के (तत्कालीन गोपाचल-ग्वालियर राज्य में स्थित) सीकसिकहारा ग्राम के निवासी थे। बाद में किन्हीं कारणों से उनके पिता कैलागमाँ आकर बस गए थे। यथा—

''पुनि कासिल्ल सुगोत्र सीकसिकहारा खैरो।
देस भदावर माँहि जो सुन रचौ तिन भैरो।।
कैलागमा के बसनहार संतोस सुभारे।
देवीदास सुपुत्र दिगौड़ा गोलालारे।।'' —चतुर्विंशति., पृ. १५७

''सीकसिकहारा'' का शाब्दिक अर्थ होता है— सी = श्री अर्थात् समृद्धि और कसिकहारा अर्थात् कृषि को धारण करने वाला अर्थात् समृद्ध खेती वाला गाँव। इससे प्रतीत होता है कि इस गाँव के निवासी किसान थे और पूर्ण रूप से खेती पर आश्रित तथा सम्पन्न थे। यही कारण रहा होगा कि इस ग्राम का नाम ''सीकसिकहारा'' पड़ गया। इसी प्रसंग में कवि यह लिखना भी नहीं भूलता कि यह जानकारी मैंने अपने परिवार से प्राप्त की है, इसीलिए इसका उल्लेख कर रहा हूँ। कवि ने गाँव के लिए ''खैरौ'' शब्द का प्रयोग किया है। यह बुन्देलखण्डी-भाषा का शब्द है, जो आज भी इसी रूप में प्रयुक्त होता है। इसकी व्युत्पत्ति ''खेट'' या खेड शब्द से हुई है। प्राचीन भूगोल के अनुसार पर्वत एवं नदी के बीच में बसने वाला स्थल खेट या खेड कहलाता था[२]।

---

१. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, (लेखक-गोरेलाल तिवारी), काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वि. सं. १९९० पृ. १५५

२. दे. चक्रवर्ती. प्रकरण.

तत्पश्चात् कवि के पिता "कैलगमा" में आकर बस गए थे, जो अतिशय क्षेत्र अहार (टीकमगढ़) एवं बर्माताल (टीकमगढ़) नामक ग्राम के पास है। लेकिन बाद में देवीदास ने टीकमगढ़ के पास ही दिगौडा नामक ग्राम को अपना निवास-स्थल बना लिया। उन्होंने अपनी कई रचनाओं के समापन में दुगौडा ग्राम की चर्चा की है, जो इस प्रकार है—

"कैलगमा पुनि ग्राम दुगौडह के सबही बस वासनहारे"।। बुद्धि, २/१६/५४

"ग्राम दुगौडे मध्य साल अठारह सै सु फिर और धरौ। द्वादश.," २/४/४८

"दुगौडो सुग्राम जामें जैनी की धुकार है"। प्रवचनसार प्रशस्ति.

जैसा कि पूर्व में बतलाया जा चुका है कि उनके पूर्वज भदावर-देश के "सीकसिकहारा" ग्राम में निवास करते थे। कवि के दिगौडा में निवास करने के दो प्रमुख कारण प्रतीत होते हैं। प्रथम तो, उसका उत्तम व्यापारिक-क्षेत्र का होना और दूसरा, आस्थावान् जैन-धर्मावलम्बियों का वहाँ बहुल-संख्यक होना।

कवि ने अनेक स्थानों पर बंजी[1] शब्द का प्रयोग किया है। यह बुन्देलखण्डी-भाषा का शब्द है, जो कन्धे पर कपड़ा अथवा अन्य व्यापारिक सामग्रियाँ लादकर अभावग्रस्त ग्रामों में बेचने के अर्थ में रूढ़ हो गया है। कुछ लोग बैल अथवा घोड़े पर भी माल लादकर ग्रामों में बेचने जाया करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि दुगौडा ग्राम का, कपड़े के व्यापार की दृष्टि से विशेष महत्व रहा होगा। दूसरा, उन्होंने लिखा है कि, जैनों की यहाँ बड़ी धुकार[2] थी। "धुकार" शब्द का अर्थ है धाक या प्रतिष्ठा। प्रतीत होता है कि इस ग्राम में ज्ञान, समृद्धि एवं धर्म की दृष्टि से जैनियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी, इसीलिए कवि यहीं आकर बस गया था।

३. समकालीन-राजा

कवि ने ग्रन्थ-प्रशस्ति में अपने समकालीन राजा सामन्तसिंह का उल्लेख किया है। यद्यपि बुन्देलखण्ड के इतिहास में सामन्तसिंह नामके अनेक राजाओं का विवरण उपलब्ध होता है, तथापि देवीदास ने जिस राजा सामन्तसिह का नामोल्लेख किया है, वह ओरछा के महाराजा वीरसिंह देवजू की परम्परा में आने वाले राजा पृथिवीसिंह का पौत्र था। वि. सं. १८०९ में राजा पृथिवीसिंह का स्वर्गारोहण हो जाने के पश्चात् उनके पौत्र सामन्त सिंह का राज्याभिषेक किया गया था[3]। देवीदास का रचनाकाल

१. "पूंजी ले पराई बंजु कीनौ मह्य खोटो है।।" (जोग. २/११/१३)

२. "दुगौडो सौ ग्राम जामैं जैनी की धुकार है। (प्रवचनसार)

३. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, (लेखक गोरेलाल तिवारी), काशी नागरी प्रचारिणी सभा. वि. सं. १९९० पृ. १५५

लगभग वही है, जो सामन्तसिंह के राज्याभिषेक का है, इसलिए दोनों के समय का मेल भी बैठ जाता है।

उक्त सामन्तसिंह ओरछा स्टेट का शासक था। इसके शासन-काल में ओरछा की स्थिति अत्यन्त सुदृढ़ थी। अपनी कुशल सूझ-बूझ से उसने अपने जीवन में सुख और शान्ति का वातावरण उपस्थित कर दिया था। उसने अपनी वीरोचित कर्त्तव्य-परायणता के कारण अनेक सम्मान और उपाधियाँ प्राप्त की थीं। उस समय भारत में अलीगौहर (शाह आलम) नामके मुस्लिम बादशाह का शासन था। वह सामन्त सिंह की कार्य-कुशलता एवं कर्त्तव्य-निष्ठा से बहुत प्रसन्न था। एक बार जब वह वि. सं. १८१५ में रीवाँ से होता हुआ दिल्ली वापिस लौट रहा था, उस समय राजा सामन्तसिंह ने उसका विशेष रूप से आदर-सम्मान किया था। इससे बादशाह ने प्रसन्न होकर उसको "महेन्द्र" की उपाधि से विभूषित किया था[१]।

राजा सामन्तसिंह ने वि. सं. १८२२ तक ओरछा की राजगद्दी को सुशोभित किया। इसके पश्चात् उसका देहावसान हो गया।

कवि देवीदास ने अपनी एक ग्रन्थ-प्रशस्ति में राजा सामन्तसिंह के शासन की प्रशंसा करते हुए बतलाया है, कि "इस देश में प्रजा अत्यन्त सुखी और समृद्ध है। सभी को अपने-अपने धार्मिक-कार्यों को करने का पूर्ण अधिकार है। अपने आराध्यदेव की पूजा एवं स्तवन की सभी के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता है। यही कारण है कि मैंने भी निर्भय होकर अपने तीर्थंकर प्रभु के स्तवन में "चतुर्विंशतिजिनपूजा" की रचना की है[२]. तात्पर्य यह कि राजा सामन्तसिंह के समय में राज्य चतुर्दिक समुन्नति पर था। समृद्धि, सुरक्षा, प्रगति एवं शान्ति की दृष्टि से वह एक ऐतिहासिक काल माना जा सकता है। उस समय साहित्यकारों के लिए भी अपनी साहित्य-साधना में कोई विघ्न-बाधा नहीं आती थी। सभी धर्म एवं सम्प्रदाय के लोगों में भी सौहार्द्र एवं स्नेह व्याप्त था। कवि ने सूत्र-शैली में इन्हीं परिस्थितियों की ओर संकेत किया है।

४. बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी : कवि देवीदास

कवि देवीदास के उपलब्ध साहित्य के अध्ययन से उनके व्यक्तित्व के अनेक रूप सम्मुख आते हैं। कहीं तो वे एक निष्काम-भक्त के रूप में दिखलाई पड़ते हैं,

---

१. दे बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, पृ. १५७

२. दे. चतुर्विंशतिजिनपूजा—ग्रन्थकार प्रशस्ति

तो कहीं उनका अध्यात्म-रसिक-रूप आत्म-रस में अठखेलियाँ करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। कहीं वे तत्वदृष्टा ज्ञानी के रूप में दिखलाई पड़ते हैं, तो कहीं उनका निश्छल, सच्चरित्र एवं विश्वस्त वणिक् रूप लोगों के जीवन को आकर्षित करता है और कहीं पर उनका कवि-रूप अपनी समग्र काव्यात्मक-विशेषताओं के साथ सम्पूर्ण काव्य में अपनी सुगन्ध बिखेरता सा प्रतीत होता है। एक ओर वे शास्त्रीय-संगीत के मर्मज्ञ के रूप में दिखलाई पड़ते हैं, दो दूसरी ओर भाषा-विज्ञानी तथा शब्द-शास्त्री के रूप में दिखाई पड़ते हैं। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि रीतियुग में भी वह हिन्दी-जैन-भक्ति-काव्य का प्रणेता रहा है। वह आपादमस्तक कवि था और भक्ति की उस भाव-भूमि पर पहुँचा हुआ था, जहाँ धर्म और दर्शन का अनायास ही मेल हो जाता है। अपनी काव्य-कृतियों में उसने इन तीनों की जो त्रिवेणी प्रवाहित की है, वह अद्भुत है। उसकी सम्पूर्ण रचनाएँ शान्त-रस की पीयूष पयस्विनी की स्रोत हैं, जिनमें कषाय-निग्रह, भोग-विलास का परित्याग, समानता, समरसता एवं आत्मा का निर्मलीकरण समाहित है।

यहाँ संक्षेप में उनकी श्रेष्ठता के कुछ बिन्दुओं पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जा रहा है:

(क) एक भक्त कवि के रूप में

देवीदास वस्तुतः एक भक्त-कवि हैं। सांसारिक कर्त्तव्य-कार्यों के साथ-साथ वे सर्वज्ञदेव की भक्ति में लीन रहने वाले महान् श्रद्धालु थे। उनकी भक्ति का लक्ष्य संसार के ऐहिक-सुखों एवं अभिलाषाओं को प्राप्त करना नहीं, बल्कि सर्वज्ञ-गुणों के स्मरण एवं दर्शन द्वारा अपनी आत्मा को निर्मल बनाना तथा मन के विकल्पों के तान-वितान को दूर करना है। इसी कारण उनकी भक्ति निष्काम है। कवि को यह दृढ़ विश्वास है कि प्रभु की दिव्य-मूर्ति का दर्शन करने से जन्म-जन्मान्तर के पाप-कर्म तुरन्त समाप्त हो जाते हैं और चित्त परम आह्लाद से ओत-प्रोत हो जाता है। यद्यपि वीतरागी-प्रभु का गुणानुवाद अत्यन्त कठिन एवं वचनातीत हैं, किन्तु उस पर श्रद्धा, मनन और चिन्तन करने से यह जीवात्मा कर्म-ज़ंजाल से मुक्त हो जाता है। कवि ने स्वयं क़हा है— "कि जब तक मुझे जिन-गुणों की परख नहीं थी, तब तक मेरा जीवन एक कौड़ी के मोल में जा रहा था अर्थात् निरर्थक रूप में व्यतीत हो रहा था, लेकिन अब जिनेन्द्र के गुण रूपी रत्नों का सेवन करने से मेरे सांसारिक विकल्प दूर हो गए हैं।" यथा—

"मूरत देख सुख पायो प्रभु तेरी।
अतिगम्भीर गुणानुवाद तुम मुख करि जात न गायो।
विकलपता सुगई अब मेरी निज गुण रतन भंजायो।
जात हतौ कौड़ी के बदलै जब लगु परखि न आयो।—राग-रागिनी ४/क/२०

एक अन्य पद में प्रभु के चरणों में अपनी श्रद्धा को दृढ़ बतलाते हुए वे कहते हैं कि मैं भगवान के सुयश को सुनकर उनकी शरण में आ गया हूँ। रागद्वेष जैसे भयंकर तस्करों ने मुझे अपने अधीन कर रखा है और ये अष्टकर्म मोक्ष-मार्ग में प्रवृत्त नहीं होने देते। यह मेरी ही भूल थी कि आज तक मैं "स्व" को भूल कर "पर" को अपना मानता रहा। लेकिन अब मैंने जिनेन्द्र प्रभु की शरण को ग्रहण कर लिया है। इसलिए मुझे अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि मेरे जन्म-मरण का चक्र निश्चित रूप से समाप्त हो जायगा। यथा—

"सुजस सुनि आयो सरन जिन तेरे।
हमरे बैर परै दोई तस्कर रागदोष सुन ठेरे।
तुम सम और न दीसत कोई जगवासी बहुतेरे।
देवियदास वास-भव-नासन काज भये तुम चेरे।। पद., ४/ख/२०

इसके अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी-भक्ति-साहित्य में प्राप्त होने वाली नवधाभक्ति के सोपानों का भी यत्र-तत्र वर्णन किया है। भक्त अपने आराध्य की भक्ति नौ प्रकार से करता है, जिसे नवधा-भक्ति कहते हैं, जो निम्न प्रकार है:— श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य-भाव, सख्य-भाव एवं आत्मनिवेदन। यथा—

"आतम अनभव सार जगतमहि आतम अनभव सार।
समरसमय तन-मन सुवचन कृत रहित सकल व्यौपार।
श्रवण कथन उपदेश चिंतवन भजन क्रियादिक आर।
देवियदास कहत इह विधि सौ कीजै स्वगुन सम्हार।। पद —४/ख/१४

उन्होंने अन्य भक्तियों के साथ-साथ दास्य भक्ति की भी प्रतिष्ठा की है। वे अपने प्रभु को अपना स्वामी मानकर भक्ति करते हुए कहते हैं, कि इस संसार में शरणागत की लज्जा रखने वाले एक मात्र जिनेन्द्र प्रभु ही हैं। उनके समान गरीबनवाज (दीनदयाल) दूसरा कोई नहीं। यथा—

"तुरत भजौ जिनराज जो सुख चाहत जग मैं।
जा सम और नहीं पुनि दूजौ देव गरीबनवाज।
जो सर्वज्ञ निवाहनहारे सरनागति की लाज।। पद ४/ख/१७

"या विनती सुन सेवक की निज मारग से प्रभु देउ लगाई।
हौं तुम दास रहौं तुम्हरे संग लाज करौ सरनागत आई पुकार।। २/८/२

"प्रभु तुम दीनानाथ हौ मैं अनाथ दुख कंद।
सुनि सेवक की बीनती हरौ जगत दुख फंद।। पुकार; २/८/६

वस्तुतः कवि देवीदास के समय में सख्य एवं दास-भक्ति का युग चल रहा था। जैनेतर कवियों ने तो उस भक्ति-भावना से भक्ति-साहित्य रचा ही, हिन्दी के जैन कवियों ने भी दास भक्ति के गीत गाए।

(ख) कवि का अध्यात्म-रसिक-रूप

भक्ति का कोई न कोई आधार अवश्य होता है। आत्मा को आधार मानकर जो भक्ति की जाती है, उसे आध्यात्मिक-भक्ति कहते हैं। कवि देवीदास अध्यात्मवाद के प्रबल समर्थक थे। वे स्वयं न तो तपस्वी थे, न योगी, और न ध्यानी, फिर भी वे आत्म-रस का स्वाद चखने वाले अध्यात्मी-भक्त अवश्य थे। यथा—

आतम रस अति मीठौ साधो आतम रस-अति मीठौ।। पद; ४/ख/२०

उन्हें आत्म-रस की प्राप्ति के लिए अपने मन को हठयोगियों की भाँति ब्रह्मरन्ध्र पर केन्द्रित नहीं करना पड़ा। वे तो अनुभूति के माध्यम से मन की आन्तरिक स्थिति तक पहुँच गए और उन्होंने भक्ति के द्वारा भावोन्मेष के साँचे में अध्यात्म को ढाल दिया और इस प्रकार भक्ति और अध्यात्म को सन्निकट ला दिया।

इस प्रकार देवीदास भक्ति और अध्यात्म का सुन्दर समन्वय करने वाले हिन्दी के एक सिद्धहस्त कवि के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। वे केवल भक्त या कवि ही नहीं थे, अपितु अध्यात्म-रस की मंदाकिनी में आकण्ठ निमग्न रहने वाले भी थे। उन्होंने अध्यात्म सम्बन्धी शास्त्रों का जो अध्ययन एवं मनन किया, उसे विवेक-पूर्वक अपने हृदय में उतारने का भी प्रयास किया। इष्ट-वियोग एवं अनिष्ट-संयोग में निरन्तर रहने की उनकी प्रवृत्ति काव्य में भी दृष्टव्य है। कर्मोदय की गति को वे पूरी तरह जानते समझते थे। इसलिए सभी प्रकार की परिस्थितियों में वे समताभाव बनाए रखते थे। उन्होंने स्वानुभूति के द्वारा आत्म-तत्व को भली-भाँति समझा था।

अतः हर्ष-विषाद, सुख-दुख एवं आशा-निराशा की घड़ियों में उनका मन उद्विग्न नहीं होता था।

अपने मन पर उन्होंने ऐसी विजय प्राप्त कर ली थी कि सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थितियाँ उन्हें विचलित नहीं कर पाती थीं। इसका सबसे प्रबल उदाहरण उनके छोटे भाई कमल की मृत्यु है। अपने प्राणों से भी प्रिय इस भाई की मृत्यु पर उन्होंने अपना समभाव नहीं छोड़ा, बल्कि माँ को यह कहकर उन्होंने धैर्य बँधाया कि— "हे माँ, कर्मों की गति बड़ी विचित्र है। उसे वचनों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। यह जीव कर्म के अधीन होता हुआ भी अहंवश अपने को दूसरों के सुखों-दुखों का कर्त्ता-धर्त्ता मानता है, जबकि वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। कवि के ही शब्दों में देखिए—

"बांकुरी करमगति जाय न कही, माँ बांकुरी करमगति जाय न कही।
चिन्तत और बनत कछु औरहि होनहार सों होय सही।।[१]...

देवीदास निरन्तर वस्तु-स्वरूप का ध्यान करते हुए यही विचार करते रहते थे कि जब अन्तर्दृष्टि जागृत हो जायगी, तो समस्त भय स्वतः ही नष्ट हो जाँयेंगे और समरसता आ जायगी तथा काललब्धि, गुरु-उपदेश और निर्विकल्पता सुलभ हो जायगी, उससे विषय-कषाय की बेली मुरझा जायगी और मन स्थिर हो जायगा। मोहरूपी अग्नि शान्त हो जायगी, विवेक रूपी वृक्ष हृदय में पल्लवित हो जायगा और मन पर-परणति से राग नहीं करेगा। तूँ सभी प्रकार से अनुभव रूपी रंग में रंगकर रत्नत्रय रूपी मोक्ष-मार्ग में प्रवृत्त हो जायगा। अतः हे आत्मन्, तूँ स्वाधीन बनकर निजानन्द-रस का निरन्तर पान कर। कवि स्वयं कहता है—

अंतरदिष्टि जगैगी जब तेरी अंतरदिष्टि जगैगी।
होई सरस दिढ़ता दिन हूँ दिन सब भ्रम भीत भगैगी। पद ४/ख/१९

इसी क्रम में कवि पुनः कहता है कि यह आत्म-रस अत्यन्त मधुर है किन्तु स्याद्वाद रूपी रसना के बिना इसका स्वाद नहीं लिया जा सकता। स्वानुभव रूपी यह रस अपूर्व है, आश्चर्यकारी है, वचनानीत एवं अगोचर है। इसको प्राप्त कर लेने पर स्वर्गादिक-सुख भी फीके पड़ जाते है। अतः हे आत्मन्, तेरा लक्ष्य ही उसे प्राप्त करने का है। यथा—

"आतमरस अति मीठौ साधौ भाई आतम रस अति मीठौ।
स्यादवाद रसना बिनु जाकौ मिलत न स्वाद गरीठौ।। पद./ख/२०

---

१. अनेकान्त, पत्रिका (११/७-८) पृ. २७५

तत्पश्चात् कवि जब उस सरस-रस का पान कर लेता है, तब उसका हृदय अनूभुति के रस से सराबोर होकर अनायास ही कह उठता है—

'निज निरमल रसु चाखा जब हम निज निरमल रसु चाखा।
करनै की सु कछू अब मौकों और नहीं अभिलाखा।।'' राग., ४/क/४

(ग) तत्वदर्शी-रूप

देवीदास ने एक सामान्य गृहस्थ होते हुए भी अपने काव्य में आत्मा, परमात्मा, अष्टकर्म, कषाय, शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र एवं स्व-पर का जो निरूपण किया है, उससे वे एक महान् तत्वदर्शी, दार्शनिक की कोटि में आ जाते हैं। पारिवारिक-जीवन में रहते हुए भी उन्होंने उपर्युक्त तत्वों का गहन अध्ययन किया था, साथ ही, उन्होंने अध्यात्म एवं आचार सम्बन्धी सिद्धान्तों को अपने आन्तरिक जीवन में उतारने का प्रयत्न किया था। इसलिए वे स्व-पर, भेद-विज्ञान को बड़ी ही सहजता से कह पाने में समर्थ भी हो सके। एतद्विषयक उनके कुछ उदाहरण देखिए। गूढ़ दार्शनिक-रहस्यों को भी उन्होंने कितनी सीधी साधी सरल भाषा-शैली में स्पष्ट कर उसे सर्वभोग्य बना दिया है। स्व-पर के भेद-विज्ञान का स्पष्टीकरण उन्होंने इस प्रकार किया है—

''स्वपर गुन पहिचान रे जिय स्वपर गुन पहिचान।
तू सुछंद अनंद मंदिर पद अमूरतिवान।।
चेतन गुन चिन्ह तेरो प्रगट दरसन ज्ञान।
जड सपरसादिक सुमूरति पुदगलीक दुकान।।'' पद., ४/ख/२६
''समकित बिना न तरयौ जिया समकित बिना न तरयो।
लाख क्रोर उपास करि-नर कष्ट सहत मरयौ।।'' पद., ४/ख/२३
''कीजै कौंनु हवाल अवर हम.कीजै कौंनु हवाल।'' पद., ४/ख/२२
आतम-तत्व विचारौ सुधी तुम आतम तत्व विचारौ।।'' पद., ४/ख/१० आदि

इसी प्रकार आत्मा-परमात्मा के स्वरूप को भी देखिए कि भेद-विज्ञान द्वारा कवि ने किस प्रकार सरल शब्दों में लौकिक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है—

''पाहन मै जैसे कनक दही दूध मै घीउ।
काठ मांहि जिम अगिनि है ज्यों शरीर में जीउ।।'' परमानंद., १/१/२४

''तेल तिली के मध्य है परगट हो न दिखाई।
जगत-जगुति में भिन्नता खरी तेलु हो जाय।।'' परमानंद., १/१/२५

कवि ने एक पंक्ति में निरंजन की स्थिति को कितने सरल रूप में व्यक्त कर दिया है। यथा—

सो सिव रूप अनूप अमूरति सिद्ध समान लखे सु निरंजन।। बुद्धि, २/१६/१७

५. काव्य-प्रतिभा

कवि वही है, जिसके अन्तस् से महान् आचार्यों के उपदेश रूपी अमृत-निर्झर कविता के रूप में स्वतः ही प्रस्फुटित होने लगें। किसी भी भक्त कवि की यह विशेषता होती है, कि वह या तो अपने आराध्य के प्रति पूर्णतया समर्पित होता है और उसका भक्त-रूप गेय-पदों के माध्यम से स्वतः मुखरित होने लगता है अथवा पूर्वाचार्यों की वाणी को वह देश-काल एवं लोक-प्रचलित समकालीन बोली-भाषा में लिखकर या गाकर उसका प्रचार-प्रसार कर युग का प्रतिनिधित्व करता है। कवि-हृदय निरन्तर ही सक्रिय बना रहता है और उसकी वाणी का स्रोत अविराम गति से प्रवहमान रहता है। जिस प्रकार केवड़े के सुगन्धित पुष्पों पर भौंरा बैठे बिना नहीं रह सकता, बसन्त-ऋतु में आम्र-मंजरी को चखकर कोयल कुहु-कुहू किए बिना नहीं रह सकती, उसी प्रकार आचार्यों के उपदेश एवं वाणी भी रुक नहीं सकती। अंग्रेज कवि पी. वी. शैली का भी यही कथन है कि महान् आत्मा के गुणों पर रीझ कर कवि का हृदय फूट पड़ता (Heart outburst) है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणेता कवि देवीदास के कवि रूप पर विचार करने से यह तो स्पष्ट प्रतीत होता है, कि उन्हें किसी भी विद्यालय में नियमित अध्ययन का अवसर नहीं मिला। किन्तु साक्षर होने के बाद कवि को प्रवचन एवं उपदेश सुनने तथा स्वाध्याय में निरन्तर प्रवृत्त रहने से उसे विषय का अच्छा ज्ञान हो गया। भक्त माता-पिता द्वारा निर्मित पारिवारिक वातावरण, पूर्व-जन्म का संस्कार, जिज्ञासु-प्रवृत्ति, सामाजिक-धार्मिक परिवेश, नियमित स्वाध्याय और सरस्वती की निरन्तर आराधना से देवीदास का सुसुप्त कवि-हृदय मुखरित हो उठा। आर्ष परम्परा के अनुसार अध्यात्म, आचार एवं सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ उन्हें प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी-भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया था। यह उनके उपलब्ध-साहित्य से स्पष्ट है। यही नहीं, उनके द्वारा लिखित प्रवचनसार के पद्यानुवाद से प्रभावित होकर पं. सदासुखजी जैसे महान् दार्शनिक ने एक टीका भी लिखी[१]। इससे कवि देवीदास के पाण्डित्य एवं कवित्व के असाधारण रूप का परिचय मिलता है।

---

१. दे. अनेकान्त, वर्ष १९६७ किरण ६/३५०

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि देवीदास एक श्रद्धालु भक्त कवि थे। भक्त कवि होने के लिए अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा-भक्ति की समर्पित भावना का होना सर्वाधिक सशक्त माध्यम माना जाता है। देवीदास ने भी भक्ति के आलोक में अन्तर्तम की जो अनुभूति प्राप्त की, वही भक्ति के उद्रेक में कविता द्वारा एक अकृत्रिम वन्य-स्रोत की तरह प्रस्फुटित हुई। हार्दिक उमंग के कारण जो नैसर्गिक-वैदग्ध्य कवि देवीदास के काव्य में आ सका है, वह सर्वतोभावेन भावपन्न है। उसी में उनकी चमत्कारी प्रतिभा की झांकी दृष्टिगोचर होती है। कवि ने बिना किसी दुराव-छिपाव के अपनी अनुभूति को स्वाभाविक भाषा-शैली में ज्यों का त्यों चित्रित कर दिया है। इस प्रकार उनके काव्य में काव्य के सभी गुण और रूप स्वयमेव ही समाहित हो गए हैं।

प्रसिद्ध लक्षणशास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा माना है। यद्यपि देवीदास के काव्य-ग्रन्थों में नव-रसों की छटा तो दिखाई नहीं देती किन्तु शान्त-रस की छटा सर्वत्र दिखलाई पड़ती है, फिर भी उसी को प्रकाशित करने के लिए अन्य रस सहयोगी के रूप मे उसके चारों ओर अवश्य बिखरे हुए मिलते हैं।

भाषा को सँवारने वाले समुचित साहित्यिक अवयव-गुण, अलंकार और विविध छन्दों के समाहार के साथ ही साथ शास्त्रीय राग-रागनियों का मनोहारी योग काव्य के सौन्दर्य को उत्कृष्टता प्रदान करने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं। काव्य के इन सभी उपादानों का संक्षिप्त विश्लेषण काव्य-वैभव नामक अगले प्रकरण में किया जा रहा है।

व्यक्तिगत जीवन

(क) कवि देवीदास, एक वणिक् के रूप में

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि कवि देवीदास एक सामान्य गृहस्थ थे। आर्थिक दृष्टि से कमजोर रहने तथा एक बड़े परिवार के भरण-पोषण का बोझ उन पर होने के कारण उन्हें आजीविका हेतु व्यापार करना पड़ता था। दिगौड़ा ग्राम में आज भी यही कहा जाता है कि पं. देवीदास बंजी[१] किया करते थे। किन्तु एक सामान्य व्यापारी होने पर भी उनका जीवन सात्विकता और समरसता से परिपूर्ण था। सन्त कबीर की ही भाँति गार्हस्थिक कार्यों से उन्हें जब भी अवकाश मिलता था,

---

१. जोग., २/२१/१३

वे गंगनरेश के वीर सेनापति चामुण्डराय के समान ही अपने लेखन-कार्य में लीन हो जाते थे। उनके काव्य में जहाँ-तहाँ व्यापार सम्बन्धी सन्दर्भ एवं उक्तियाँ भी इस बात की द्योतक हैं कि वे एक कुशल व्यापारी थे।

देवीदास अपना व्यापार पूरी लगन और सच्चाई के साथ किया करते थे और हानि-लाभ के अवसरों पर अपनी समवृत्ति रखते थे। व्यापार उनके लिए मात्र एक न्यायोचित आजीविका का साधन-मात्र था, उसे उन्होंने कभी भी साध्य नहीं माना। उनके लिए साध्य तो आत्मा का कल्याण था, इसलिए वे उतना ही अर्जन करते थे, जितनी कि उन्हें आवश्यकता रहती थी। उन्होंने अपनी "जोग-पच्चीसी" नामकी रचना में व्यापार के प्रस्तुत-विधान द्वारा अप्रस्तुत का वर्णन किया है और अन्योक्ति के माध्यम से सांसारिक प्राणियों को उद्बोधन देने की चेष्टा की है।

उन्हें व्यापार की सभी युक्तियों का अच्छा अनुभव था। इसलिए वे ब्याज़ पर कर्ज लेकर व्यापार करने के पक्ष में कभी नहीं रहे। क्योंकि उनकी यह पक्की धारणा थी कि कर्ज ले लेने से व्यापारी पर दोहरी मार पड़ती है और वह उसके बोझ से अधमरा जैसा हो जाता है। इसलिए उन्होंने व्यापारियों को कर्ज से दूर रहने तथा अधिक धनोपार्जन करने के लिए "हाय-हाय" न करने की सलाह दी है। कवि के अनुसार कम आर्मदनी से भी दो समय का भोजन आनन्द से मिल सकता है। जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है—

"अरे हंसराई अैसी कहा तोहि सूझि परी।
पूंजी लै पराई बंजु कीनो महाखोटो है।
आप तेरी एक समय की कमाई को न टोटो है।" जोग., २/११/१३

तथा—

"मन वच तन पर-द्रव्य सों कियो बहुत व्यौपार।
पराधीनता करि परयो टोटो विविध प्रकार।। जोग., २/११/१२

(ख) बहुज्ञता

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि देवीदास केवल हिन्दी-भाषा के ही कवि नहीं, अपितु उन्होंने अपने स्वाध्याय के बल पर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर उनके ग्रन्थों का हिन्दी-पद्यानुवाद करने में भी वे समर्थ हो सके।

भट्ट अकलंक के संस्कृत-भाषा निबद्ध परमानन्द-स्तोत्र, अचार्य कुन्दकुन्द के शौरसेनी प्राकृत बद्ध प्रवचनसार एवं दंसणपाहुड आदि इसके साक्षात् उदाहरण हैं। उनकी यही रचनाएँ उन्हें लोक-भाषा के सफल अनुवादक की महत्ता भी प्रदान करती हैं। इनके अतिरिक्त भी उनकी सभी रचाएँ वर्ण्य विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से विशिष्टता रखती हैं एवं उनकी बहुज्ञता को प्रमाणित करती हैं।

इस प्रकार एक ओर वे अपने विषय के विशेषज्ञ और मर्मज्ञ हैं, तो दूसरी ओर भाषा के अधिकारी विद्वान् तथा तीसरी ओर वे मूलानुगामी सफल पद्यानुवादक भी। उन्होंने मारीच के विविध भवान्तर सम्बन्धी रचना में जिस प्रकार से मारीच के जीव की एक-एक पर्याय का पारदर्शी वर्णन मुक्तक-काव्य शैली में किया है, वह हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में अनुपम है। इतना सर्वांगीण वर्णन तो प्रथमानुयोग की सम्भवतः किसी प्रबन्ध-रचना में भी उपलब्ध नहीं होगा। इसी प्रकार "चतुर्विंशतिजिन-पूजा" में उन्होंने प्रत्येक तीर्थंकर का वर्णन करते समय तीर्थंकर का जीवन किस स्वर्ग-लोक से किस तिथि को गर्भावस्था में आया, नगर, माता-पिता, जन्म-तिथि, जन्म-नक्षत्र, दीक्षाग्रहण की तिथि, नक्षत्र, उनसे सम्बन्धित वन, वृक्ष एवं उनसे दीक्षा धारण करने वाले राजाओं की संख्या, तपके पश्चात् उनकी प्रथम पारणा (आहार) वाले नगर का नाम, राजा-रानी का नाम, केवलज्ञान की उत्पत्ति का समय, उनके गणधर, प्रतिगणधर, मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविकाओं, विक्रियाऋद्धि-युक्त मुनियों, मनः पर्ययज्ञानियों, वादी, प्रतिवादी आदि की संख्या, उनके यक्ष-यक्षिणी का नाम एवं किस महीने और किस ऋतु में उन्होंने मोक्ष को प्राप्त किया, आदि का विस्तृत उल्लेख किया है, जो पौराणिक इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। यह विशेषता अन्य पूजाओं में प्रायः उपलब्ध नहीं होती।

"बुद्धिवाउनी" नामक रचना में कवि ने स्व-पर विवेक, आत्मा-परमात्मा का लक्षण, सम्यक्त्व, सुमति-कुमति, पाप-पुण्य, ज्ञान-ज्ञेय एवं भव्य-अभव्य जीवों का रूपक एवं उदाहरण-अलंकार के द्वारा जो सरस, सरल एवं सहज निरूपण किया है, वह पूर्णरूपेण उनकी बहुज्ञता का परिचायक है। उन्होंने अपने राग-रागिनी के एक पद (१७/२) में यह भी बतलाया है कि आगे चलकर दि. जैन मुनि केवल दक्षिण-दिशा में ही होंगे, उत्तर में नहीं)। इस सदी के प्रारम्भिक काल तक उनकी यह भविष्यवाणी लगभग यथार्थ रही।

"जिनांतराउली" नामक रचना में कवि ने भ. महावीर के पश्चात् चलने वाली आचार्य-परम्परा की जो काल-गणना प्रस्तुत की है वह हिन्दी-भाषा में होने के कारण श्रमण-संस्कृति एवं जैन-साहित्य के इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार कवि के "चक्रवर्त्ती-विभूति वर्णन" से प्राचीन भारतीय भूगोल की जानकारी उपलब्ध होती है। खेट, कर्वट (खर्वट) मडंब, उपमहाद्वीप, अंतर्द्वीप आदि के उल्लेख पूर्ण रूप से प्राचीन और आधुनिक भूगोल को स्पष्ट करते हैं। इसी कृति में उन्होंने राजा, अधिराजा, माण्डलिक, अर्द्धमाण्डलिक, चक्रवर्त्ती अर्द्धचक्रवर्त्ती आदि की परिभाषाएँ भी प्रस्तुत की है, जो राजनैतिक-जीवन पर प्रकाश डालती है। कवि ने अपनी "पुकार-पच्चीसी" नामकी रचना में "ग्रामपति" शब्द का उल्लेख किया है, जिससे समकालीन पंचायती-राज्य-व्यवस्था का आभास मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के समय में ग्रामों में पंचायती-राज्य व्यवस्था कार्य करती थी।

(ग) कवि की विनम्रता

कवि देवीदास के साहित्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि वे शान्त, सरल, निश्छल एवं निरहंकारी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनकी किसी भी रचना में अहंभाव का दर्शन नहीं होता, बल्कि अपनी किसी-किसी रचना के अन्त में वे अत्यन्त विनम्र शब्दों में अपनी लघुता इस प्रकार व्यक्त करते है—

"मै तो मन्दबुद्धि, अल्पगुणी, साधारण-व्यक्ति हूँ। जिनेन्द्र भगवान की समरसवीतरागता और सम्यकत्व आदि का वर्णन करने में गण-फणपति भी स्तम्भित रह जाते हैं, तो फिर मेरी गणना ही क्या? मेरे पास न तो आगमों के अर्थ की अभिव्यक्ति का कौशल है और न छन्द-बन्ध की मूर्त्त-कला। उचित शैली के बिना मेरी मति और गति दोनों ही मलिन हो गई हैं। मैं तुच्छ बुद्धि होने के कारण साहित्य-प्रणयन में अपने को असमर्थ पाता हूँ। न तो मैंने गुरु के मुख से आगम-ग्रन्थों का श्रवण किया है और न ही उनका मनन। इसलिए मेरी काव्य-रचनाओं में यदि किसी प्रकार की कमी रह जाय या अनर्थ हो जाय तो हे विद्वज्जन, आप अपनी बुद्धिमत्ता से उसमें सुधार कर लीजियेगा।" यथा—

"अल्प बुद्धकरि अल्प गुन वरनैं देवियदास। परमानंद., १/१/३१
"देवीदास कहै मति मंद।। जीवचतुर्भेद., २/१२/३३
"यह समकित महिमा कथन गनफनपति थक होत।। दसधा., २/३/३
"ग्रन्थ अरथ छवि छंद की मूरति कला न पास।
सैली बिनु मैली भई गति-मति देवियदास।।" तीन मूढ़., २/१५/३८.

देवी अति-मति-मंद पुनि कहिवै कौं असमर्थ।
बुद्धिवंत धरि लीजियो जह अनर्थ करि अर्थ।।
गुरुमुख ग्रंथ सुन्यौ नहीं मुन्यौ जथावत आप।।" द्वादश., २/४/४७-४८

उक्त प्रसंगों से यह ध्यातव्य है कि अपने को मन्द बुद्धि, अल्पमति, अल्पज्ञ एवं काव्य-शक्तिहीन कहकर कवि के आत्म-परिचय की प्रवृत्ति प्राचीन परम्परा से ही चली आ रही है। संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी के अधिकतर जैन कवियों ने इस शैली का प्रयोग किया है। जैनेतर अपभ्रंश एवं हिन्दी साहित्य में भी यह प्रवृत्ति प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यथा—

"ताणणुकईण अम्हारिसाण सुईसद्दसत्थरहियाण।
लक्खणछन्दपमुक्कं कुकवित्तं को पसंसेई।।" सन्देश., १/७
"कोऊहलि भासिअउ सरलभाइ संनेहरासउ।
तं जाणिवि णिमिसिद्धु खणु बुहयण करिवि सणेह।" सन्देश., १/१९
पामरजणथूलक्खरिहिं जं।
"कवि न होऊँ नहिं वचन प्रवीनू सकल कला सब विद्याहीनू।
आखर अरथ अलंकृति नाना छंद प्रबंध अनेक विधाना।
कवित्त विवेक एक नहिं मोरे सत्य कहहूँ लिखि कागद कोरे। मानस., पृ. १२

(घ) कवि के जीवन की कुछ प्रेरक एवं मार्मिक घटनाएँ

कवि के जीवन में अनेक मार्मिक घटनाएँ घटित हुई थीं, जिनसे उनकी समरसता, सच्चरित्रता, निर्भीकता, आत्म-दृढ़ता एवं मितव्ययता आदि की जानकारी मिलती है। उनकी ये घटनाएँ भले ही लिखित रूप में कहीं उपलब्ध न हों, किन्तु परम्परा प्राप्त किंवदन्तियों के रूप में और उनके साधना स्थल दुगौड़ा ग्राम में आज भी गूँज रही हैं। उनमें से कुछ प्रमुख प्रेरक घटनाओं को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) समरसता

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, कवि की आजीविका का प्रमुख साधन कपड़े का छोटा सा व्यापार था। वह बंजी करके अपने परिवार का भरण-पोषण किया करते थे। गार्हस्थिक-जीवन में उनके परिवार में कुछ ऐसी असाधारण घटनाएँ भी घटित हुई थीं, जिनसे उनके जीवन की दृढ़ता, सच्चरित्रता एवं आत्म-संयम की कठोर परीक्षा हुई और उसमें वे खरे भी उतरे। इन कारणों से तत्कालीन साहित्यिकों एवं सामाजिकों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा बढ़ी।

बुन्देलखण्ड में आज भी यह रोमांचक किंवदन्ती प्रचलित है कि एक बार वे अपने छोटे भाई कमल के साथ उसके विवाह के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीदने हेतु ललितपुर (उत्तरप्रदेश) जा रहे थे। रास्ते में घना जंगल पड़ता था। वहीं कहीं कमल पर एक शेर ने सहसा ही आक्रमण कर उसे मार डाला। इस अप्रत्याशित दुखद घटना ने कवि के मन को झकझोर डाला, किन्तु शीघ्र ही उनका विवेक जगृत हो उठा और अपने को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा "कर्मों की गति विचित्र हैं, इसे कोई नहीं टाल सकता।" तत्पश्चात् वे रास्ते में ही उसका दाह-संस्कार कर घर लौट आए।

देवीदास स्नेह वश अपने उस भाई के लिए सब कुछ न्यौछावर करने के लिए तैयार रहते थे। बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि उसकी स्मृति को स्थायित्व देने के लिए ही वे गृहस्थ रूप में बने रहे और अपनी आध्यात्मिक कृतियाँ लिखते रहे। अपने लाड़ले सपूत की आकस्मिक मृत्यु से आहत अपनी माँ को ढाढस बँधाने के लिए, देखिए, उन्होंने कितने मार्मिक, पौराणिक उदाहरणों की चर्चा की है। वे कहते है— "हे माँ, देखो, संसार की गति कितनी विचित्र है। व्यक्ति जो सोचता है, वह कभी भी नहीं हो पाता। तुम जानती ही हो कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम को कहाँ तो सबेरे उठते ही पृथिवी-मण्डल का चक्रवर्त्ती पद प्राप्त करना था और कहाँ उसी सबेरे उन्हें यातनापूर्ण वनबास मिल गया। रावण ने सोचा था कि यदि वह राम के साथ युद्ध में जीत जायगा, तो सीता जी को राम के लिए वापिस लौटा देगा। किन्तु उसे युद्धस्थल में ही मृत्यु का वरण करना पड़ा। मैंने स्वयं भी सोचा था कि अपने भाई का धूमधाम के साथ विवाह करूँगा, किन्तु उसके पूर्व ही वह अकस्मात् चल बसा। माँ, काल की यह गति बड़ी ही विचित्र है। किन्तु इस विषम स्थिति में भी विवेक खो देने से प्राणी को कभी भी सद्गति नहीं मिल सकती। अतः इस शोक को धैर्यपूर्वक सहन करो, इसी में जीवन का सार है[१]।

(२) सच्चरित्रता

कवि देवीदास का उपनाम भायजी था। बुन्देलखण्ड में आदर सूचक यह एक लोकप्रिय विशेषण आज भी प्रचलित है। जो व्यक्ति ओजस्वी वक्ता, तत्वज्ञाता, प्रभावक एवं प्रेरक प्रवचनकर्त्ता होने के साथ कवि, संगीतकार एवं समाज के सुख-दुख में सदैव साथ देने वाला होता है, उसे "भायजी" की उपाधि से विभूषित किया

---

१. अनेकान्त ११/७-८/२७५

जाता था। कवि देवीदास में ये सभी सद्‌गुण थे। इसी कारण उन्हें भी वहाँ के लोग "भायजी" कहकर पुकारा करते थे।

कपड़ा बेचने के लिए आसपास के जिन ग्रामों में वे फेरी लगाया करते थे, उनमें से बछौड़ा नाम का एक ग्राम भी था। कहा जाता है कि वे वहाँ के एक साधर्मी-परिवार के यहाँ रुकते थे। उस परिवार में पाँच वर्ष का एक बालक था, जिसे भायजी बहुत स्नेह करते थे। यह बालक भी उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न होता था।

एक बार भायजी उसी परिवार में जाकर रुके। वह बच्चा उनके पास आकर खेलता रहा। उस समय की प्रथा के अनुसार उसके हाथों में चाँदी के कड़े पहना रखे थे। अगले दिन बालक की माँ ने नहलाने के समय जब बच्चे का कुर्ता उतारा तो ढीले होने के कारण एक हाथ का कड़ा कुर्ते में ही फँस कर रह गया। बच्चे के हाथ में कड़ा न देखकर माँ को आशंका हुई और वह सोचने लगी कि कहीं वह कड़ा भायजी ने न उतार लिया हो? वह तुरन्त उनके पास पहुँची और उनसे उस कड़े के विषय में पूछने लगी। भायजी ने उसकी आन्तरिक दुर्भावना को समझ लिया और अपनी अनभिज्ञता जताते हुए कहा कि शायद कपड़े के किसी गट्ठर के नीचे चला गया होगा, खोजने पर बाद में मिल जायगा।

यह कहकर भायजी दुखी होकर तुरन्त ही बाजार गए और ५ तोला चाँदी का कड़ा बनवाकर ले आए और अगले दिन ही जाकर उसे वह कड़ा देकर बतलाया कि यह कपड़े के गट्ठर के नीचे मिल गया है। कड़ा पाकर माँ बड़ी प्रसन्न हुई। दूसरे दिन जब माँ बालक को वही कुरता पहनाने लगी, तो उसमें बच्चे का वह कड़ा निकलकर जमीन पर गिर पड़ा। उसे देखकर वह सन्न रह गई और आत्मग्लानि से भरकर सोचने लगी कि मैंने व्यर्थ ही भायजी पर चोरी का सन्देह किया। उसने तुरन्त ही कड़ा लौटाते हुए भायजी से करबद्ध होकर क्षमा माँगी। किन्तु भायजी ने शान्त-मन से कड़ा उसी को लौटाते हुए कहा— कि "वस्तु के खो जाने पर व्यक्ति के मन में सन्देह तो उत्पन्न हो ही जाता है। यह तो मानव का स्वभाव ही है। किन्तु इसमें आपका कोई दोष नहीं।"

(३) शान्तभाव द्वारा हृदयपरिवर्तन

एक बार देवीदास गाँव के कुछ व्यापारियों के साथ कपड़ा बेच कर लौट रहे थे। रास्ते में एक घना जंगल पड़ता था। जब सन्ध्या होने लगी, तो उन्होंने कहा कि सब लोग यहीं पर रुककर सामायिक (सन्ध्या-समय का आत्म-चिन्तन) कर लें, तब आगे बढ़ेंगे। सभी लोगों ने उनका विरोध करते हुए कहा कि चूँकि

यहाँ घना जंगल है और चोर, लुटेरों का भी भय बना रहता है। अतः यहाँ से कुछ दूरी पर निरापद स्थान है, वहीं रुककर सन्ध्या-वन्दन कर लेंगें। यह कहकर वे सभी तो आगे बढ़ गए किन्तु देवीदास ने उनकी बात नहीं मानी, अपना कपड़े का गट्ठर घोड़े की पीठ से उतार कर उसे एक तरफ रख दिया और वे वहीं सामायिक करने बैठ गए और थोड़ी ही देर में आत्म-चिन्तन में लीन हो गए। इसी बीच कुछ चोर वहाँ आए और भायजी के कपड़े का गट्ठर उठाकर आगे बढ़ गए। लेकिन यह संयोग ही था कि थोड़ी दूर जाने पर उन चोरों के मन में यह विचार आया कि ''न जाने यह कौन साधु-पुरुष हैं? जो अपने ध्यान में मग्न है और यहाँ हम उसका माल लेकर भाग रहे हैं, ऐसे सन्त, महात्मा को कष्ट देने से हम महापाप के भागीदार हो जावेंगे। ऐसा सोचकर उन्होंने वह कपड़ा यथास्थान रख दिया। किन्तु आगे जाकर उन्हीं चोरों ने भायजी के उन सभी साथियों को मार-पीट कर उनका पूरा माल छीन लिया।

यह घटना हमें यह स्मरण दिलाती है कि कोई भी व्यक्ति अपने शान्त-परिणामों एवं अटूट श्रद्धाभक्ति द्वारा दुष्ट-स्वभावी व्यक्तियों का हृदय-परिवर्तन करने में भी सक्षम हो सकता है।

(४) मितव्ययता

एक अन्य घटना के अनुसार कवि देवीदास अपने अध्ययन के क्रम में एक बार उत्तरप्रदेश के किसी नगर में गए और वहाँ १२ महिने तक रहे। प्रवास-काल में वे अपने हाथ से ही भोजन बनाया करते थे। उस समय उन्होंने एक पैसे की लकड़ी में १२ महिने तक भोजन बनाया था। होता यह था कि वे प्रतिदिन एक पैसे की लकड़ी खरीदकर भोजन बनाते थे और भोजनोपरान्त उसका कोयला बुझाकर प्रतिदिन एक सुनार को एक पैसे में बेच दिया करते थे और अगले दिन उसी पैसे से पुनः लकड़ी खरीद लेते थे। यह क्रम १२ मास तक लगातार चलता रहा।

तो, यह थी कवि देवीदास की मितव्ययता की प्रवृत्ति, जो आज के युग में भी हमें वस्तुओं की उपयोगिता का सन्देश देती है। उनकी यह मितव्ययता केवल भौतिक वस्तुओं तक ही सीमित नहीं थी, अपितु साहित्य-लेखन में भी उन्होंने शब्दों की मितव्ययता से काम लिया और थोड़े से शब्दों में ही गूढ़ तथा गम्भीर दार्शनिक तत्वों का निरूपण कर दिया। इसका एक निम्न उदाहरण दृष्टव्य है—

'समदंसन नीर प्रमान कह्यौ तिन्हि कै घट जासु प्रवाह बह्यौ।
बधुवालुव कर्म अनादि खगे तसु फूटत नैंकु न बार लगे। दरसन., २/१४/७

६. कृतित्व

हम यह पूर्व में ही कह चुके हैं कि महाकवि देवीदास हिन्दी-साहित्य के रीतिकालीन कवि होकर भी भक्त-कवि के रूप में उभर कर सम्मुख आए हैं। कहा जा सकता है कि रीतिकालीन वातावरण में ये एक ऐसे भक्त कवि हैं, जिन्होंने हिन्दी-साहित्य में अपने काव्य-गुणों एवं आध्यात्मिक विषय-वस्तु के निरूपण की दृष्टि से अपनी विशेष पहिचान बनाई है। यद्यपि इस काल में अनेक जैन भक्त कवि हुए हैं किन्तु इस कवि की विशेषता यह है कि उसने घोर आर्थिक एवं पारिवारिक संघर्षों से जूझते हुए भी उनसे कभी हार नहीं मानी और उनके साथ-साथ अपनी लेखनी को भी जीवन्त बनाए रखा। उनकी एक अन्य विशेषता यह है कि वे बुन्देली-भाषा के अकेले हिन्दी जैन-कवि हैं, जिन्होंने उसके माध्यम से उस प्रदेश के श्रमण-संस्कृति के अनुयायियों के लिए विविध विषयक विशाल-साहित्य का प्रणयन तो किया ही, बुन्देली-भाषा को भी एक सशक्त साहित्यिक रूप प्रदान किया।

देवीदास की अन्य एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से बुन्देलखण्ड की समकालीन आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के भी अनेक संकेत किए है, इस कारण इनका समग्र-साहित्य दर्शन, धर्म, अध्यात्म, आचार, इतिहास, संस्कृति, भूगोल, भाषा-विज्ञान एवं लोक-चित्रण की दृष्टि से हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व रखता है।

यह आश्चर्य का विषय है कि हिन्दी-साहित्य के विकास में महान् अवदान देने वाले इस महाकवि की हिन्दी-साहित्य में कहीं, किसी भी प्रकार की चर्चा उपलब्ध नहीं. जैन इतिहासकारों ने भी क्वचित्, कदाचित् इनका नामोल्लेख अथवा जीवन सम्बन्धी कुछ किंवदन्तियों का उल्लेख करके ही सन्तोष प्राप्त कर लिया, जबकि उसके कृतित्व का सर्वांगीण मूल्यांकन होना चाहिए था।

उपलब्ध रचनाएँ

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है, महाकवि देवीदास ने अनेक रचनाओं का प्रणयन किया है। श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान, नरिया, वाराणसी के ग्रन्थागार में "देवीदास-विलास" नामका एक गुटका सुरक्षित है, जिसकी अधिकांश रचनाएँ अद्यावधि अप्रकाशित हैं। इन रचनाओं का परिचय आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रद्धेय पं. नाथूराम जी प्रेमी ने सन् १९१७ में प्रकाशित अपने "हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास" में देवीदास की केवल निम्न कृतियों की चर्चा की है—

१. परमानन्द-विलास, २. प्रवचनसार, ३. चिद्विलास-वचनिका, और ४. चौबीसी-पाठ। इन रचनाओं में देवीदास-विलास का नामोल्लेख नहीं है। डॉ. कामता प्रसाद[1] और पं. परमानन्द शास्त्री[2] ने भी देवीदास की उक्त रचनाओं के ही उल्लेख किए हैं, उनमें भी देवीदास-विलास का उल्लेख नहीं। प्रतीत होता है कि उनका मूलाधार भी सम्भवतः आदरणीय प्रेमी जी की ही खोज रहा है।

(क) ''देवीदास-विलास''.. नामकरण की समस्या तथा वर्गीकृत रचनाओं का परिचय

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कवि की रचनाओं के उल्लेख में पूर्वोक्त किसी भी विद्वान् ने ''देवीदास-विलास'' का उल्लेख नहीं किया। उन्होंने केवल ''परमानन्द-विलास'' का उल्लेख किया है[3]। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी विद्वानों ने उनकी पहली रचना ''परमानन्द-स्तोत्र'' को देखकर ही उक्त सम्पूर्ण ग्रन्थ का नाम परमानन्द-विलास कर दिया है, जैसा प्राचीन गुटकों में प्रायः देखा जाता है कि रचनाकार या प्रतिलिमिकार पहली रचना के आधार पर ही पूरी रचना का नामकरण कर देता है। यह भी सम्भव है कि उक्त ग्रन्थ के प्रतिलिपिकार ने ही प्रति के मुख-पृष्ठ पर ''परमानन्द-विलास'' लिख दिया हो और विद्वानों ने उसी को ग्रन्थ का पूरा नाम मानकर उसका उल्लेख कर दिया हो?

अभी कुछ समय पूर्व पं. गम्भीरमल जैन (अलीगंज) ने कवि के ''परमानन्दविलास'' की चर्चा जैन-सन्देश में की थी[4]। इसकी मूल प्रति यद्यपि मुझे देखने को नहीं मिली है किन्तु उन्होंने उसका जैसा परिचय दिया है, उसे देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि वह (परमानन्द-विलास) सम्भवतः देवीदास-विलास का ही अपर नाम हो?

वस्तुतः देवीदास-विलास के अध्ययन क्रम में मुझे कहीं भी ग्रन्थ के नामकरण रूप में ''परमानंन्द-विलास'' पद दृष्टिगोचर नहीं हुआ और देवीदास-विलास की जो प्रति मुझे प्राप्त हुई है उसको देवीदास ने स्वयं ही लिपिबद्ध किया है, जैसा कि उन्होंने अपनी उपदेश-पच्चीसी'' के अन्त में लिखा है कि ''इसे मैने ललितपुर

१. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ. २१८

२. अनेकान्त, पत्रिका (११/७-८/२७४)

३. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ. ८१ एवं हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ. २१८.

४. जैन-सन्देश, मथुरा १४ दिसम्बर १९८९ एवं ५ अप्रैल १९९०.

में बैठकर स्वयं अपने हाथों से लिखा है''। अतः उपरोक्त तथ्यों के आधार पर उक्त रचना का, उपलब्ध गुटके के नामकरण के आलोक में ''देवीदास-विलास'' नाम ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

(ख) प्रवचनसार

प्रेमी जी द्वारा उल्लिखित कवि की दूसरी रचना ''प्रवचनसार'' है। यह रचना आचार्य कुन्दकुन्द के प्रवचनसार का हिन्दी पद्यानुवाद है। यह अद्यावधि अप्रकाशित है। इस ग्रन्थ की एक मात्र पाण्डुलिपि जयपुर के तेरहपंथी बड़े मन्दिर में सुरक्षित है। इसकी रचना के सम्बन्ध में कवि ने स्वयं ही स्पष्ट किया है, कि ''आचार्य कुन्दकुन्द'' ने प्राकृत-भाषा में प्रवचनसार की रचना की। उसकी संस्कृत-टीका अमृतचन्द्र ने लिखी। उन्हीं की परम्परा को आगे बढ़ाते हुए पाण्डे हेमराज ने उसकी हिन्दी में बालबोध नामकी टीका की रचना की और उसी का अवलोकन करके मैंने भी अपनी भाषा में पद्यों को गूँथकर इस ग्रन्थ की रचना की है।'' यथा—

''प्रवचनसार या ग्रन्थ जाके करता कुंदकुंद मुनिराज भये प्राकृत के।
जाको शब्द कठिन करके संस्कृत कीनौ अमृतचंद ने सुधारी महाव्रत के
तिनहि की परम्परा सौ पांडे हेमराज ने बालबोध टीका देखि कह्यो सो इम लइके।
जाकौ भेद पाई देवीदास पुनि भास धरयो माखन ते होत जैसे करतार घृत के।
प्रवचन. पद्य., ९५-९६।

उक्त ग्रन्थ में मूल विषय-वस्तु को दस अधिकारों में सुनियोजित किया गया है। ग्रन्थ में पद्यों की कुल संख्या ४३४ है। प्रारम्भ में कवि ने वर्तमान तीर्थंकरों की स्तुति, अतीत एवं भविष्य में होने वाले तीर्थंकरों की वन्दना, पंचपरमेष्ठी की स्तुति एवं अपनी विनम्रता को व्यक्त करते हुए, ग्रन्थ में निहित दस अधिकारों की विषय-वस्तु का परिचय दिया है। यथा—

''महाग्यान कौ सुअधिकार सोहे प्रथम ही,
अधिकार दूसरौ अतिन्द्री सुख भोग कौ।
ग्यान-तत्व दरसे सामान्य गेय अधिकार,
आचरन कौमुदार जती कीथ रोग कौ।
मोख पंथ धारौं सुद्धोपयोगी कौ अधिकार,
और अधिकार भारी सुभ उपयोग कौ।
देवीदास कहैं मै तो थोरी बुद्धि सौं बखानौ,
ग्रन्थ यौं खजानौं जानौ चरनानजोग को।। प्रवचन; पद्य. ३८

इस प्रकार कवि ने स्वयं ही उक्त ग्रन्थ को चरणानुयोग का खजाना माना है।

(ग) चिद्विलासवचनिका

कवि की तीसरी रचना चिद्विलास-वचनिका है। इस रचना का मात्र उल्लेख ही प्राप्त होता[1] है। यह रचना आज तक न तो हस्तगत ही हो सकी है और न ही उसके सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त हो पाई है। अतः इसके सम्बन्ध में कुछ भी लिख पाना सम्भव नहीं।

(घ) चौबीसी पूजा-पाठ आदि

कवि की चौथी रचना चौबीसी-पाठ है। इसका प्रकाशन सन् १९७१ में द्रोणगिरि से "श्री वर्तमान चतुर्विंशति-जिन-पूजा मण्डल-विधान" के नाम से हो चुका है। इसमें चतुर्विंशति-जिन पूजा, अंगपूजा, अष्टप्रातिहार्यपूजा, अनन्तचतुष्टयपूजा, अष्टादश दोष रहित जिनपूजा, चतुर्विंशति-जिन स्तुति, जन्म के दस अतिशय, केवलज्ञान के दस अतिशय एवं देवकृत चौदह अतिशय का वर्णन अत्यन्त सरल एवं सरस भाषा-शैली में किया गया है[2]।

इस रचना की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें कवि ने अन्त्यप्रशस्ति में अपना संक्षिप्त जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है, जिससे कवि के जीवन-वृत्त के लेखन में कुछ सहायता मिल जाती है।

देवीदास-विलास की अन्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है :—

(१/१) परमानन्द स्तोत्र

प्रस्तुत रचना अकलंकदेव द्वारा संस्कृत-भाषा में रचित परमानन्द स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद है। इसकी २४ चौपाइयाँ तो अनुवाद की है एवं अंतिम ६ दोहे कवि ने स्वयं ही सृजित किए हैं। कवि की यह रचना बड़ी ही सरस एवं मार्मिक है। कवि ने इसका प्रारम्भ दोहरे नामक छन्द से किया है और बीच में २२ चौपाइयों में आत्मतत्व को विभिन्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है। अन्त में कवि ने पुनः दोहरा-छन्द का प्रयोग किया है। यह रचना आत्म-रहस्य और अध्यात्म-तत्व से आप्लावित

---

१. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ. ८१

२. श्रीवर्तमान चतुर्विंशतिजिनपूजामण्डलविधान, सम्पा.—पं. मोतीलाल, द्रोणगिरि सन् १९७१।

इसकी प्रकाशित प्रति को उपलब्ध कराने के लिए मैं डॉ. कमलकुमारजी जैन छतरपुर एवं डॉ. ऋषभचन्द्र जी फौजदार आरा के प्रति विशेष आभार व्यक्त करती हूँ।

है। अध्यात्म-परक शब्दावली के माध्यम से कवि ने आत्मतत्व का पूर्ण ज्ञान प्रदान करने का प्रयत्न किया है।

इसमें आत्म-तत्व को परमात्मा, परमब्रह्म, परमानन्द आदि नामों से अभिहित किया गया है। निषेधात्मक शब्दों के द्वारा भी आत्म-सत्ता का बोध सरल रूप में कराया गया है। आत्मा को चेतना-शक्ति मानते हुए उसे निराकार, निर्लोभी, निर्विकार, निर्ग्रन्थ, निर्मल, निर्गद (वाणी-रहित), निर्द्वन्द्व, निर्बाध (बाधारहित), निकाज, निरसंग आदि रूपों में व्यक्त किया गया है।

आत्मा सदैव आनन्दमय है। वह अमृत रूपी ज्ञान का पान कराकर निर्वाणपद को प्राप्त कराने वाली है। इस शरीर रूपी घट में ही आत्मा का निवास है। जिस प्रकार पत्थर में सोना छिपा रहता है, दूध और दही में घी सम्पृक्त रहता है तथा तिल के बीच तेल छिपा रहता है और परिश्रम करने पर वह प्रकट हो जाता है, ठीक उसी प्रकार, यह आत्मतत्व भी देह-घट में ही समाहित रहता है। किन्तु निर्मल-ध्यान के द्वारा वह भी प्रकट हो जाता है। यह आत्मा जल एवं कमल पत्र के सदृश ही शरीर से भिन्न रहती है। इसे भेद-विज्ञान के द्वारा ही जाना-समझा जा सकता है।

कवि ने बड़ी विनम्रता के साथ अपने को अल्प-बुद्धि और अल्पगुणी बतलाते हुए इस स्तोत्र की रचना की है। कवि ने आत्म-स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उदाहरण अलंकारों की जो सुन्दर योजना की है, वह अद्वितीय है। प्रस्तुत रचना में कुल ३१ पद्य हैं।

कवि के कथनानुसार उसने किसी संस्कृत-भाषा के परमानन्द-स्तोत्र (श्लोकबद्ध) का यह पद्यानुवाद किया है। उसका लेखक कौन था, इसकी सूचना कवि ने नहीं दी. किन्तु अन्य साक्ष्यों के अनुसार वह अकलंक देव के संस्कृत परमानन्द-स्तोत्र का पद्यानुवाद है।

(१/२) जिनस्तुति

कवि ने ''जिनस्तुति'' नामक रचना ''हरदौर-राग'' में प्रस्तुत की है। इस रचना में जिनेन्द्र की स्तुति करते हुए कवि ने कहा है कि जिनेन्द्र तीनों लोकों के ईश है, उनके समान दूसरा कोई नहीं है। उनके रोग, शोक, राग-द्वेष आदि सभी दुर्गुण नष्ट हो चुके हैं, वे चौतीस अतिशयों एवं छयालीस गुणों से युक्त हैं। उनके नाम का स्मरण करने मात्र से ही राजा श्रीपाल समुद्र को तैरकर सकुशल वापिस आ गया। मुनि मानतुंग ने भी उनका स्मरण किया, तो वे भी लौह-शृंखलाओं से मुक्त हो गए। मुनि वादिराज ने भी उनका ध्यान किया और वे भी कुष्ट-व्याधि से छुटकारा पा गए। इसमें कुल आठ पद्य हैं।

इस रचना में कवि ने तीर्थंकर के नाम-स्मरण पर अधिक बल दिया है। उसका कथन है कि तीर्थंकर की महिमा इतनी विस्तृत है, कि नाग, सुर, गन्धर्व सभी उसकी विनती करते-करते थक गए, लेकिन कोई भी उसका पार नहीं पा सका।

(१/३) जिननामावली

प्रस्तुत लघु रचना में कवि ने ऋषभ आदि चौबीस तीर्थंकरों का सरस एवं सरल भाषा-शैली में गीतिका-छन्द में गुणानुवाद किया है। इसमें कुल पाँच पद्य हैं।

पहले पद्य में कवि ने पंच-परमेष्ठी को नमस्कार किया है। तत्पश्चात् अगले पद्यों में २४ तीर्थंकरों की महिमा का वर्णन किया गया है। कवि का कथन है कि उनके गुणों का ध्यान करके मानव-जीवन सुख-शान्ति से परिपूर्ण हो जाता है।

(१/४) चतुर्विंशति-जिनवन्दना

प्रस्तुत रचना कवि ने २४ पद्यों में की है। इसमें कवित्त, सवैया, तेईसा, छप्पय एवं कुंडलिया नामक छन्दों में २४ तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए बतलाया गया है कि उनके शरीर का वर्ण स्वर्णाभ है एवं उनकी शोभा करोड़ों सूर्यों की प्रभा से भी अधिक है, जिससे कामदेव भी लज्जित हो जाता है। ऐसे ऋषभदेव ने कठोर साधना कर सिद्ध स्वरूप को प्राप्त किया है।

तत्पश्चात् कवि ने शेष तीर्थंकरों का गुणानुवाद करते हुए तथा सभी की महानताओं का वर्णन कर यह प्रार्थना की है कि उनके निर्मल गुण उनके भक्तों को भी प्राप्त हों, जिससे वे भी तीर्थंकरों की अवस्था तक पहुँच सकें।

(२/१) पंचवरन के कवित्त

कवि ने पाँच रंगों के माध्यम से २४ तीर्थंकरों की आराधना की है। उन्होंने सवैया-इकतीसा नामके छन्द में प्रतीक शैली में पाँच वर्णों का विशद् विश्लेषण किया है। प्रथम पाँच छन्दों में नेमिनाथ-तीर्थंकर की स्तुति और अन्तिम-छन्दों में २३ तीर्थंकरों का उनके वर्णों के अनुसार वर्णन किया गया है। उनके इन वर्णनों में अनुप्रास और यमक की भी सुन्दर योजना की गई है। ऐसा प्रतीत होता है, मानों रंग-बिरंगे पुष्पों की सुरभि से सारा वातावरण ही सुगन्धित हो उठा हो। इतना ही नहीं, कवि ने विविध उत्प्रेक्षाओं द्वारा सुन्दर एवं सरस उद्भावनाएँ भी की हैं, जो अपने आप में अनुपम हैं। कवि ने अपने चर्मचक्षुओं से देखे गए पदार्थों का अनुभव करके उन्हें अपनी कल्पना के रंगों द्वारा इस प्रकार सजाया है मानों बाह्यजगत एवं अन्तर्जगत का सुन्दर समन्वय ही हो गया हो। कवि का यह वर्णन पूर्णरूपेण मनोवैज्ञानिक है। सभी रंग अपने आप में प्रतीकों को व्यक्त कर रहे हैं। मनोवैज्ञानिक

विश्लेषणों के आधार पर लाल, काला, सफेद, पीला और हरा ये पाँचों रंग अथवा वर्ण अपने आप में मानवीय संस्कृति के प्रतीक माने गए हैं। इन वर्णों का संक्षिप्त विश्लेषण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

(क) लाल रंग—यह रंग शक्ति और प्रेम का प्रतीक है, साथ ही बहुमुखी प्रतिभा एवं अदम्य साहस और स्फूर्त्ति का परिचायक भी। सफलता प्राप्त करना ही इस रंग का लक्ष्य है। कवि ने इस रंग के द्वारा तीर्थंकर नेमिनाथ की यौवनावस्था का चित्र अंकित किया है। शरीर का रूप-रंग एवं उस पर धारण किए गए वस्त्राभूषण सभी लाल रंग के हैं, जिनको देखकर करोड़ों कामदेव (प्रेम के देवता) एवं करोड़ों सूर्य (शक्ति के प्रतीक) भी लज्जित हो जाते हैं। कवि ने वैराग्य की भूमिका के रूप में इसका उपयोग किया है, जो पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है।

(ख) काला रंग— यह रंग दृढ़ता एवं शान्ति का प्रतीक है। इससे गरिमा की प्राप्ति होती है। वैराग्य की अवस्था तक पहुँचने के लिए जितने भी कारण हो सकते हैं, कवि ने उन सबको काले रंग में चित्रित किया है। नेमिनाथ स्वयं काले हैं, जिस नागशैय्या का उन्होंने दलन किया है, वह भी काली है। यहाँ तक कि वैराग्य का कारण बनने वाले पशु, गुफा, गिरनारगली एवं गिरनार-पर्वत सभी काले हैं। उस पर बैठे हुए काले वर्ण वाले नेमिनाथ ऐसे प्रतीत हो रहे हैं जैसे— गजकुंभ के ऊपर भौंरा क्रीड़ा कर रहा हो। यहाँ पर कवि ने कल्पना की उड़ान के द्वारा सुन्दर भावोत्कर्ष का मोहक एवं सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

(ग) श्वेतरंग— यह रंग निर्मलता, पवित्रता, उत्तरोत्तर वीतराग-अवस्था एवं शान्ति का प्रतीक है। कवि ने नेमिनाथ की वीतराग-अवस्था की उपमा श्वेत-कमल से देते हुए ध्यान, मुक्ति-गली एवं उनके चिन्ह (शंख) को श्वेत बतलाया है और मनभावनी एवं मनको निर्मल बनाने वाली उत्प्रेक्षा की है कि ऐसा प्रतीत होता है, मानों श्वेत कंज पर भौंरा कल्लोलें कर रहा हो।)

(घ) पीला रंग— यह रंग नवीनता, आधुनिकता एवं उन्नत प्रगतिशील भविष्य का परिचायक है। सैद्धान्तिक निरूपण एवं ठोस कार्य करना ही इसकी विशेषता है। कवि ने इस रंग का चित्रण तीर्थंकर नेमिनाथ के समवशरण के समय किया है। समवशरण की प्रत्येक वस्तु पीले रंग की है एवं पीली गंधकुटी पर बैठे हुए श्यामवर्ण नेमिनाथ इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं, मानों चम्पाकली पर भौंरा क्रीड़ा कर रहा हो।

(ङ) हरा रंग— यह रंग व्यक्तित्व की स्थिरता, समता, लगनशीलता, तथा नीति, सिद्धान्त एवं संवेदनशीलता को प्रकट करता है। कवि ने संसार का बन्धन कराने

वाले राग-द्वेष, माया, मोह और काम आदि कर्मों का हरण (नाश) करने के लिए इस रंग का वर्णन किया है। हरे रंग में ऐसी शक्ति है कि वह सभी कर्मों के साथ जन्म-मरण के चक्कर का भी हरण कर लेता है।

अन्त में कवि ने बतलाया है, यह रंग कर्म रूपी मल का हरण तुषार के समान कर लेता है। सुपार्श्व एवं पार्श्व प्रभु इसी रंग के हैं। चन्द्रप्रभु और पुष्पदन्त श्वेतरंग के हैं। पद्मप्रभु एवं वासुपूज्य लालरंग के हैं। मुनिसुव्रत और नेमिनाथ काले रंग के और बाकी १६ तीर्थंकर स्वर्णाभ (पीत-वर्ण) हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रस्तुत रचना के वर्ण्य-विषय में मनोवैज्ञानिकता ऐतिहासिकता एवं प्राकृतिक सौन्दर्य की रत्नत्रयी का सुन्दर समन्वय हुआ है।

(२/२) सप्त व्यसन

उक्त रचना गंगोदक-छन्द में लिखी गई है। इसमें कुल ९ पद्य हैं, जिनमें सात व्यसनों की निन्दा करते हुए उनके बुरे परिणामों का वर्णन बड़ी सरल भाषा-शैली में किया गया है।

कवि ने सर्वप्रथम (१) जुआ नामक व्यसन का वर्णन किया है और उदाहरण-स्वरूप पंच पाण्डवों का कथानक प्रस्तुत किया है। तत्पश्चात् कवि ने (२) सुरापान-प्रसंग में यादववंश के नाश एवं द्वारिका-दहन की कथा का दृष्टान्त दिया है। (३) वेश्या-वर्णन में चारुदत्त की कथा (४) चोरी-व्यसन में शिवभूति-कथा का वर्णन एवं (५) परनारी में आसक्ति रखने वाले प्रकरण में रावण का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। उसके बाद (६) माँसभक्षण एवं (७) शिकार-व्यसन का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत रचना में कवि ने पौराणिक-कथाओं के उदाहरण द्वारा यह व्यक्त किया है कि जब मात्र एक व्यसन को अपनाने से समृद्धशाली महापुरुष भी दर-दर की ठोकरें खाने को विवश हो गए, तब जो लोग उक्त समस्त व्यसनों को अपनाते हैं, उनकी इस लोक में ही नहीं, परलोक में भी महादुर्गति होती है। अतः विवेकीजन को चाहिए कि वह तत्काल ही समस्त व्यसनों का त्याग कर दे।

(२/३) दसधा-सम्यक्त्व

कवि ने उक्त रचना में सम्यकत्व के दस भेदों का संक्षिप्त विश्लेषण किया है। जैनधर्म का मूलाधार सात तत्वों एवं नव पदार्थों के प्रति श्रद्धान करना है। वहीं से मानव के विकास की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है।

कवि ने १३ प्रकार के विभिन्न छन्दों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र का वर्णन करके यह बतलाया है कि सभी भव्य जनों को वीतराग भाव जागृत करने के लिए त्रिरत्नों का पालन करना आवश्यक है क्योंकि त्रिरत्न ही मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रथम सोपान हैं। इसके पालन के बिना मनुष्य वैराग्य में प्रवृत्त नहीं हो सकता। उक्त दस प्रकार का सम्यक्त्व निम्नप्रकार का है—

(१) आज्ञा, (२) मार्ग, (३) उपदेश, (४) सूत्र, (५) बीज, (६) संक्षेप (७) विस्तार (८) अर्थ, (९) अवगाढ़ एवं (१०) परमावगाढ़। सम्यक्त्व के उक्त दस प्रकार व्यक्ति की रुचि के भेद से माने गये हैं।

सम्यक्त्व के प्रकाश के कारण जीव की संसार के परिभ्रमण से अरुचि हो जाती है। एक बार सम्यक्त्व हो जाने पर वह संसार-दशा में अर्द्धपुद्गल परावर्त्तन-काल से अधिक नहीं रहता। यद्यपि वह भी अनन्तकाल है, तथापि सीमित है। अतः सम्यक्त्वी जीव शीघ्र ही निर्वाण का भागी हो जाता है।

(२/४) द्वादसानुभावना

कवि ने ४८ दोहरा-छन्दों में उक्त रचना की है। कवि की द्वादशभावनाओं का क्रम वह नहीं है, जो आचार्य कुन्दकुन्द, स्वामीकार्त्तिकेय एवं उमास्वाति की भावनाओं में पाया जाता है। कवि ने संवर-भावना के बाद बोधि-दुर्लभ और लोक-भावना का विवेचन किया है, तत्पश्चात् निर्जरा और धर्म-भावना को वर्णन क्रम में रखा है।

कवि को जीवन की क्षणभंगुरता एवं अपूर्णता की गम्भीर अनुभूति थी, इसलिए उसने विश्व की वेदना का अनुभव तत्व चिन्तन एवं आत्म-मनन का विश्लेषण करते हुए आत्म-तत्व का दिग्दर्शन कराया है।

प्रस्तुत रचना में उसकी दृष्टि केवल आत्मनिष्ठ न होकर लोकहित से भी परिपूर्ण है। कवि ने बारह भावनाओं के माध्यम से मानव-मन की शुद्धि पर बल देते हुए एवं भौतिकवाद की विगर्हणा करते हुए बतलाया है कि मोह ही एक ऐसा नशा है, जो मानव की बाह्य प्रवृत्तियों को जागृत कर देता है और वह स्वयं ही कर्म-कालुष्य में जकड़ जाता है एवं सुख-शान्ति से वंचित हो जाता है। कवि के अनुसार शान्ति प्राप्त करने का एक ही साधन है— समतारस। इस समतारस को प्राप्त करके ही आन्तरिक सत्यता को जाना जा सकता है। इसलिए कवि ने बाह्य जगत् के स्थान पर आत्मजगत् के सौन्दर्य का इस प्रकार चित्रण किया है, जिससे अन्तर का ज्ञान

सहज ही में हो जाय। उनकी यह रचना दार्शनिकता, सैद्धान्तिकता एवं सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की दृष्टि से परिपूर्ण है।

इस रचना की एक अन्यतम विशेषता यह है कि कवि ने इसके ४५ वें छन्द में स्वयं ही स्पष्ट किया है कि मूल प्राकृत-भाषा की द्वादश-भावना को देखकर मैंने हिन्दी भाषा में इसकी रचना की है।

अन्त में रचनाकाल एवं स्थान का नाम आदि भी दिया गया है। कवि ने यह रचना वि. सं. १८१४ कुंवार सुदी १२ गुरुवार को दुगौड़ा[1] नामक ग्राम में बैठकर समाप्त की थी। यथा—

साल अठारह सै सु फिर[2] धरौ चतुर्दस और।
दुतिय कुँवार सु द्वादसी गुरुवासर सुख ठौर।।

(२/५) शीलांग चतुर्दशी

प्रस्तुत रचना मात्र १४ दोहरा-छन्दों में है। इसमें कवि ने शील अर्थात् चारित्र के समस्त भेद-प्रभेदों का वर्णन किया है।

कवि ने सर्वप्रथम मन, वचन, काय एवं कृत, कारित, अनुमोदना के द्वारा शील के ३६ भेद किए। पुनः पाँच इन्द्रियों को लेकर ३६ X ५ कर इसके १८० भेदों का निरूपण किया है। तत्पश्चात् कामदेव के दस भेदों का वर्णन किया गया है। इन दस भेदों का १८० में गुणा कर देने से शीलांग के १८०० भेद हो जाते हैं।

कामदेव के इन दस भेदों के प्रकट होने से शरीर और मन की जो स्थिति हो जाती है, उस पर कवि ने सुन्दर प्रकाश डाला है। कामदेव के दस भेदों की तरह शरीर और मन के लक्षण भी दस है। जिस प्रकार शृंगार-रस में वियोग की स्थिति आने पर चिन्ता,' दीर्घोत्छ्वास, कामज्वर, मूर्च्छा आदि संचारी-भावों की जागृति होती है, उसी प्रकार इसमें भी दस भावों की जागृति होती है। जैसे— १. चिन्ता २. दर्शन, ३. दीर्घोच्छ्वास, ४. कामज्वर, ५. शरीर की जलन ६. भोजन-अरुचि, ७. मूर्च्छा ८. कामवासना, ९. प्राणसन्देह एवं १०. प्राणमोचन।

इस प्रकार कवि ने सांसारिक-प्राणियों को शील के समस्त भेदों का स्पष्ट वर्णन कर उन्हें शील पर दृढ़ रहने का उपदेश दिया है।

---

१. दे. द्वादस-भावना की पुष्पिका

२. मूल प्रति में ''पिर'' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(२/६) धरम-पच्चीसी

धर्म-पच्चीसी की रचना कवि ने "ढाल छंद" में की है। इसमें कुल २५ पद्य है। उनमें कवि ने अनेक दृष्टान्तों के द्वारा धर्म की महत्ता का प्रतिपादन किया है, साथ ही उसकी व्यापकता का प्रसार भी किया है। कवि ने जिनधर्म को सभी पुरुषार्थों का मूल बतलाया है। उसके अनुसार सभी पर्यायों में मानव-पर्याय ही सर्वोत्तम है, जिसके माध्यम से सर्वोच्च-पद (मोक्ष) को प्राप्त किया जा सकता है।

धर्म को न मानने वालों की कवि ने तीव्र-भर्त्सना करते हुए कहा है कि जो लोग धर्म का त्याग करके मिथ्यात्व और विषय-विकारों का पोषण करते हैं वे मूढ़ व्यक्ति अमृत-रस को त्याग कर विष का साक्षात् पान करत हैं अथवा वे कल्पवृक्ष को काट कर उसके स्थान पर "आक" के वृक्ष को अपने दरवाजे पर रोपते हैं।

इस प्रकार अनेक दृष्टान्तों के द्वारा उन्होंने धर्म के महत्व को प्रतिष्ठित किया है और मानव-समाज को धर्म में प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्रदान की है। क्रोध, मान, माया और लोभ जैसे विकारी भावों में रमण करने वाले व्यक्तियों को किस गति की प्राप्ति होती है, इस पर भी कवि ने विचार किया है।

(२/७) पंचपद-पच्चीसी

प्रस्तुत रचना में कुल २५ पद्य हैं। इसका प्रारम्भ दोहरा-छन्द से हुआ है। तत्पश्चात् छप्पय-छन्द का प्रयोग किया गया है।

कवि ने इसमें पंच परमेष्ठी की महिमा का गान किया है और स्पष्ट कहा है कि इसे उसने केवल अपनी बुद्धि एवं अनुभव से प्रकाशित किया है।

प्रस्तुत रचना के छप्पय बड़े ही सरस, प्रवाह-पूर्ण एवं सारग्राही हैं। कवि वस्तुतः संसार की क्षणिकता से सुपरिचित है, अतः वह स्वानुभव से सांसारिक जीवन को भी सुखमय बनाने की दृष्टि से भौतिकता के साथ-साथ ऐसे आध्यात्मिक-रस की धारा प्रवाहित करना चाहता है, जिसमें शाश्वत सुख की प्राप्ति की आशा का संचार एवं नव-जीवन का सन्देश सन्निहित हो। इसीलिए उसने पंचपरमेष्ठी के गुणों एवं महिमा को प्रकाशित कर मानव के आत्मोद्धार के लिए एक नया मार्ग प्रशस्त करने का प्रयत्न किया है।

कवि का कथन है— कि पंचपरमेष्ठी का जाप ही प्राणी के लिए भवोदधि से पार उतारने वाला जहाज है। वीतरागी-अरहन्त ही शिवलक्ष्मी के ऐसे महानायक हैं, जिन्होंने मिथ्याज्ञान को जड़मूल से जलाकर भस्म कर दिया है। उन जैसे

लोकोपकारी महाप्रभु का वर्णन करने में शेषनाग की जिह्वा भी सर्वथा असमर्थ है। शिखर-लोक में सिद्ध-शिला पर विराजने वाले सिद्ध भगवान ही परमसिद्धि को प्रदान करने वाले हैं। सिद्ध प्रभु समस्त भव्य जीवों को इस कलिकाल से छुटकारा दिलाने में समर्थ हैं।

आचार्य-पदधारण करने वाले परमेष्ठी ही सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चरित्र को प्रकाशित करने वाले हैं। चौथे, उपाध्याय ही इन्द्रिय-जनित विकल्पों से मुक्त कर समरसता का पान कराने वाले हैं। अन्त में लोक के सभी साधुओं को नमस्कार करते हुए कवि ने कहा है कि "पाप-पुण्य से उद्धार करने वाले, भोगरूपी सर्पों से छुटकारा दिलाने वाले तथा सप्त-तत्वों का वर्णन करने वाले, सर्वसाधु ही हमें सुबुद्धि देने वाले हैं। अतः उन सभी त्रिकालवर्त्ती परमश्रेष्ठ महापुरुषों को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। क्योंकि उन्हीं पंचपरमेष्ठियों के मन्त्र का जप-ध्यान करने से जिनपद की प्राप्ति सम्भव है।

इस पंच परमेष्ठी स्तुति के द्वारा कवि ने जैन-दर्शन एवं सिद्धान्त के गूढ़ रहस्यों का बड़े ही सरल और प्रभावोत्पादक ढंग से निरूपण किया है, जो अत्यन्त प्रेषणीय है।

(२/८) पुकार-पच्चीसी

इसकी रचना कवि ने सवैया-तेईसा नामके छन्द में की है। इसकी कुल पद्य संख्या २५ हैं। इस रचना का प्रतिपाद्य तो इसके शीर्षक से ही स्पष्ट है। कवि ने संसार के विषय-जन्य क्षणिक सुखों की सारहीनता एवं अबाध-गति से चलने वाले जन्म-मरण के कष्टदायी चक्कर से ऊबकर अपने आराध्य करुणा-निधान एवं गरीबनवाज को अपने उद्धार के लिए पुकार लगाई है। कवि की इस पुकार में दीनता, करुणा, विनम्रता एवं मार्मिकता पूर्णरूपेण मुखरित हुई है।

कवि ने जीवन में चिरन्तन-सत्य और सत्य की प्रक्रिया को जिस रूप में देखा, उसी रूप में उसकी अभिव्यक्ति जन-कल्याण हेतु कर दी है। अनादिकाल से मानव किस प्रकार विषय-रस के फलों को खाकर निरन्तर संसार-परिभ्रमण करता आ रहा है, इस तथ्य का वर्णन करते हुए कवि ने चारों गतियों का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। कवि को केवल अपने भटकने की चिन्ता नहीं है किन्तु जब वह सम्पूर्ण प्राणीजगत् को इसी रूप में देखता है, तो करुणा से भरकर अधिक चिन्तनशील हो उठता है। उसकी यह चिन्तनशीलता शरदपूर्णिमा की स्निग्ध चाँदनी के समान चमक उठती है। वह सम्पूर्ण मानव जगत् को इस बन्धन से छुटकारा दिलाना चाहता है और दयार्द्र होकर एक सेवक के समान इस प्रकार पुकार उठता है—

"बेरहि बेर पुकारत हौं जन की बिनती सुनिए जिनराई।"

(२/९) वीतराग पच्चीसी

पच्चीस सवैया-पद्यों में समाप्त होने वाली कवि की यह एक प्रभावक लघु रचना है, जिसमें उसने वीतराग-भावों का सरस और सजीव चित्रण किया है। कवि के ये सवैया पद्य बड़े ही रोचक, मनोहर और अन्तस्तल में प्रविष्ट हो जाने वाले हैं। कवि ने व्यक्तिगत रूप से जीवन की निस्सारता का अनुभव किया था और इस दुखद निस्सारता से छुटकारा पाने के लिए उसने केवल एक ही उपाय बतलाया है— वीतराग तत्व की प्राप्ति। मानव-जीवन में विरक्ति-भाव को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन माना गया है, इसीलिए कवि ने अनेक दृष्टान्तों के द्वारा वीतराग-भावना को जागृत करने का विधान भी बतलाया है तथा जीवन के विकास के लिए इसे परमावश्यक भी माना है। कवि का विचार है कि विश्व में फैली हुई मानव-मन की कलुषता या प्रतिद्वन्द्विता की समाप्ति का एक मात्र समाधान वीतरागता ही है।

उक्त मर्मस्पर्शी दार्शनिक रचना में चेतन-आत्मा की तीन अवस्थाएँ बतलाई गई हैं—

१. अशुभ २. शुभ, और ३. शुद्ध। राग-दोष, विषय-कषाय एवं अज्ञान-निद्रा में निमग्न होकर यह आत्मा अशुद्धोपयोगी होकर नरक एवं तिर्यंच-योनि में भटकती रहती है। किन्तु सांसारिक स्वार्थपरता और रागात्मक मोह-सम्बन्धों का परित्याग कर देने से वह शुभोपयोगी हो जाती है। शुभोपयोगी जीव अरहन्त-पद को प्राप्त करके शुद्धोपयोग के द्वारा सिद्धपद प्राप्त करता है। इन रूपों को सिद्ध करने के लिए कवि ने उदाहरण-अलंकार का आश्रय लिया है और मार्मिक दृष्टान्तों द्वारा उन्हें सुस्पष्ट किया है।

इसी प्रकरण में कवि ने सम्यक्‌भाव, पाप-पुण्य, राग-द्वेष, क्षायिक ज्ञान, व्यवहारनय, निश्चयनय आदि सैद्धान्तिक तत्वों का निरूपण भी सरस एवं हृदयग्राही ढंग से किया है।

कवि ने वीतराग-पच्चीसी की रचना के प्रेरक-प्रकरणों का भी उल्लेख किया है। उसने "प्रवचनसार" एवं उसकी बालबोध टीका से प्रेरणा लेकर इस रचना को लिखा है।

(२/१०) उपदेश पच्चीसी

इसकी रचना २५ दोहरा-छंदों में की गई है। कवि ने इसमें श्लेषात्मक-शैली का प्रयोग किया है। पारिवारिक सम्बन्धों के माध्यम से उपदेश देने की कवि की

यह शैली अनूठी है। हिन्दी-साहित्य की उपदेश मूलक-रचनाओं में यह रचना मौलिक एवं सम्भवतः सर्वप्रथम विरचित है।

उक्त रचना में कवि ने मानव के पूरे परिवार का चित्र उपस्थित करके, उसे संसार के समक्ष इस रूप में प्रस्तुत किया है, जिससे अन्तस् के सौन्दर्य का ज्ञान स्वतः ही हो जाता है। यह रचना मानव-हृदय को स्वार्थ-पूर्ण सम्बन्धों से ऊपर उठाकर विश्वकल्याण की भाव-भूमि पर ले आती है, जिससे अन्तर्मन के विकारों का परिष्कार हो जाता है। इस रचना के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि बहुज्ञ-कवि देवीदास में मानव-हृदय के आन्तरिक-भावों को चित्रित करने की कैसी अद्भुत क्षमता थी।

कवि ने प्रस्तुत वर्ण्य-विषय का पारिवारिक सम्बन्धों के साथ उदाहरण देते हुए बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। उदाहरणार्थ—

आजा गुरु उपदेश मैं आजीय ज्ञानस्वरूप।।२।।
नानी की तूं मानि है कहौं खोलि तुझ कान।
नाना करमन तूं करै करता पुद्‌गल आन।।३।।
आ फूफास्यों बाल जिम रोवै चहै न माई।
ज्यौं तुम पर परनति पगे निज सुसक्ति विसराई।७।
मौसी राख्यौ हैं मनो जिन आगम के हेत।
मौसा हिव तूं हो रह्यौ गहै चतुर्गति खेत।।८।। (आदि आदि)

कवि ने यह रचना वि. सं. १८१६ जेठ वदी १२ के दिन ललितपुर में अपने हाथों से स्वयं ही लिखी थी। यथा—"संवतु १८१६ जेठ वदी १२ लिखितं ललितपुर मझा सुहस्त।"

(२/११) जोग पच्चीसी

कवि ने जोग पच्चीसी की रचना कवित्त, सवैया एवं छप्पय प्रभृति अनेक प्रकार के २५ पद्यों में की है। प्रत्येक पद्य के बाद दोहरा-छन्द को रखा गया है, जो पूर्व-प्रयुक्त छन्दों का पूरक प्रतीत होता है। छन्दों की बहुलता एवं विविधता को देखकर बरबस ही हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन महाकवि केशवदास कृत रामचन्द्रिका की याद आ जाती है। किन्तु विशेषता यह है कि कविवर देवीदास के उक्त छन्द "नट" के समान लोक रंजनकारी अठखेलियाँ करते प्रतीत होते हैं। इन छन्दों को उलट-पलट कर पढ़ने से विशेष आनन्द की रसानुभूति होती है। इस रचना के कुछ छन्द चित्रों में भी बँधे

हुए हैं। इस छन्द-वैविध्य का मूल कारण कवि की विषय विविधता ही है। कवि ने विषय के अनुकूल छन्दों का प्रयोग किया है और इसमें कवि की प्रतिभा एक लक्षण-शास्त्री के रूप में उभरकर सम्मुख आई है।

उक्त रचना में कवि ने सर्वप्रथम तीर्थंकर नेमिनाथ की स्तुति करके उनके गुण, तप और ध्यान की कठोर-साधना का वर्णन करते हुए मानव को उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है तथा पार्श्वनाथ को संशय का हरण करने वाला बतलाकर कमठ के उपसर्ग का सरस वर्णन किया है। तत्पश्चात् महावीर के व्रत एवं नियमों का वर्णन कर महा-मोह का वर्णन किया है और बतलाया है कि मोह के उदय से ही जीव में भोग-विलास की रुचि उत्पन्न होती है। आध्यात्मिक साधना में मोह ही सबसे बड़ा बाधक है।

इस रचना में आत्मा और शरीर को लेकर एक व्यापार का रूपक प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शारीरिक-कार्यों के लिए अप्रस्तुत व्यापारिक उपादानों का सांगोपांग निरूपण करते हुए उससे भेद-विज्ञान के प्रयत्नों पर प्रकाश डाला गया है तथा आत्मा को "हंस" शब्द से सम्बोधित किया गया है। अपनी सरस एवं सरल भाषा शैली के माध्यम से कवि ने यहाँ आध्यात्मिक भावनाओं की सुन्दर अभिव्यंजना की है और अन्त में उसने गुरु के महत्व को दर्शाते हुए बतलाया है कि बिना गुरु की प्राप्ति के सम्यक्-भाव की प्राप्ति सम्भव नहीं। सम्यग्दृष्टि के प्राप्त होने पर ही जीव का कल्याण सम्भव है.

(२/१२) जीवचतुर्भेदादिबत्तीसी

प्रस्तुत रचना में कुल ३२ पद्य हैं। इसमें चौपाई-छन्द का प्रयोग किया गया है। चौपाई. रचना के आदि एवं अन्त में १-१ दोहरा छन्द का प्रयोग किया गया है।

इसमें कवि ने जीव के चार भेद बतलाए हैं— प्रथम सत्ता अथवा सत्व है, जिसके अन्तर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि एवं वायुकायिक जीव आते हैं। दूसरा भेद भूत है, जिसमें वनस्पति-जीवों की चर्चा की गई है। तीसरे प्रकार के जीवों में विकलत्रय जीवों एवं चौथे भेद में पंचेन्द्रिय जीवों का वर्णन किया गया है।

कवि ने इन चारों प्रकार के प्राणियों की उत्कृष्ट आयु का उल्लेख करते हुए इनके वध से होने वाले पाप-कर्मों पर भी प्रकाश डाला है और बतलाया है कि असंख्यात जीवों की हिंसा के कारण ही जीव-तत्व को अनन्तानन्त-भवों में जन्म-

मरण का चक्कर लगाना पड़ता है। इसी प्रसंग में कवि ने कठोर और कोमल दोनों भूमियों का भी वर्णन किया है।

प्रस्तुत रचना के अनुसार पृथिवीकायिक जीवों के दो भेद हैं। एक कठोर पृथिवीकायिक जीव और दूसरा कोमल पृथिवीकायिक जीव। कठोर पृथिवीकायिक जीव उसे कहते हैं, जो दुर्धर जल के भार से भी कभी नहीं छीजता। शिला, उपल, अभ्रक, तार, लोहा, विद्रुम, रत्न एवं ताँबा आदि उसी के भेद माने गए हैं।

कोमल भूमि के अन्तर्गत खेतों की मिट्टी आदि आती है। उनमें जो जीव उत्पन्न होते हैं, उन्हें कोमल पृथिवीकायिक जीव कहते हैं।

कवि ने उक्त रचना वि. सं. १८१०, आश्विन कृष्ण पंचमी मंगलवार के दिन की थी। यथा—

"सत अष्टादस दस अधिक संवत अस्विन मास।
कृष्ण पंचमी भौमदिन पहु विरदंत प्रकास।।"

(२/१३) विवेक बत्तीसी

प्रस्तुत रचना के नाम के अनुरूप ही कवि ने बत्तीस प्रकार के चित्रबन्ध-दोहरों में इस विषय को चित्रित किया है। कवि ने विवेक की तुलना पारस-पत्थर से करते हुए बतलाया है कि जिसने विवेक को अपनाकर समरसता प्राप्त कर ली, वह निश्चय ही उस पारस-पत्थर के समान हो जाता है, जिसके स्पर्श मात्र से ही लोहा सोना बन जाता है।

कवि ने भगवान पार्श्वनाथ और वर्द्धमान की स्तुति करके अन्तरंग और बहिरंग करुणा का उल्लेख किया है, साथ ही भेद-विज्ञान का वर्णन करते हुए बतलाया है कि चेतन और काया ये दोनों ही अलग-अलग हैं। इसलिए मन, वचन, काय से निर्ग्रंथ-गुरु की भक्ति करके दर्शन, ज्ञान और चारित्र जैसे गुणों को प्राप्त करना चाहिए एवं, व्रत, संयम, तप, और चतुर्विधदान रूपी चार रत्नों की प्राप्ति कर आत्मा का कल्याण करना चाहिए।

कवि ने प्रस्तुत रचना वि. सं. १८१४ भादों सुदी १३ के दिन की थी।

(२/१४) दर्शन छत्तीसी

यह रचना आचार्य कुन्दकुन्द कृत दर्शन-पाहुड नामक रचना का परिवर्तित भाषा-रूप है। रचना के अन्त में कवि ने इसे स्वयं स्वीकार किया है। यथा— कुन्दकुन्द मुनिराज कृत...

कवि ने ३६ पद्यों में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चरित्र रूपी त्रिरत्न-त्रिवेणी के महत्व का प्रतिपादन किया है और भव-प्राणियों को बार-बार यही समझाने का प्रयत्न किया है कि भव-समुद्र से मानव का उद्धार करने का एकमात्र साधन वैराग्य और तप ही है। इस तप और वैराग्य का पूर्ण रीति से पालन करने के लिए रत्नत्रय का धारण करना आवश्यक है। सिद्धावस्था प्राप्त करने के लिए भी वही पूर्णतया सहायक और समर्थ है।

कवि ने वर्ण्य-विषय के प्रस्तुतिकरण हेतु विविध छन्दों का आश्रय लिया है। जैसे-छप्पय, तोटक, सवैया, कुंडरिया, अरिल्ल, चौपाई, मरहठा, बेसरी, चर्चरी, पद्धड़ी, साकिनी, नाराच, रोडक, गीतिका एवं कवित्त आदि। इस छन्द-वैविध्य को देखकर अकस्मात् ही महाकवि केशव की रामचन्द्रिका एवं चन्द कवि के पृथिवीराजरासो का स्मरण आ जाता है। इस रचना के माध्यम से कवि की बहुमुखी प्रतिभा तथा उसके काव्यशास्त्रीय ज्ञान का परिचय भी सरलता से मिल जाता है।

(२/१५) तीन मूढ़ता अरतीसी

कवि देवीदास ने प्रस्तुत रचना में ३८ दोहा, चौपाई-छन्दों में देव-मूढ़ता, गुरु-मूढ़ता एवं शास्त्र-मूढ़ता का मार्मिक वर्णन किया है। सर्वप्रथम उन्होंने महावीर-स्वामी की वन्दना की है, तत्पश्चात् तीनों मूढ़ताओं का वर्णन कर तथा उनके सात-सात भेद बतलाकर उन्हें लक्षणों एवं उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया है।

देवमूढ़ता के सम्बन्ध में कवि ने बतलाया है कि जो लोग वीतराग देव की भक्ति को छोड़कर अन्य सरागी देवताओं की भक्ति करते हैं, उनका जीवन निष्फल हो जाता है। यथा—

"चंडिनि-मुंडिनि के रस याग्यौ भक्ति क्षेत्रपालादिक लाग्यौ।
हरि-हरादि पूजै निज देवा जानैं मानिन मैं स्वयमेवा।
यहु परिनमन ह्रदै तसु आवै सो प्रत्यक्ष सुर-मूढ़ कहावै।। (पद्य ७-८)"

गुरुमूढ़ता का दिग्दर्शन कराते हुए कवि ने कहा है कि, सच्चा गुरु उसी को समझना चाहिए, जो सम्यक्त्व का पालन करने वाला, पूर्ण-अहिंसक, अपरिग्रही एवं षट्-आवश्यक-क्रियाओं को करने वाला हो।

जो बाहर से तो व्रत धारण करले किन्तु अन्दर से परिग्रही, ढोंगी एवं सम्यक्त्वहीन हो, वह गुरुमूढ़ता के अन्तर्गत ही रहेगा। यथा—

"सम्यक्तहीन हीनव्रत ठीकौ बाहिज आभ्यंतर अति फीकौ। (पद्य १३-१४)"

इसी प्रकार जो लोग रागद्वेष, एवं मिथ्यात्व से युक्त होकर शास्त्रों का अध्ययन करता है, उसे शास्त्रमूढ़ता कहा जाता है। यथा—

"प्रगट चराचर ग्रंथन घोकौ सो परोक्ष श्रुत मूढ़ विलोकौ।
पढ़ै आपु औरनि सुपढ़ावै परख रहित कुछ भेद न पावै।
वाहिज कथन कथत बहुतेरौ सो प्रतच्छ श्रुत मूढ़ वसेरौ।" (पद्य २८-२९)

अन्त में बतलाया गया है कि जो भी मनुष्य इन तीनों मूढ़ताओं का त्याग कर देता है, वही सम्यक्त्व रूपी भव्य महल को अपना निवास-स्थल बना लेता है।

रचना के अन्त में कवि ने अपनी विनम्रता प्रदर्शित करते हुए कहा है कि— मेरे पास न तो कोई कला है, न अर्थ है और न ही छन्द-विधान। शैली के बिना मेरी गति और मति मैली हो गई है। अतः मेरे इस काव्य में यदि अर्थ की कोई कमी हो या छन्दों में मात्रा की न्यूनता या अधिकता हो, तो विद्वत्-पाठक उसमें संशोधन कर लें। यथा—

"कान मात पद अरथ घटि धरि लीजौ बुध और।"
ग्रन्थ अरथ छवि छन्द की मूरति कला न पास।
सैली बिनु मैली भई गति मति देवियदास।।

कवि की यह गर्वहीन उक्ति आदर्श एवं प्रशंसनीय है।

(२/१६) बुद्धि-बाउनी

प्रस्तुत रचना में कुल ५५ पद्य हैं। कवि ने प्रत्येक छन्द के पूरक के रूप में एक-एक दोहरा-छन्द का भी संयोजन किया है। यह रचना ज्ञान की दृष्टि से जितनी महत्वपूर्ण है, अभिव्यंजना की दृष्टि से भी उतनी ही महत्वपूर्ण। उक्त रचना से कवि के कला-कौशल का भी परिचय मिल जाता है। इसमें उसने सवैया-तेईसा के अतिरिक्त छप्पय कमलबन्ध, दोहरा-कटार बंध, कवित्त-गतागत, दोहरा-तुक-गुपत जैसे छन्दों का भी प्रयोग किया है, जो नामानुकूल चित्रों में बँधे हुए हैं और नटों जैसी अठखेलियाँ करते प्रतीत होते है। उलट-पुलट कर उन्हें पढ़कर उनसे विशेष आनन्द उठाया जा सकता है।

इसकी रचना-शैली प्रश्नोत्तरी की है। गुरु और शिष्य के प्रश्न-उत्तरों के माध्यम से इस रचना में ज्ञान के गूढ़-विषयों का उद्‌घाटन किया गया है।

कवि ने तीनों कालों के तीर्थंकरों की वन्दना करके इस रचना का प्रारम्भ किया है। ज्ञान की महिमा का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि ज्ञान के द्वारा ही शिवत्व

की प्राप्ति हो सकती है, अन्यथा तो यह मानव को अनेक प्रकार से दुखी बनाते रहते हैं। इसलिए सद्गुरु के ज्ञानमय अमृत वचनों को सुनकर अपने अन्तर को शुद्ध एवं निर्मल कर, आत्म-दर्शन करना ही श्रेयस्कर है।

गुरु सुमति रूपी अँगुली से ज्ञान-रूपी अञ्जन को जब दिव्य नेत्रों में आँजता है, तभी मोहरूपी अन्धकार को विच्छिन्न कर ज्ञान-दीप प्रकाशित होता है। जीवात्मा शुद्धोपयोग रूपी महाजल से ही अपने अन्तर को स्वच्छ कर सकता है। कवि ने हृदय की कोमलता, कल्पना की मनोहरता एवं अनुभूति की तीव्रता को अनेक रूपकों के माध्यम से प्रस्तुत करके ज्ञान के महत्व का प्रतिपादन किया है।

कवि ने इस रचना में ज्ञान को सुमति-वधु के नाम से सम्बोधित किया है और बतलाया है कि मूर्ख व्यक्ति के हृदय में इसका निवास सम्भव नहीं है। क्योंकि वह तो ज्ञान-सुता है और चेतन रूपी नायक की पटरानी है। उससे जो भी साधक अपने अन्तस् को आलोकित कर लेता है, वही प्रशस्त गति का अधिकारी होता है और जो अज्ञानता के मोहपाश में आबद्ध रहता है, वह रावण के समान नरक का भागी होता है।

इस प्रकार कवि ने उक्त रचना में अनेक दृष्टान्तों द्वारा ज्ञान की महत्ता पर सुन्दर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत रचना कवि के पारिवारिक इतिवृत्त, साधना-स्थल एवं रचनाकाल की दृष्टि से भी विशेष महत्वपूर्ण है। कवि ने लिखा है कि उसके भाई गंगा, गुपाल एवं कमलापति नाम के हुए, जो गंगा की पवित्रता के समान थे। इनमें कमलापति अच्छी शिक्षाओं को सिखाने वाले थे। (दे. पद्य संख्या. ५४...) कवि ने प्रस्तुत रचना के लेखन-स्थल के विषय में कहा है कि उसने यह रचना कैलगवां दिगौड़ा ग्राम में रहते समय की थी (दे. पद्य संख्या ५४)। रचना-काल के विषय में भी संकेत करते हुए कवि ने अन्त में कहा है कि उसने इसका लेखन वि. सं. १८१२ चैत्र शुक्ल पूर्णमासी गुरुवार के दिन किया था।

(३/१) जिनांतराउली

"जिनांतराउली" नामक रचना का प्रारम्भ कवि ने दोहा छन्द से करके २८ चौपाइयों में अपने वर्ण्य-विषय को स्पष्ट किया है तथा अन्त में दो दोहरा-छन्दों का नियोजन किया है। इसमें कवि ने चौबीस तीर्थंकरों के निर्वाण-समय में कितना-कितना अन्तर है, उसका वर्णन किया है। तीर्थोंकरों के निर्वाण की काल-गणना की दृष्टि से यह रचना विशेष महत्व रखती है।

प्रारम्भ में कवि ने पहले काल को ४ कोड़ा-कोड़ी सागर-प्रमाण, दूसरे को तीन कोड़ा-काड़ी सागर-प्रमाण एवं तीसरे को दो कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण बतलाते हुए भोग-भूमि का वर्णन किया है। उसी क्रम में कवि ने प्रथम काल को उत्तम-भोगभूमि, द्वितीय को मध्यम एवं तृतीय-काल को जघन्य भोगभूमि कहा है। उसके बाद कर्म-भूमि का वर्णन किया है और बतलाया है कि जुगला-धर्म के समाप्त होते ही आदि जिनेश्वर का जन्म हुआ। उनके परिनिर्वाण के ५० लाख कोटि सागरोपम के पश्चात् अजितनाथ स्वामी निर्वाण को प्राप्त हुए। उनके कोटि ३० लाख सागरोपम पश्चात् सम्भवनाथ। उनके १० लाख कोटि सागरोपम पश्चात् अभिनन्दननाथ। उनके ९ लाख कोटि सागरोपम के बाद सुमतिनाथ, ९० हजार कोटि सागरोपम के बाद पद्मनाथ, ९ हजार कोटि सागरोपम उपरान्त सुपार्श्वनाथ ९ सौ कोटि सागरोपम के बाद चन्द्रप्रभु, ९० कोटि सागरोपम के बाद पुष्पदन्त, ९ कोटि सागरोपम उपरान्त शीतलनाथ, १ करोड़ ६६ लाख २६ हजार वर्ष कम, १. लाख-पूर्व सहित करोड़ सागरोपम के पश्चात् श्रेयांसनाथ, ५४ सागरोपम बीत जाने पर वासुपूज्य, ३० सागरोपमों के बीत जाने पर विमलनाथ, ९ सागरोपमों के बीत जाने पर अनन्तनाथ, ४ सागरोपम में पाव-पल्य घटने पर धर्मनाथ, ३ सागरोपम में आधा पल्य घटने पर शान्तिनाथ, पुनः २ सागरोपम में आधा-पल्य बीतने पर कुन्थुनाथ, ११००० कम एक हजार करोड़ वर्ष में पाव-पल्य के व्यतीत हो जाने पर अरहनाथ, १ हजार करोड़ वर्ष बीत जाने पर मल्लिनाथ, ५४ लाख वर्ष बीत जाने पर मुनिसुव्रत, ६ लाख वर्ष बीतने पर नमिनाथ, ५ लाख वर्ष बीतने पर नेमिनाथ, पौने ४८ हजार वर्ष बीतने पर पार्श्वनाथ एवं उनके परिनिर्वाण के २५० वर्ष पश्चात् महावीर स्वामी का परिनिर्वाण हुआ।

भगवान महावीर के निर्वाण के समय चतुर्थ-काल के ३ वर्ष, ८ माह, १५ दिन ही शेष रह गए थे। भगवान महावीर के पश्चात् गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी एवं जम्बूस्वामी का निर्वाण क्रमशः १२, १२, ३८ वर्ष बाद अर्थात् ६२ वर्षों में हुआ। उनके १०० वर्षों तक मनः पर्ययज्ञान की स्थिति बनी रही। इनमें चौदह-पूर्व के धारी एवं बारह-अंगों के धारी ५ श्रुतकेवली— नन्दी, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन एवं भद्रबाहु नाम के आचार्य हुए। इन आचार्यों के बाद भरतक्षेत्र में पुनः कोई श्रुतकेवली नहीं हुआ।

तत्पश्चात् १८३ वर्षों में दस पूर्व-धारी ११ आचार्य हुए। यथा— १. विशाख २. प्रोष्ठिल, ३. क्षत्रिय, ४. जय ५. नाग, ६. सिद्धार्थ, ७. धृतिषेण, ८. विजय, ९. बुद्धिल, १०. गंगदेव, ११. सुधर्म। उक्त आचार्यों के बाद ग्यारह

अंग-धारी ५ आचार्य हुए १. नक्षत्र २. जयपाल ३. पाण्डु, ४. ध्रुवसेन और ५. कंस। इन सभी का कुल समय २२० वर्ष प्रमाण हैं।

तत्पश्चात् एक अंग के धारी चार मुनिराज हुए— १. सुभद्र, २. यशोभद्र, ३. यशोबाहु (भद्रबाहु) एवं ४. लोहाचार्य। इनका कुल समय ११८ वर्ष प्रमाण है।

इस प्रकार महावीर-निर्वाण के पश्चात् कुल ६८३ वर्षों तक केवली, श्रुतकेवली एवं आचार्यों की परम्परा चलती रही। आचार्यों की उक्त काल-गणना के बाद कवि देवीदास ने बतलाया है कि दिगम्बर-परम्परा के प्रतिकूल आचरण करने वाले भी अनेक साधु हुए और आगे भी होंगे। ऐसे ७ करोड़ साधु जिनेन्द्रदेव के कथनानुसार नर्कगामी होंगे। पंचम-काल की यही स्थिति है। छठवाँ काल तो और भी अधिक व्याकुलता एवं विभिन्न दुखों को प्रकट करने वाला सिद्ध होगा।

उक्त रचना के अनुसार पाँचवें एवं छठवें काल का कुल समय ४२ हजार वर्ष प्रमाण है।

(३/२) मारीच-भवान्तराउलि

कवि ने मारीच भवान्तरावलि की रचना २६ कुण्डलिया-पद्यों में की है। इस रचना में ऋषभदेव के पोते मारीच के जन्म से लेकर तीर्थंकर वर्द्धमान के रूप में जन्म लेने तक जितने भी भव धारण किए थे, उन सभी का वर्णन किया है।

मारीच अपने मिथ्याज्ञान, अहं एवं कर्मों के कारण जिस तरह उच्चकुल में जन्म लेकर भी निगोदिया, नारकी, स्थावर आदि जीवों के रूप में भटकता रहा, उसका रोचक वर्णन प्रस्तुत रचना में किया गया है। वीतराग-भावना, करुणा एवं शान्त रस के साथ-साथ इसमें काव्यत्व का निरूपण जिस रूप में हुआ हैं. वह प्रशंसनीय है। सिद्धान्त और दर्शन के साथ-साथ इसमें रस,, भाव प्रकृति आदि का जो वर्णन हुआ है, उसने विषय को सरसता प्रदान की है।

अपने कर्मों के फल-स्वरूप मारीच का जीव ६० हजार वर्षों तक निगोदिया जीव की स्थिति में रहा। फिर उसने वनस्पति के रूप में अर्थात् नीबू, केवड़ा, धतूरा. चन्दन आदि की पर्यायों को धारण किया। तत्पश्चात् पशु-पर्याय को धारण किया। अन्त में उसने सिंह के रूप में जन्म लिया। उसी पर्याय में उसने एक मुनिराज का उपदेश ग्रहण किया, जिससे उसके परिणाम में निर्मलता आ गई। उसने तत्काल ही श्रावक-व्रत धारण किए। वह लगातार एक माह तक संयम का पालन करता रहा और अन्त में निर्मल-भावों के कारण उसने देव-पद प्राप्त किया। वहाँ से आयु पूर्ण कर वह वर्द्धमान के रूप में जन्मा और तत्पश्चात् निर्वाण-पद को प्राप्त किया।

(३/३) लछनाउली पथ

कवि की यह रचना अत्यल्प है। इसमें मात्र दो ही छप्पय-पद हैं। कवि ने इसमें महापुरुषों के शारीरिक लक्षणों एवं अन्य चमत्कारों का अच्छा वर्णन किया है।

सर्वप्रथम इसमें २४ तीर्थंकरों के विविध लक्षणों अर्थात् चिन्हों का वर्णन किया गया है। पूर्व परम्परानुसार तीर्थंकरों के जन्म समय में दस अतिशय प्रकट होते हैं, जिनमें से ''सौलक्षण्य'' नामक अतिशय भी है। उसी अतिशयानुसार उनके शरीर पर १००८ लक्षणों में से उनके दाहिने पैर के अँगूठे में जो चिन्ह अंकित रहता है. उसको लाञ्छन या चिन्ह कहते हैं। जैसा कि तिलोयपण्णति में कहा गया है—

जम्मं काले जस्स दु दाहिण-पायम्मि होई जो चिण्हं।
ते लक्खण-पाउत्तं आगम-सुत्तेसु जिणदेहं।।

कवि ने शास्त्र परम्परानुसार इन चिन्हों का निरूपण किया है, जो निम्नप्रकार है—

तीर्थंकर-नाम एवं उनके लाञ्छन

१. ऋषभदेव-(बैल)	२. अजितनाथ-(हाथी)	३. सम्भवनाथ (घोड़ा)
४. अभिनन्दननाथ-(बन्दर)	५. सुमतिनाथ-(चकवा)	६. पद्मप्रभ-(कमल)
७. सुपार्श्वनाथ-(स्वस्तिक)	८. चन्द्रप्रभ-(चन्द्रमा)	९. पुष्पदन्त-(मगर)
१०. शीतलनाथ-(कल्पवृक्ष)	११. श्रेयांसनाथ-(गैंडा)	१२. वासुपूज्य-(भैंसा)
१३. विमलनाथ-(वराह, सूकर)	१४. अनन्तनाथ-(सेही)	१५. धर्मनाथ-(बज्र)
१६. शान्तिनाथ (मृग)	१७. कुन्थुनाथ-(बकरा)	१८. अरहनाथ-(मछली)
१९. मल्लिनाथ-(कलश)	२०. मुनिसुव्रतनाथ-(कछुआ)	२१. नमिनाथ-(कमल)
२२. नेमिनाथ-(शंख)	२३. पार्श्वनाथ-(सर्प)	२४. महावीर-(सिंह)।

(३/४) चक्रवर्त्ती-विभूति-वर्णन

प्रस्तुत रचना में कुल ५१ पद्य हैं, जिनमें कवि ने चक्रवर्त्ती की विभूति का आकर्षक वर्णन किया हैं। उसने आचार्य जिनसेन के आदिपुराण से प्रेरणा ग्रहण कर इसकी रचना की है। इसमें चक्रवर्त्ती की ९ निधियों, १४ रत्नों एवं उसके अन्य वैभव का विस्तृत वर्णन किया है।

कवि ने बतलाया है कि चक्रवर्त्ती सम्राट के अधीन धन-धान्य से युक्त ३६ हजार देश (अर्थात् सर्वशक्ति-सम्पन्न नगर) एवं ९६ करोड़ गाँव होते हैं। इस प्रसंग में कवि ने सक्षेप में गाँव, मटंब, खेट, कर्वट, पट्टन, द्रोणमुख, अन्तर्द्वीप एवं

दुर्गाटवी आदि की परिभाषाएँ देते हुए उनकी भौगोलिक-स्थितियों का रम्य चित्रण किया है. इस रोचक विषय की चर्चा आगे की जा रही है।

आर्यखण्ड की चर्चा करते हुए कवि ने बतलाया है कि वहाँ का चक्रवर्त्ती राजा वही कहलाता है, जिसको ३२ हजार राजा नमस्कार करें अर्थात् उतने राजा उसके अधीन रहते हैं। उसकी (चक्रवर्त्ती की) ९६ हजार रानियाँ होती हैं।

इसी क्रम में कवि ने अर्धचक्री, मांडलीक, राजा, अधिराजा एवं महाराजा का भी वर्गीकरण किया हैं। तदनुसार १६ हजार राजाओं का अधिपति अर्धचक्री, आठ हजार राजाओं पर शासन करने वाला माण्डलीक, चार हजार राजाओं पर शासन करने वाला अर्धमाण्डलीक अथवा राजा, दो हजार राजाओं पर शासन करने वाला अधिराजा एवं एक हजार राजाओं पर शासन करने वाले को महाराजा कहा जाता है। चक्रवर्त्ती की नौ निधियाँ निम्न प्रकार हैं—

(१) काल नामकी प्रथम निधि— जिससे ऋतु के अनुसार विविध पदार्थों की प्राप्ति होती थी। (२) महाकाल-निधि— जिससे असि, मसि, कृषि आदि छह प्रकार के कर्मों के साधनभूत द्रव्य एवं सम्पदा निरन्तर उत्पन्न होती रहती थी, (३) नैसर्प-निधि से शैय्या, आसन एवं मकान आदि की प्राप्ति होती थी, (४) पाण्डुक-निधि से सभी प्रकार के धान्यों की उत्पत्ति होती थी, साथ ही छह-रस भी इसी निधि से उत्पन्न होते थे, (५) पद्म नामकी निधि से सभी प्रकार के सूती, एवं रेशमी वस्त्रों की उत्पत्ति होती थी, (६)माणव-निधि से नीतिशास्त्र तथा अनेक प्रकार के शस्त्रों की उत्पत्ति होती थी. (७) पिङ्गल-निधि से दिव्य-आभरण उत्पन्न होते थे, (८) शंख नामकी निधि से सभी प्रकार के वाद्य-यन्त्र उत्पन्न होते थे, एवं (९) सर्वरत्न नामकी निधि से अनेक प्रकार के रत्न प्रकट होते थे।

कवि ने चक्रवर्त्ती के चौदह रत्नों का भी वर्णन किया है। यहाँ पर रत्न से तात्पर्य हीरे, मोती, जवाहरात से नहीं हैं, बल्कि संसार की जितनी भी श्रेष्ठ वस्तुएँ हैं और जो पृथिवी की रक्षा तथा ऐश्वर्य के उपभोग करने के साधन हैं, उन्हें रत्न कहा गया है। ऐसे रत्नों में से प्रथम सात रत्न अजीव एवं अन्तिम सात रत्न जीवधारी होते हैं। इन रत्नों का परिचय निम्न प्रकार दिया गया है—

***(क) १. सुदर्शन चक्र*—** यह आयुधशाला में उत्पन्न होने वाला दैदीप्यमान चक्ररत्न है, जो समस्त दिशाओं पर आक्रमण करने में समर्थ था। शत्रु इसका तेज प्रभाव देख नहीं सकते थे।

२. *चण्डवेग रत्न*— यह दण्ड-रत्न सैन्य , पृथिवी एवं गुफा के काँटों को शोधने में कुशल होता था।

३. ***चर्मरत्न***— यह बज्रमय रत्न सैन्यादिकों को नद और नदी से पार करा देने में समर्थ होता था।

४. ***चूड़ामणिरत्न***— इच्छित पदार्थों को प्रदान करने वाला था।

५. ***चिंतामणिकाकिनीरत्न***— गुफाओं के अन्धकार को दूर करके चन्द्रमा के समान प्रकाश प्रदान करने वाला होता था।

६. ***सूर्यप्रभछत्ररत्न***— सूर्य के समान जगमगाने वाला यह रत्न सैन्यदल के ऊपर आई हुई बाधाओं को दूर करने में समर्थ था।

७. ***सौनन्दक-असि-रत्न***— सौनन्दक नामकी दैदीप्यमान श्रेष्ठ तलवार, जिसे हाथ में लेते ही समस्त संसार झूले में बैठे हुए के सदृश कम्पायमान हो उठता था।

८. ***अयोध्यसेनापति-रत्न***— अयोध्य नामक सेनानायक, जो मनुष्य रत्न था। युद्ध में शत्रुओं को जीतने में जिसका यश आकाश और पृथिवी के बीच व्याप्त हो जाता था।

९. ***बुद्धिसागर-पुरोहित-रत्न***— जो धार्मिक अनुष्ठान पूर्वक मार्गदर्शन कराने वाला एवं सर्वविद्याकुशल होता था।

१०. ***कामवृष्टि-गृहपति-रत्न***— अत्यन्त बुद्धिमान एवं इच्छानुसार सामग्री देने वाला एवं चक्रवर्त्ती के सभी खर्चों का हिसाब रखने में कुशल होता था।

११. ***भद्रमुख-रत्न***— राजभवन, प्रासाद, मन्दिर आदि शिल्प-कला में निपुण इन्जीनियर होता था।

१२. ***विजयगिरि-हाथी-रत्न***— विजयपर्वत नामका सफेद हाथी, जो शत्रुदल की गज-घटाओं का विघटन करने वाला होता था।

१३. ***पवनंजय-घोड़ा-रत्न***— तीव्र-वेग एवं शक्तिशाली पवनंजय नामका घोड़ा उसके साथ रहता था।

१४. ***सुभद्रा-स्त्री-रत्न***— रसायन के समान हृदय को आनन्द देने वाली सुभद्रा नामक-स्त्री-रत्न थी, जो चक्रवर्त्ती की ९६ हजार रानियों में सर्वश्रेष्ठ पटरानी होती थी।

इस प्रकार १४ रत्नों से युक्त चक्रवर्त्ती समस्त ऐश्वर्य और शक्ति का उपभोग करता था।

चक्रवर्त्ती के अन्य वैभव निम्न प्रकार वर्णित हैं—

(ख) १. भयंकर सिंहों के द्वारा धारण की हुई सिंहवाहिनी नामकी मनोज्ञ शैया।

२. अनुत्तर आसन नामका मणि जटित उत्कृष्ट आसन।

३. अनुपमान नामक चमर, जो गंगा की तरलित लहरों के समान निर्मल धवल था।

४. विद्युत्प्रभ नामके मणिजटित युगल कुण्डल, जो बिजली की दीप्ति को पराजित करते थे।

५. अभेद्य नामका कवच, जिसका भेदन करने में शत्रु के तीक्ष्ण बाण भी असमर्थ रहते थे।

६. विषमोचिनी नामकी ऐसी दो खड़ाऊँ, जो दूसरे के पैर का स्पर्श होते ही भयंकर विष छोड़ने लगती थीं।

७. अजितंजय नामका अत्यन्त सुन्दर रथ, जिस पर अनेक दिव्यास्त्र रखे रहते थे, तथा जो जल, थल में एक समान चलता था।

८. बज्रकोड नामका धनुष, जिसके बाण अमोघ थे।

९. बज्रतुण्डा नामकी शक्ति, जो बज्र की बनी हुई थी एवं इन्द्र को भी जीतने में समर्थ थी।

१०. सिंघाटक नामका भाला था, जो सिंह के नाखूनों के साथ स्पर्धा करता था। जिसकी रत्नजटित मूठ बहुत ही दैदीप्यमान रहती थी।

११. लोहवाहिनी नामकी तीक्ष्ण छुरी, जो बिजली की चमक को भी पराजित करने वाली थी।

१२. मनोवेग नामका एक कणय (अस्त्रविशेष).

१३. भूतों के मुखों से चिन्हित भूतमुख नामका खेट अर्थात् अस्त्रविशेष था. जो शत्रुओं के लिए मृत्यु-मुख के समान था।

१४. आनन्द नामकी बारह भेरियाँ थीं, जिनकी गम्भीर आवाज बारह-योजन तक फैलती थी।

१५. बज्रघोष नामक भीषण गर्जना करने वाले बारह नगाड़े थे।

१६. अतिशय आवाज वाले गम्भीरावर्त्त नामके २४ शंख थे।

१७. मन को मोहित करने वाली विविध रंगों की अड़तालीस करोड़ पताकाएँ फहराती रहती थीं।

इस प्रकार कवि ने चक्रवर्त्ती के उक्त वैभव का वर्णन किया है।

(४.क) राग-रागिनियाँ

कवि ने विभिन्न राग-रागिनियों में २५ पदों की रचना की है। एतद्विषयक पदों में कवि का उद्देश्य प्राणी को विषय-वासना से हटाकर जिनवर-भक्ति में लीन रखना ही है। ये पद प्रार्थनापरक एवं तथ्य निरूपक हैं। इनमें आत्मशोधन के प्रति पूर्ण जागरूकता के साथ-साथ कल्पना. विचार एवं अनुभूति का ऐसा सुन्दर समन्वय हुआ है कि पाठक भी उसी अनुभूति में लीन हो जाता है।

कवि मन की अस्थिरता के वर्णन में मन की उपमा जहाज के पंछी के साथ देते हुए बड़ी ही सुन्दर उद्भावना करता है और बतलाता है कि मन की इसी चंचलता के कारण मानव पीड़ित रहता है। इन वर्णनों में कवि की साहित्यिकता एवं काव्य-प्रतिभा अमृत रस उँडेलती सी परिलक्षित होती है। इस रचना की यह विशेषता है कि इसमें दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक वर्णनों के होने पर भी उसमें बोझिलता नहीं आ पाई हैं। मार्मिकता एवं रसोद्रेकता तो स्थान-स्थान पर विद्यमान है।

उक्त गेयपदों में कवि ने तीर्थंकरों का स्मरण करते हुए उनके गुणों एवं विशेषताओं का वर्णन किया हैं। कवि ने बतलाया हैं कि निर्मल ज्ञानस्वरूपी परमात्मा को हृदय में स्थित करने से शान्ति एवं आत्मतोष का अनुभव होता है। कवि ने सच्चे साधु और गुरु को पहचानकर उनके सद्गुणों और उपदेशों को ग्रहण करने की सलाह दी है।

(४.ख) पदपंगति खण्ड

कवि ने इसकी रचना पदावली के रूप में की है। इसमें कुल २८ पद्य हैं। उसने विविध शास्त्रीय राग-रागनियों के माध्यम से वैराग्य-भावना को जागृत करने का प्रयत्न किया है। कवि का विचार है कि संसार की अव्यवस्था, संघर्ष, मोह, मत्सर, ईर्ष्या एवं द्वेष आदि की समाप्ति वैराग्य-भावना के द्वारा हो सकती है। जब तक मानव की वैराग्य-भावना जागृत नहीं होगी, तब तक वह इस असार-संसार में भटकता ही रहेगा और जन्म-मरण के चक्रजाल में फँसा रहेगा। अतः उसने सरस पदों के द्वारा वीतरागी-भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है।

कवि ने इन पदों के द्वारा संसार की निस्सारता, बृद्धावस्था, स्वार्थपरता आशा-तृष्णा की विचित्रता, आत्म-तत्व, सम्यक्त्व, स्याद्वाद, अनेकान्त, एवं गुरुभक्ति आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। भावों को पूर्ण रूप से चित्रित करने की कवि में अद्भुत क्षमता शक्ति है। उन्होंने गूढ़ और नीरस-विषयों का निरूपण भी सुन्दर और सरस शैली में किया है।

(५) चित्रबन्ध रचनाएँ

कंवि ने चित्रबन्ध पद्यों के माध्यम से अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। उसने २२ चित्रों में कुछ छन्दों को बाँधा है, जिनमें कवित्त, गीतिका, दोहरा एवं दोहा-छन्दों को विशेष महत्व दिया है। "जोगपच्चीसी" (दोहरा सं. आठ) में उन्होंने स्वयं ही कहा है कि ये सभी छन्द नट की केलि-क्रीड़ा के समान ही उलट-पुलट करके पढ़ने में आनन्द-वर्षा करने वाले हैं। यथा—

"पद एकादस वरन कौं दुगुन करत तुकबंध।
उलटि-पुलटि नट से लसैं केलि गतागत छंद।।"

कवि ने (सं. १४) के एक छन्द में तो अपनी बुद्धि-कौशल एवं भाषा के प्रयोग से आश्चर्यचकित ही कर दिया है। उसने एक कवित्त को एक चित्र में इस प्रकार समायोजित किया है कि उसमें (एक ही छन्द में) अरिल्ल, चौपही, दोहा, सोरठा आदि छन्दों की योजना अनायास ही हो जाती है।

(६/१) हितोपदेश

हितोपदेश की रचना कवि ने नरेन्द्र-छन्द में की है, जिनकी पद्य संख्या ११ है। कवि ने सम्बोधन-शैली में सद्गुरु के माध्यम से सांसारिक-प्राणियों को संसार की नश्वरता का उपदेश दिया है और बतलाया है कि यह जीव भौतिक विषय-रस में लिप्त रहने के कारण चारों गतियों में भटकता रहता है। जब तक यह अरहन्त-देव को पहिचान कर, उनके उपदेशों में श्रद्धा रखकर सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं कर लेता, तब तक यह इसी प्रकार जन्म-मरण के चक्र में भटकता रहेगा। कवि ने स्वानुभव के आधार पर यह शिक्षा देने का प्रयत्न किया है कि भव्य जीवों को चाहिए कि वे आत्मा और पुद्गल के भेद-विज्ञान को समझने का प्रयास करें क्योंकि इस भेद विज्ञान के द्वारा ही मुक्ति की प्राप्ति हो सकती है।

इसी प्रसंग में कवि ने द्रव्यों की चर्चा करते हुए उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य रूप सत् की चर्चा भी की है, जो कि द्रव्य का मूल लक्षण है।

(६/२) स्वजोग राछरौ

"राछरौ" बुन्देलखण्डी-भाषा का शब्द है। हिन्दी-साहित्य के "रासा" शब्द का ही बुन्देलखण्डी में "राछरौ" हो गया है। गुजराती-भाषा का "रासड़ा" शब्द भी इसी अर्थ को व्यक्त करता है[1]। बुन्देलखण्ड में एक विशेष प्रकार के गीत होते हैं, जिन्हें "राछरौ" कहा जाता है। बुन्देलखण्डी-साहित्यकार श्री दुर्गाप्रसाद समाधिया ने "राछरौ" को सामयिक-गीतों की श्रेणी में रखा हैं।[2]

कवि ने इस रचना का शीर्षक "स्वजोग-राछरौ" रखा है। इससे प्रतीत होता है कि इसकी रचना उन्होंने अपने को ही सम्बोधित करने के लिए की है। कवि ने इस रचना में कर्म-सिद्धान्त का निरूपण किया है। वह अज्ञान के कारण इस संसार में ठीक इसी प्रकार घुल-मिल गया है, जैसे दूध में शक्कर। मिथ्यात्व के कारण इस आत्मा की जिन-धर्म में तो रुचि रह ही नहीं जाती, वह अपनी दुर्बुद्धि एवं विवेकहीनता के कारण रत्नत्रय जैसे ज्ञान-दीप को छोड़कर असार-संसार के राग-द्वेष एवं मोह-विकारों में फँसकर अपने स्वरूप को भूल जाता है।

कवि देवीदास अन्य लोगों को भी सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि— "हे भव्य प्राणियो, सम्यक्त्व के बिना जीव को निश्चयपद की प्राप्ति होना सम्भव नहीं। इसलिए जीव को चाहिए कि वह सम्यक्त्व को धारण करे, जिससे उसे शिवपुर की प्राप्ति हो सके"।

(७/१) जन्म के दस अतिशय

इसकी रचना कवि ने ११ पद्यों में की है, जिनमें से १० दोहा छंद हैं एवं अन्तिम छन्द सोरठा है। इसमें तीर्थंकर के जन्म के दस अतिशयों का वर्णन किया है, जो निम्न प्रकार हैं—

१. ***निःस्वेदत्व***— तीर्थंकर का शरीर जन्म से ही पसीना-रहित होता है।

२. ***निर्मलत्व***— उनका शरीर मल-मूत्र रहित निर्मल होता है।

३. ***क्षीर गौर रुधिरत्व***— उनका रुधिर दूध के समान श्वेत वर्ण का होता है।

४. ***समचतुरस्रसंस्थान***— उनका शरीर उत्तम आकार का सुगठित होता है।

५. ***वज्रवृषभनाराच संहनन***— उनका शरीर बज्रमय होता है।

---

१. मधुकर, अंक ४, पृ. २३, बुन्देलखण्डी के कुछ शब्द, लेखक पं. नाथूरामप्रेमी।

२. दे. मधुकर, अंक ६ पृ. २२-२३

६. ***सौरूप्य—*** उनका शरीर कामदेव के समान अत्यन्त सुन्दर होता है।

७. ***सौरभ***— (सुगन्धित)- उनका शरीर अत्यन्त सुगन्धित होता है।

८. ***सौलक्षण्य—*** उनका शरीर १००८ उत्तम लक्षणों से विभूषित रहता है।

९. ***प्रियहितमितवादित्व—*** तीर्थकर हित-मित और प्रिय वचन बोलते हैं।

१०. ***अप्रमितबल—*** उनका शरीर अनन्त-बल वीर्य से युक्त होता है।

(७/२) केवलज्ञान के दस अतिशय

कवि ने ११ छन्दों में तीर्थंकर के केवलज्ञान के दस अतिशयों की चर्चा की है। वे अतिशय निम्न प्रकार हैं—

१. ***चार सौ योजन भूमि में सुभिक्षता—*** केवलज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् तीर्थंकर के करुणामय प्रभाव से यह पृथिवी धन-धान्य से परिपूर्ण हो जाती है और चार सौ कोस तक चारों तरफ दुर्भिक्ष की छाया भी नहीं पड़ती।

२. ***गगनगमन अर्थात् आकाश में गमन करना***— ध्यान-योग के कारण केवली तीर्थंकर का शरीर अत्यन्त हल्का हो जाता है। अतः गमन करते समय उनका शरीर स्वयमेव ही पृथिवी का स्पर्श न करके उसके ऊपर-ऊपर ही गमन करता है।

३. ***अप्राणिवध***— तीर्थंकर अहिंसा के महान् देवता हैं। उनके समीप में किसी के भी मन से हिंसा के परिणाम स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। यह सर्वोदय की चरम परिणति है।

४. ***भुक्त्यभाव***— केवली भगवान कवलाहार ग्रहण नहीं करते। उनकी आत्मा का इतना विकास हो जाता है कि उनके शरीर को भोजन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

५. **उपसर्ग का अभाव**— तीर्थंकर के घातिया- कर्मों का क्षय हो जाने से किसी भी प्रकार के उपसर्गों का सर्वथा अभाव हो जाता है।

६. ***चतुराननाभासत्व—*** अर्थात् चारों तरफ प्रभु के मुख का दर्शन होना। समवशरण में प्रभु का मुख पूर्व या उत्तर-दिशा की ओर रहता है किन्तु उनके चारों ओर बैठने वाले बारह-सभाओं के जीवों को ऐसा आभास होता है कि भगवान का मुख चारों दिशाओं में हैं।

७. ***सर्वविद्येश्वरता***— तीर्थंकर सर्व-विद्या के ईश्वर (स्वामी) कहे जाते हैं. क्योंकि कैवल्य की ज्योति से अलंकृत होने के कारण उन्हें समस्त ज्ञान हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जाता हैं।

८. ***अच्छायत्व***— अर्थात् शरीर की छाया नहीं पड़ना। आत्मा की निर्मलता के कारण उनका शरीर भी निर्मल हो जाता है। इसीलिए केवली भगवान के शरीर की छाया नहीं पड़ती।

९. ***समसिद्ध-नखकेशत्व***— अर्थात् नख और केशों का नहीं बढ़ना भगवान के शरीर में मलरूपता धारण करने वाले परमाणुओं का अभाव हो जाने के कारण उनके नख और केश न तो बढ़ते हैं, और न घटते ही हैं।

१०. ***अपक्ष्मस्पन्दत्व***— अर्थात् नेत्रों की पलकों का न हिलना. ।तीर्थंकर अनन्तवीर्य के स्वामी होते हैं। इस कारण उनकी पलकों के उठने-गिरने की क्रिया नहीं होती। वे सदा प्रमाद रहित होकर विशुद्ध आत्मा के क्षेत्र में जागृत रहते हैं।

(७/३) देवकृत चौदह अतिशय

इस रचना में कुल छंद संख्या १५ है। इसमें कवि ने देवों द्वारा उत्पन्न तीर्थंकरों के १४ अतिशयों की चर्चा की है, जो निम्न प्रकार हैं—

(१) सर्वार्थमयी अर्धमागधी भाषा— जिनेन्द्र भगवान की भाषा सर्वअर्थमयी अर्धमागधी-भाषा होती है, जिससे त्रिलोक के सभी जीव उसको ग्रहण कर आनन्दानुभव करते हैं।

(२) सम्पूर्ण विरोधी जीवों में मैत्री— इस अतिशय से संसार के सभी विरोधी जीवों में परस्पर में मैत्री-भाव उत्पन्न हो जाता है।

(३) वृक्षों में सभी ऋतुओं के फल-फूलों का एक साथ उत्पन्न होना।

(४) पृथिवी का दर्पणवत् निर्मल रहना— देवगण पृथिवी को रत्नमयी कर देते हैं, जिसे देखने से नेत्र और अन्तःकरण आनन्दित हो उठते हैं।

(५) सम्पूर्ण जीवों को आनन्द की प्राप्ति का होना।

(६) सर्वत्र मन्द-मन्द और सुगन्धित वायु का प्रवाहित होना।

(७) भूतल दर्पणवत् स्वच्छ रहना— पवनकुमार जाति के देव तीर्थंकर के विहार करते समय पृथिवी को धूल, तृण, कंटक एवं पाषाण से रहित कर देते हैं।

(८) गन्धोदक की वृष्टि होना— मेघकुमार जाति के देव निरन्तर ही सुगन्धित जल की वृष्टि किया करते हैं।

(९) तीर्थंकर के चरणों के नीचे सुवर्ण-कमलों का रहना— तीर्थंकर के विहार करते समय देवगण उनके चरणों के नीचे स्वर्ण-कमलों की रचना करते हुए चलते हैं।

(१०) समस्त पृथिवी का धान्यादि से युक्त हो जाना।

(११) समस्त आकाश का निरभ्र एवं निर्मल रहना।

(१२) आकाश में देवों द्वारा जय-जय ध्वनि का होते रहना।

(१३) तीर्थंकर प्रभु के आगे धर्मचक्र चलना। एवं,

(१४) अष्टमंगल-द्रव्यों का तीर्थंकर के सामने रहना।

(८/१-२५) चतुर्विंशति-जिनपूजा वर्गीकरण

श्रमण-संस्कृति में चतुर्विंशति तीर्थंकर रूप आराध्य देवता के गुण-स्तवन का विशेष महत्व है। प्राचीन आचार्यों ने उसे तीन भागों में विभक्त किया है—

(१) सामान्यतया त्रिकाल-स्तवन

जिसमें प्रातः, मध्यान्ह एवं सन्ध्या काल में मन, वचन एवं काय की पवित्रता पूर्वक आराध्य के गुणों का स्तवन एवं गुणानुवाद किया जाता है। दूसरे शब्दों में इसे सामायिक भी कहते हैं।

(२) भाव-पूजा

प्रस्तुति पद्धति में मन, वचन एवं काय की शुद्धि पूर्वक आराध्य के गुणों की स्तुति की जाती है। इसमें यद्यपि विहित अष्ट-द्रव्यों का भी स्मरण किया जाता है, किन्तु उनका साक्षात् समर्पण नहीं होता। एवं

(३) अष्टद्रव्य पूजा-उपासना-पद्धति

यह पद्धति अष्ट द्रव्य-पूजा के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें जिन आठ-द्रव्यों से २४ तीर्थंकरों की पूजा-स्तुति की जाती है, वे निम्न प्रकार हैं—

(१) जल, (२) चन्दन, (३) अक्षत (४) पुष्प, (५) नैवेद्य, (६) दीप, (७) धूप एवं (८) फल।

इन अष्ट द्रव्यों पर यदि विचार किया जाय, तो उनका विश्लेषण बहुत ही *मनोरंजक, आह्लादकारी एवं मनोवैज्ञानिक सिद्ध होता है। वस्तुतः ये आठ द्रव्य* वही हैं, जो मानव-समाज के दैनिक-जीवन में अत्यावश्यक हैं एवं सर्वसुलभ भी। इनकी अपनी मनोवैज्ञानिकता भी है। संक्षिप्त विश्लेषण निम्न प्रकार है :—

(१) जल— तीर्थंकर की मूर्त्ति के सम्मुख उसकी पूजा में सर्वप्रथम जल-द्रव्य समर्पित किया जाता है। भौतिक दृष्टि से जल जड़ एवं चेतन के लिए कितना उपयोगी है, यह तो सर्वविदित ही है। क्योंकि उनका अस्तित्व एवं विकास जल के बिना सम्भव नहीं। जब आध्यात्मिक दृष्टि से देखते हैं, तो जल चढ़ाते समय आराधक उसे "जन्म, जरा, मृत्यु विनाशनाय" मन्त्र का उच्चारण करके ही उसका समर्पण करता है। तात्पर्य यह कि जैन दर्शन के अनुसार इस भौतिक संसार के जितने भी सुख हैं, वे सभी क्षणिक हैं और प्राणी जब तक उनमें अपनी आसक्ति रखता है, तब तक वह सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। जन्म, मृत्यु एवं बृद्धावस्था को ही संसार कहा गया है और आराधक का ऐसा परमविश्वास रहता है कि यदि मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक एवं जल को अभिमन्त्रित करके आराध्य को समर्पित किया जाय, तो निश्चित् ही आराधक के सांसारिक बन्धनों का नाश हो जायगा।

(२) चन्दन— जल के पश्चात् आराध्य के चरणों में चन्दन समर्पित करने का विधान है। चन्दन एक ओर शारीरिक व्याधियों का शमन कर शरीर में शीतलता प्रदान करता है, तो दूसरी ओर संसार के दुख रूपी संताप को भी विनष्ट करने में समर्थ है। इसीलिए "संसारताप विनाशनाय चन्दनम्" का उल्लेख किया गया है।

(३) अक्षत्— विविध कालीन, विविध भाषाओं में उपलब्ध समस्त जैन-पूजा साहित्य में चावल को अक्षत् की संज्ञा प्राप्त है। क्योंकि भौतिक दृष्टि से यह अनाज भारतीय-कृषि उत्पादनों में प्राचीनतम एवं पोषक आहार माना गया है। इसका सेवन करने से व्याधियों का नाश एवं दीर्घायुष्य की प्राप्ति मानी गई है। इसीलिए पूर्वाचार्यों ने जैन-पूजा-विधान में इसके लिए विशेष महत्व दिया और उसे आध्यात्मिक दृष्टि से भी "अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतम्" का मन्त्र जाप करके आराध्य के चरणों में समर्पित किया जाता है।

(४) पुष्प— काम की दस अवस्थाएँ समस्त संसार को अपने आँचल में ऐसा लपेट लेती हैं कि वह विवेकहीन होकर क्षणिक सुख को ही सब कुछ मान बैठता है और चौरासी लाख योनियों में भटकता फिरता है। इन्हीं विषम परिस्थितियों में मानव को जागृत एवं विवेकशील बनाने के लिए पूजा-आराधना में पुष्प को विहित मानकर सन्देश दिया गया हैं कि आराध्य के गुणानुवाद के समय काम की दसों अवस्थाओं को शमन करने के लिए पुष्प का समर्पण किया जाना चाहिए जैसा कि विहित मन्त्र में कहा गया है "कामबाणविध्वंशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा".

(५) नैवेद्य— जन्म-मरण से व्याप्त इस संसार में क्षुधा का रोग सबसे कठिन माना गया है। प्राणी क्षुधा-रोग की शान्ति के लिए क्या-क्या नहीं करता? समस्त विश्व में आज जो भी अन्याय, अत्याचार एवं भ्रष्टाचार का बोल बाला है, वह केवल क्षुधा-रोग की शान्ति के लिए। इसलिए यदि इस रोग को नष्ट कर दिया जाय, तब तो प्राणी का उद्धार ही हो जाए। अतः आराध्य के गुणानुवाद के प्रसंग में उक्त रोग के शमन के लिए नैवेद्य का समर्पण आवश्यक बतलाया गया है। उसका मन्त्र निम्न प्रकार है— "क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वापामीति स्वाहा।"

(६) दीप— आत्म-जागृति के लिए भेद-विज्ञान का ज्ञान अर्थात् शरीर एवं आत्मा की भिन्नाभिन्नता का ज्ञान नितान्त आवश्यक है, इस ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो? इसके लिए सम्यक् ज्ञान की महती आवश्यकता होती है, जो कठोर संयम, साधना एवं अन्तर्बाह्य-तपस्या से ही सम्भव है।

ई. पू. द्वि. सदी के जैनकुलावंस विश्वविख्यात जैन-सम्राट कलिंगनरेश खारवेल को कौन नहीं जानता, जिसका हाथीगुम्फा-शिलालेख भारतीय इतिहास के अन्धकारयुगीन इतिहास को प्रकाशित करने वाला है। उसने लिखा है कि "प्रशासक रहते हुए भी मुझे जैनाचार्यों के सम्पर्क से ऐसी दृष्टि मिली है, जिसने शरीर एवं आत्मा के भेद को स्पष्ट कर दिया है और मेरी अन्तरात्मा ज्ञान के प्रकाश से आलोकित हो गई है"। कहने का तात्पर्य यह कि निसर्गज अथवा अधिगमज ज्ञान रूपी दीपक से आत्मा जब मोहान्धकार का विनाश करके आलोकित हो जाती है, तो उसे प्रशस्त मार्ग स्वयं दिखलाई देने लगता है। इसलिए हमारे आचार्यों ने उस ज्ञान-ज्योति को जागृत करने के लिए निम्न मन्त्र का सन्देश दिया- "मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।"

(७) धूप— पूर्वाचार्यों ने गहन साधना एवं तपस्या के आधार पर यह स्पष्ट देखा-परखा है कि आत्मा अजर, अमर एवं निष्कलंक है। किन्तु ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्मों के कारण वह समल हो जाती है और यही कारण है कि वह चौरासी लाख योनियों में निरन्तर भटकती रहती है। इन दुष्ट कर्मों से मुक्ति हेतु आचार्यों ने यह मनोवैज्ञानिक विधान किया कि निर्धूम अग्नि में सुगन्धित एवं उत्कृष्ट कोटि की धूप के क्षेपण से अष्ट-कर्मों का नाश हो जाता है और आत्मा निष्कलंक होकर मोक्षाभिमुखी हो जाती है।

आजकल चारों ओर से बार-बार यही सुनाई देता है कि वायुमण्डल एवं जलमण्डल प्रदूषित हो गया है, जिससे अनेक प्रकार के विषैले कीटाणु फैल रहे

हैं एवं कैंसर जैसी भयानक बीमारियाँ भी फैल रही है। इससे बचने के लिए सारे संसार में तरह-तरह की योजनाएँ बनाई जा रही हैं लेकिन सफलता कहीं भी दिखलाई नहीं पड़ रही है। वस्तुतः प्रदूषण मनुष्यकृत ही है और उसके लिए हमारे प्राचीन आचार्यों ने यही उपाय निर्देशित किया है कि भावनाएँ सात्त्विक रखो तथा आराध्य के सम्मुख एवं अन्य उत्सव के समय शुद्ध धूप को निर्धूम अग्नि में क्षेपण करके वायुमण्डल को शुद्ध करो।

प्रदूषण से बचने के लिए उक्त उपायों से बढ़कर अन्य कोई उपाय कारगर नहीं है, यह सुनिश्चित है। अतः हमारे आचार्यों ने निम्न मन्त्र द्वारा उसका संकेत किया है— "अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।"

(८) फल— प्रत्येक व्यक्ति सुख चाहता है, कोई भी दुख नहीं चाहता। सच्चा सुख आत्मा के कल्याण में ही निहित है। इसलिए सभी आचार्यों ने मोक्ष-प्राप्ति को ही अनन्त सुख अथवा शाश्वत सुख कहा है। जप, तप आदि जितने भी साधन, हैं वे सभी उसी सुख प्राप्ति के लिए ही हैं। एक प्रकार से सम्यक् जप एवं तप का फल ही मोक्ष है, इसलिए मन्त्र-जाप में" मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा" कहा गया है।

(८/२६) अंगपूजा

कवि देवीदास द्वादशांगवाणी के भी परमभक्त थे। उन्होंने यद्यपि उसके अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थों का उल्लेख नहीं किया, फिर भी, उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति करने के लिए अष्टांग-पूजा का प्रणयन किया है। इसमें कुल ११ पद्य हैं। इसकी जयमाल अनुपलब्ध है।

(८/२७) अष्टप्रातिहार्य-पूजा

"प्रातिहार्य" शब्द जैन-धर्म एवं साहित्य का पारिभाषिक शब्द है। तीर्थंकर को केवलज्ञान होने के पश्चात् इन्द्र एक समवशरण की रचना करता है और वे गन्धकुटी के मध्य में श्रेष्ठ सिंहासन पर विराजमान रहते हैं। उस समय वे देवरचित जिनअष्ट-प्रातिहार्यों से सुशोभित होते हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

(१) अशोक वृक्ष— तीर्थंकर को जिस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान प्राप्त होता है, उसे अशोक बृक्ष कहा गया है क्योंकि वह शोक-निवारण के सुखद अतिशय से युक्त होता है। अशोक वृक्ष के सम्बन्ध में महापुराण में कहा गया है[१]— "अशोक

---

१. दे० जिनसेन कृत महापुराण- २३/३६

वृक्ष मरकतमणि के बने हुए हरे-हरे पत्ते एवं रत्नमय चित्र-विचित्र फूलों से अलंकृत रहता है। वह विस्तृत शाखाओं से युक्त शोक रूपी अन्धकार को नष्ट करने वाला है। महान् आत्माओं के आश्रय से वृक्ष जैसे तुच्छ पदार्थों की भी महान् प्रतिष्ठा होती है। अशोक-वृक्ष इसका सुन्दर दृष्टान्त है।''

(२) रत्नजटित सिंहासन— तीर्थंकर प्रभु रत्नजटित सिंहासन पर विराजते हैं। उनका सुवर्ण के समान दैदीप्यमान शरीर इस प्रकार सुन्दर प्रतीत होता है, जैसे उन्नत उदयाचल के शिखर पर सूर्य।

(३) तीर्थंकर प्रभु के मस्तिष्क पर तीन छत्रों का रहना।

(४) भामण्डल अथवा प्रभामण्डल का साथ रहना— भगवान् के शरीर का प्रभामण्डल अमृत के सदृश निर्मल एवं जगत् के लिए अनेक मंगल रूप तथा दर्पण के समान स्पष्ट होता है। उसमें देव, राक्षस और मनुष्यों को अपने सात-सात भव स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ते थे।[२]

(५) दिव्य-ध्वनि का खिरना— तीर्थंकर प्रभु की दिव्य-ध्वनि को अमृत के नाम से भी पुकारा जाता है। क्योंकि भव्य-जीव इस वाणी को अपने कानों से सुनकर इसका रसपान करके अत्यन्त आनन्दित होकर अजर-अमर पद को प्राप्त करते हैं। यह दिव्यध्वनि स्याद्वादमयी होती है।

(६) दिव्य-पुष्पों की वर्षा— आकाश से सुगन्धि युक्त दिव्य पुष्पों की वर्षा होना।

(७) तीर्थंकर प्रभु के सिर पर देवों द्वारा चौंसठ चँवरों का ढुराना— देवों के द्वारा तीर्थंकर प्रभु पर अलंकृत चौंसठ चँवर ढुराये जाते हैं।

(८) देव दुन्दुभि का बजना— देवों द्वारा आकाश में दुन्दुभि बजाई जाती है, जिसकी मधुर-ध्वनि चित्त को आनन्दित करने वाली होती है।

(८/२८) अनन्त चतुष्टय-पूजा

कवि ने इस रचना में अनन्त चतुष्टयों की पूजा भी प्रस्तुत की है।

अनन्त चतुष्टय चार प्रकार के हैं—

(१) अनन्त ज्ञान,

(२) अनन्त-दर्शन,

---

२. दे॰ जिनसेनकृत महापुराण- २३/६७

(३) अनन्त-सुख, एवं,

(४) अनन्त- वीर्य।

ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय एवं अन्तराय— इन चार घातिया कर्मों के क्षय से उपरोक्त चार गुण उत्पन्न होते है।

(८/२१) अष्टादश दोष-रहित जिन-पूजा

कवि ने इस पूजा में उन अठारह दोषों की चर्चा की है, जो तीर्थकरों में नहीं होते। वे १८ दोष निम्न प्रकार हैं—

(१) क्षुधा (२) तृषा (३) जन्म, (४) जरा, (५) मृत्यु (६) विस्मय (आश्चर्य) (७) अरति, (८) खेद (९) शोक, (१०) रोग (११) मद (गर्व) (१२) मोह (१३) राग, (१४) द्वेष, (१५) भय, (१६) निद्रा (१७) चिन्ता एवं (१८) स्वेद (पसीना)।

उक्त सभी दोष मानव को अत्यन्त पीड़ा देने वाले होते हैं। इसलिए कवि ने इनके दुष्प्रभाव से बचने एवं इनके शमन के लिए अर्घ्य चढ़कर अपने आराध्य से यह प्रार्थना की है कि प्रभो, जिस प्रकार आप त्याग और ध्यान के बल पर इन दोषों से मुक्त हो गए, उसी प्रकार यह मानव-समाज भी आपके गुणों का ध्यान करके इन दोषों से छुटकारा प्राप्त कर सके ऐसी शक्ति दें।

७. काव्य-वैभव

देवीदास की काव्य रचनाएँ यद्यपि अध्यात्म एवं भक्ति-परक है, फिर भी उनमें काव्य-कला के विविध रूप उपलब्ध हैं। प्रसंगानुकूल रसयोजना, अलंकार-वैचित्र्य, छन्द-विधान, प्राकृतिक वर्णनों की छटा, भावानुगामिनी-भाषा तथा मानव के मनोवैज्ञानिक चित्रणों से उनकी रचनाएँ, अलंकृत बन पड़ी हैं।

(क) रस-योजना

किसी भी काव्य की आत्मा रस होती है और आध्यात्मिक एवं भक्ति-साहित्य में शान्तरस को रसराज माना गया है। कविवर देवीदास ने भी रस को आनन्द के रूप में ग्रहण कर उसे निजात्म-रस के रूप में अभिव्यक्त किया है। यथा—

"तिजग तैं भारी सो अपूरव अचिरजकारी परम आनन्द रूप अखै अविचल हैं।

वीत. २/९/३

"आतमरस अति मीठो साधौ भाई आतमरस अति मीठौ।" पद. ४/ख/२०

कवि ने नवरसों की विस्तृत योजना तो नहीं की, मुक्तक काव्य होने से उसे इतना अवसर भी नहीं था, किन्तु भक्ति के आवेग में प्रसंगवश प्रायः सभी रसों का समावेश हो गया है। उन्होंने अपनी सूक्ष्म दृष्टि-द्वारा तूलिका रूपी लेखनी से शान्त रस का सुन्दर निरूपण किया है और उसे रसराज माना है। इसका स्थायी भाव शम या वैराग्य है तथा विभाव-आलम्बन— असार-संसार, शास्त्रचिन्तन तपध्यान आदि। उद्दीपन—संतवचन, एकान्तस्थान एवं मृतक-दर्शन। अनुभाव—रोमांच, संसार-भीरुता, तल्लीनता और उदासीनता आदि हैं। धृति, मति, स्मृति हर्ष आदि संचारी भाव हैं। जहाँ समरस की स्थिति होती है, वहीं शान्तरस रहता है। संसार की भौतिकवादी चमक-दमक मानव को शान्ति-प्रदान करने में असमर्थ हैं, अतएव उसे आत्ममुखी होना आवश्यक है और आत्ममुखी होना ही शान्तरस की नियोजना है। अतः शान्तरस का रसराज के रूप में प्रयुक्त होना एकदम सार्थक है। इसलिए शान्तरस में सभी रसों का समावेश हो जाता है। उसके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

"अंतरदिष्टि जगैगौ जब तेरी अंतरदिष्टि जगैगौ।
होइ सरस दिड़ता दिन हूँ दिन सब भव भीत भगैगौ।।
दरसन ज्ञान चरण सिवमारग जिहि रस रीति षगैगौ।
देवियदास कहत तब लगि है जिय तूँ सुद्ध ठगैगौ।।" (पद., ४/ख/१९)

"समकित बिना न तरयौ जिया समकित बिना न तरयौ (पद., ४/ख/२३)

इनके अतिरिक्त कवि ने प्रसंग वश शृंगार[१], भक्ति[२], करुण[३], रौद्र[४], भयानक[५], अद्भुत[६] एवं वीभत्स[७] आदि रसों की भी सुन्दर योजना की है, जिसके कारण उनके भक्ति काव्य में भी निखार आ गया है।

---

१. शीलांग., २/३/५-९
२. पद., ४/ख/१५-१६
३. पुकार., २/८/२-४
४. वही. २/८/९
५. वही. २/८/११
६. वीत २/९/१०
७. पुकार, २/८/१३

(ख) अलंकार-निरूपण

कल्पना, सौन्दर्य बोध, एवं भावप्रवणता के लिए कवि ने शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही सुन्दर नियोजन किया है। जहाँ उसने अनुप्रास एवं यमक जैसे शब्दालंकारों के माध्यम से वर्ण्य-प्रसंगों को प्रस्तुत किया है, वहीं उसकी रसवतीधारा भी पाठकों को मनोमुग्ध कर देती है।

अनुप्रास

कवि ने इस अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग किया है। इससे काव्य में अपूर्व नादात्मक सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। नेमिनाथ के बाल-वर्णन में उसने "लाल" शब्द के प्रयोग से अनुप्रास की सुन्दर व्यञ्जना की है। यथा—

"लाल लसिउ देवी कौ सुवाल लाल पाग बाँधे लाल दृग अधर अनूप लाली पान की।

लाल मनी कान लाल माल गरै मूंगन की लाल. अंग झँगा लाल कोर गिरवान की। (पंचवरन., २/१/१)

यमक

उक्त काव्य-ग्रन्थ में यमक अलंकार का भी समुचित प्रयोग हुआ है। कवि ने बैराग्य वर्णन-प्रसंग में इस अलंकार का उपयोग किया है। यथा—

"जरा जोग हरे, हरे वन में निवास करे।" (पंचवरन., २/१/५)

"कारे पसु बंधे बंध काजै देखि कारे भए।।" (पंचवरन., २/१/२)

यहाँ 'हरे' और 'कारे' शब्दों में यमक अलंकार है। पहले 'हरे' शब्द का अर्थ हरण करना और दूसरे 'हरे' का अर्थ है हरा-भरा। इसी प्रकार पहले 'कारे' शब्द का अर्थ काला और दूसरे काले शब्द का अर्थ उदास है।

उपमा

उपमेय भाव को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए कवि ने अप्रस्तुत वर्णनों के द्वारा भावों को उद्बुद्ध करने की अपनी अद्भुत क्षमता-शक्ति का परिचय दिया है। अपनी "बुद्धिवाउनी" रचना में उन्होंने बुद्धिमान् व्यक्ति की तुलना सूर्य और दीपक से की है। यथा—

अघ अंधकार हरिवे कौ हंसरूप मोख कमला प्रकाशिवे कौं कमल प्रमान है।

हरत कुविघ्न जैसे हरत समीर घन विस्व तत्व लखिवे कौं दीपक समान है।

बुद्धि., २/१६/२४

व्रतमूल संजिम सकंध बंध्यौ जम नीयम उभै जल सीच सील साखा बृद्धि भयौ है।
समिति सुभार चढयौ बढयौ गुप्ति परिवार पहुप सुगंधी गुन तप-पत्र छयौ है,
मुक्ति फल दाई जाकै, दया छाह छाई भअै भव तप ताई भव्य जाई ठौर लयौ है।
गयौ अघ तेज भयौ सुगुन प्रकास ऐसौ चरण सुवृक्ष ताहि देवीदास नयौ है।

बुद्धि., २/१६२६

कवि ने व्यापार के रूपक द्वारा शरीर और आत्मा की स्थिति को स्पष्ट करते हुए आत्मा को सम्बोधित किया है और कहा है कि उसे भेद-ज्ञान प्राप्त कर लेने की आवश्यकता है, बिना भेद-ज्ञान के यह आत्मा अनन्त काल तक आवागमन के चक्कर में फँसी रहेगी। वे आत्मा को "हस" शब्द से सम्बोधित करते हुए कहते हैं—

"अरे हंसराइ अैसी कहा तोहि सूझि परी पुंजी लै पराई बंजु कीनौ महा खोटौ है।
खोटौ बंजु किए तौकौ कैसें के प्रसिद्धि होई नफा मूरि थें जहाँ सिवाहि व्याज चोटौ है।
बेहुरे सौ बंध्यौ पराधीन हो जगत्र माहि देह कोठरी मैं तूं अनादि कौ अगोटौ है।
मेरी कही मांनु खोजु आपनौ प्रताप आप तेरी एक समैं की कमाई कौ न टोटौ है।

जोग., २/११/१३

अनन्वय

कवि ने ज्ञान और ज्ञानी के वर्णन-प्रसंग में अनन्वय अलंकार के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि संसार में ऐसी कोई भी वस्तु निर्मित नहीं है, जो ज्ञान एवं ज्ञानी की समता कर सके, क्योंकि दोनों ही व्यक्ति की जीवन-साधना, त्याग-तपस्या एवं तज्जन्य अनुभूति से सम्बन्धित है। इसी तथ्य का निरूपण उन्होंने निम्न पद्य में किया है। यथा—

ज्ञानी सौ न और पै न और सौ सुग्यानवंत ग्यानवंत कै क्रिया विचित्र एक जान की।
जानी एक ठौर कौ पिछानी है सु और कौ सु और कौ अजानी है न जानै एक ठान की।।
ठान-ठान और पै न और ठान-ठान कोई रीति है पिछानिवे की वाही के प्रमान की।

ज्ञानी है सुग्यानी है न ज्ञानी और दूजौ कोई और के पिछानी मैं निसानी
एक ज्ञान की।।'' वीत., २/९/२३

उदाहरण

कवि ने वर्ण्य-विषयों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए उदाहरण-अलंकार की योजना की है। उसने एक से एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। उन्हें पढ़कर पाठक मन्त्र-मुग्ध सा रह जाता है। उसने व्यवहारनय और निश्चयनय जैसे दार्शनिक विषयों को भी अपने लौकिक उदाहरणों द्वारा सरल और सरस बना दिया है। यथा—

जैसे इन्द्रनील मनि डारै पय भाजन मैं मनि को सुभाव पय नीलौ सौ लगत है।
निश्चै करि जद्यपि सुनील मनि आपु विषैं उपचार करैं व्यापी पय मै पगत है।
जैसे सुद्धज्ञान की प्रवर्त्तना है ग्येय विषैं व्यवहारनय के प्रमान सौं सगत है।
सुद्ध नयन निहचै प्रमान ज्ञान एक ठान चग्यौ चिदानंद के समूह मैं दगत है।
वीत., २/९/१९

इसी प्रकार नश्वर शरीर में चैतन्य आत्मा किस प्रकार निवास करती है, इस तथ्य को कवि ने अत्यन्त सुन्दर उदाहरणों के द्वारा प्रस्तुत किया है। यथा—

''जैसे काठ मांहि वसै पावक सुभाव लियैं हाटक सुभाव लियै निवसैउ पल मैं।
पहुप समूह मैं सुगंध कौ प्रमाण ज़ैसे तेलु तिली के मंझार बसै और फल मैं।
दही-दूध विषैं सु तूप आपनैं स्वरूप बसै तीत रहै ज्यौं पुरैन बीच जल मैं।
जैसे चिदानंद लियैं आपनो स्वरूप सदा भिन्न हैं निदान बसै देह की गहल मैं।
वीत., २/९/२४

(ग) मानवीकरण (personification)

कवि-प्रतिभा जब कवित्व के आवेश में जड़ एवं चेतन से तादात्म्य स्थापित कर लेती है तब उसे सृष्टि के रहस्यमय तत्वों में भी नायक अथवा नायिका के दर्शन होने लगते हैं। कवि ने सुमति के वर्णन-प्रसंग में, देखिए उसे चेतन रूप नायक की पटरानी के रूप में किस प्रकार प्रस्तुत किया है—

''सा चिय सुंदरि सील सती, सम सीतल संतनि के मन मानी।
मंगल की करनी हरनी अघ कीरति जासु जगत्र बखानी।।
संतनि की परची न रची परब्रह्म स्वरूप लखावन स्यानी।
ज्ञानसुता वरनी गुणवंतिनि चेतनि नाइक की पटरानी।।'' बुद्धि. २/१६/२२

इसी प्रकार कुबुद्धि का चित्रण भी देखिए, किस मार्मिक शैली में प्रस्तुत किया गया है—

"दूतिय दुर्गति तैं नियरी परपोषिनि दोषिनि है दुखदाई।
इंद्रिनि की पति राखत है प्रगटी विषया रस तैं गुरताई।।
औगुन मंडित निंदित पंडित या दुर्बुद्धि कुनारि कहाई।। बुद्धि., २/१६/५०

(घ) प्रतीक योजना

कवि देवीदास आध्यात्मिक कवि थे। अध्यात्म स्वयं अपने में एक ऐसी विधा है, जिसकी व्याख्या करते समय प्रज्ञा-पुरुषों को भी भावाभिव्यक्ति में विकट-समस्या का सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में प्रतीकों की योजना की जाती है। ये प्रतीक केवल चित्र ही उपस्थित नहीं करते, अपितु किसी भी हृदगत भाव के जीते-जागते क्रियाशील प्रतिनिधि होते हैं। कवि के भी जब विविध आध्यात्मिक भाव कठोर-चट्टानों से टकराने वाले स्रोतों की भाँति फूट निकलने के लिए मचलने लगते हैं, तब वे भी प्रकृति-प्रदत्त प्रतीकों का आश्रय लेकर अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति सहज रूप में कर डालते हैं। कवि देवीदास ने साधना के लिए "केहरि[१] - सिंह को प्रतीक बनाया है। इसी प्रकार सुख और दुःख की प्रवृत्तियों को प्रकाशित करने के लिए "अमृत और विष[२]" को प्रतीक स्वरूप ग्रहण किया है। परमात्मा के लिए "गरीब नवाज[३] एवं आत्मा का वर्णन हंस[४] के माध्यम से किया है। संसार की अज्ञानता को उन्होंने "कूप[५]" के माध्यम से व्यक्त किया है। इसी प्रकार पाँच रंगों का वर्णन-पीला[६]—ज्ञान एवं सरस्वती; हरा[७]—समृद्धि, लाल[८]— प्रेम और शक्ति, श्वेत[९]—यश और काला[१०] वर्ण— अज्ञान तथा अंधकार के प्रतीक रूप में किया गया है। स्व-पर-विवेक के लिए कवि ने "भोर[११]" प्रतीक का आश्रय लिया है। इन प्रतीकों के द्वारा कवि ने वर्ण्य-प्रसंगों को सरलता, सरसता, मनोवैज्ञानिकता, रमणीयता, कोमलता एवं गम्भीरता प्रदान की है।

---

१. बुद्धि. २/१६/२४
२. धर्म. २/६/८
३. पद., ४/ख/१६
४. जोग., २/११/१३
५. पंचपद., २/७/२०
६. पंचवरन. २/१/६
७. वही., २/१/६
८. वही., २/१/६
९. वही., २/१/६
१०. वही २/१/२
११. जोग., २/११/६

(ङ) छंद-योजना

प्राचीन काल से ही साहित्य में छन्दों के प्रयोग होते रहे हैं। साहित्य की दृष्टि से छन्दोबद्ध साहित्य जहाँ अधिक रुचिर और चमत्कारपूर्ण होता है, वहीं पर वह अतिदीर्घजीवी भी हो जाता है। यही कारण है कि लेखन-सामग्री के अविष्कार के पूर्व सहस्राब्दियों तक वेदादि-प्राचीन साहित्य कण्ठ-परम्परा में सुरक्षित रह सका। छान्दोग्योपनिषद् में छन्दों की क्रियात्मक उपयोगिता के भाव को एक सुन्दर रूपक के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया गया है— "देवताओं ने मौत से डरकर अपने आपको (अपनी कृतियों को) छन्दों में ढप लिया। मौत से आच्छादन के कारण ही छन्दों को छन्द कहते हैं[1]। सायण-भाष्य में छन्द की एक व्यत्पत्ति और भी दी गई है— "छन्द कलाकारों और उनकी कला-कृतियों को अपमृत्यु से बचा लेते हैं[2]।" छन्दों की इसी उपयोगिता के कारण साहित्य में छन्द की परम्परा निरन्तर चलती रही है। महाकवि देवीदास ने भी इसी पुरातन परम्परा का अनुकरण किया है।

उन्होंने अपनी रचनाओं में मात्रिक एवं वार्णिक दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने दोहा, चौपाई, गीतिका, छप्पय, सवैया, कुण्डलिया, कवित्त, रोडक, गंगोदक, तोटक, राछरौ, बेसरी आदि छन्दों के साथ-साथ अन्तरलापिका, अन्तलापथ, अछिरचेतनी, छप्पय सर्वलघु, सवैया सर्वगुरु आदि विशिष्ट छन्दों की भी नियोजना की है। सवैया छन्दों के माध्यम से उन्होंने एक सच्चे कलाकार के समान रत्नों को मुद्रिका में जड़ने जैसा आकर्षक कार्य किया है, स्थानाभाव के कारण कवि द्वारा प्रयुक्त कुछ विशिष्ट छन्दों का संक्षिप्त परिचय ही यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है[3]—

(१) छप्पय-अंतरलापिका

इस छप्पय-छन्द के द्वारा कवि ने इस प्रकार के भावों को व्यक्त किया है, जिनसे सहज ही अन्तस् की स्थिति का स्पष्टीकरण हो जाता है। इस छन्द में ९ प्रश्न हैं, जिनके उत्तर अंतिम पंक्ति के अंतिम पद "वर्धमान दी जैत जिन" में निहित है। इस चरण में ९ अक्षर हैं। उनमें से पहले आठ अक्षरों के साथ अन्तिम "न" को मिला-मिलाकर आठ प्रश्नों के उत्तर बनते हैं और नौवें प्रश्न का उत्तर नौ अक्षरों से बनता है। जैसे— वन, धन, मान, नन, दीन, जैन तन, जिन और वर्धमान दी जैत जिन।

---

१. छान्दोग्योपनिषद्., १/४/२

२. सायण भाष्य., १/१/१

३. इन छन्दों के स्पष्टीकरण के लिए मूल चित्रबन्ध प्रकरण देखें।

कहाँ धरयौ तिन्हि ध्यान अखै कह लियौ ध्यान धरि।
बैंत थंभ-सम कहा तज्यौ को मित्र कवन अरि।
कीनी कवन बिलोकि दया मत कौनु प्रकार से।
कह सौ तजे ममत्व कवन कहिये सो सासे।।
तासु नाम अंक नव आदि तै अंत अंक सौं अर्थ पिन।
तीर्थंकर मन तैं अंत मैं वर्धमान दी जैत जिन।। जोग., २/११/४

अर्थात् उक्त पद में पहला प्रश्न है— "ध्यान कहाँ रखा?" इसका उत्तर निकला "वन" में। दूसरा प्रश्न है, ध्यान धारण करके क्या प्राप्त किया? उत्तर है— अक्षय धन अर्थात् निधि। तीसरा प्रश्न है बैंत के स्तम्भ के समान. किस वस्तु का त्याग किया? उत्तर है— मान का. चौथा प्रश्न है— कौन मित्र और शत्रु कौन है? उत्तर है, "नन" अर्थात् कोई नहीं। पाँचवा प्रश्न है— किसको देखकर दया प्रकट की? उत्तर है—दीनों को देखकर। छठवाँ प्रश्न है— कौन से मत को प्रकट किया? उत्तर है— जैन मत को। सातवाँ प्रश्न है—ममत्व का त्याग किससे किया? उत्तर है— शरीर से। आठवाँ प्रश्न है— शाश्वत क्या है? उत्तर है—जिनेन्द्र भगवन। अन्तिम और नौवाँ प्रश्न है— अन्तिम तीर्थंकर कौन हैं? उत्तर है— वर्धमान दी जैत जिन। इस प्रकार एक ही छन्द में प्रश्नोत्तरी शैली में प्रश्न और उत्तर दोनों ही समाहित हैं।

(२) छप्पय अंतलापथ

इस छन्द के नाम से ही विषय स्पष्ट हो जाता है। इसमें कवि ने भगवान नेमिनाथ का दृष्टान्त देते हुए बतलाया है कि यह संसार अस्थिर है, इसलिए तीर्थंकर नेमिनाथ की तरह इसका त्याग करके अपने आन्तरिक भाव रूपी पथ की ओर निहारो। उसी में आत्मा का कल्याण है। इस छन्द के अन्तर्गत १० प्रश्न छिपे हुए हैं, जिनके उत्तर अंतिम पंक्ति के अन्तिम चरण में निहित हैं। इस चरण में १० अक्षर हैं। उसमें से पहले ९ अक्षरों के साथ अन्तिम "ग" अक्षर को मिला-मिलाकर ९ प्रश्नों के उत्तर बनते हैं और दसवें प्रश्न का उत्तर दस अक्षरों को मिलाकर बनता है। जैसे— भोग, जग, नाग, दिग, मग, नग, रोग, धिग, खग और "भोजनादि मन रोधि खग।" (विशेष के लिए आगे देखें) यथा—

विनासीक कह छोडि अथिर कह जानि विरच्चे।
कवन सेज दलमली कवन व्रत धारक सच्चे।।

सिव सन्मुष कह गह्यौ ध्यान किहि परसु धरे पिन।
कहा रहित तन तासु देखि जग कह्यौ कहा जिन।।
को करत सेव जब जीति तिनि चार घातिया कर्म ठग।
श्री नेमिनाथ रागादि हनि भोजनादि मन रोधि खग।। जोग., २/११/१

(३) तेईसा अछिरचेतनी

२३ वर्ण वाले सवैया छन्द को कवि ने तेइसा के नाम से अभिहित किया है। यहां ''अछिर'' शब्द का अर्थ 'अक्षर' है और लक्षणा से उसका 'शास्त्र' या 'ग्रन्थ' अर्थ में ग्रहण किया गया है। कवि ने अक्षर-ज्ञान अथवा शास्त्रज्ञान के प्रति मनुष्यों के व्यामोह को चेतावनी दी है, क्योंकि शास्त्रार्थ अथवा वाद-विवाद के द्वारा कलुषता उत्पन्न होती है, जो मानव-समाज के लिए घातक है। इसलिए कवि ने मनुष्यों को चेतावनी देते हुए कहा है कि अक्षरों (शास्त्रों) में ज्ञान नहीं है, ज्ञान तो तुम्हारी त्रिगुणात्मक आत्मा में ही है, उसी को प्राप्त करने का प्रयत्न करो। उसीसे महासुख की प्राप्ति होगी। जैसे—

''अछिर कौ कह चेतत मूरिख अछिर में कह ग्यान धरे हैं।
सो त्रगुनातम आतम नित्य महासुखकंद अनंद भरे हैं।।'' (जोग. २/११/२२)
मानु मले मद नाषि लियो पद मोख लखे धनु नैन खुलाया।। जोगा. २/११/२१
अंतर नांहि बसे तन बीच नगीच दिपै निज खोजु हिया रे।। जोग., २/११/२३

(४) गंगोदक-छन्द

छन्दशास्त्र के अनुसार गंगोदक-छन्द २४ वर्ण का होता है, जिसमें ८ रगण होते हैं। लेकिन इस ग्रन्थ में कवि ने जिस गंगोदक-छन्द में रचना की है, उसके प्रत्येक चरण में ४० मात्राएँ हैं एवं अन्त में गुरु है। आचार्य केशव ने छन्दशास्त्र में बताए गए नियम के अनुसार ही इसे अपनाया है[१]। इस छंद की संख्या ९ है। उदाहरण—

जुवा थै नहीं पाप है और दीरघ सबै पाप हैं ते जुवा मैं बसे हैं। सप्त., २/२/२

(५) छप्पय-सर्वलघु

बुद्धिबाउनी नामक रचना में कवि ने एक ऐसे छन्द की रचना की है, जिसके सभी वर्ण लघु हैं। उसका नाम उन्होंने छप्पय-सर्वलघु दिया है। यह छन्द कवि

१. दे. केशव., पृ. ३४७

की काव्य-प्रतिभा का परिचायक है। इस छन्द में उन्होंने लय और संगीत का अदभुत समन्वय किया है, जिसने काव्य-सौन्दर्य को बढ़ा दिया है। यथा—

परम धरम धन लखत, चखत न तन तरवर फल।। बुद्धि. २/१६/२०

(६) सवैया सर्वगुरु

कवि ने प्रस्तुत छन्द का भी प्रयोग किया है, जिसके सभी वर्ण गुरु हैं। उसने इस छन्द में मिथ्यादृष्टि साधुओं एवं अन्य मतावलम्बियों की आलोचना तीव्र शब्दों में की है। यथा—

सासी सूधी जानैं नाहीं लाग्यौ झूठी काया माहीं—
पापारंभी डंभी आपा माया ता मैं हूल्यों है। बुद्धि. २/१६/३५

(७) राछरौ

''राछरौ'' शब्द बुन्देलखण्डी-भाषा का है, जो हिन्दी-साहित्य के ''रासा'' शब्द का ही समानान्तर है[१]। यह एक प्रकार का गीतरूप एवं काव्यरूप है। कवि ने ''स्वजोग'' नामक गीत इसी छन्द में रचा है। यथा—

संसय सहित विमोह मैं भव कानन माही विभ्रम जत बल तीन।
भूल्यौ आतमा भव कानन मांही कर्म उदै मिथ्यात।। स्वजोग., ६/२/५

(८) तुकगुपत दोहरा

यह भी एक नया छन्द है जैसा कि उसके नाम से ही विदित होता है, इस छन्द की तुक रहस्यमय अर्थात् छिपी हुई हैं। चित्र में बँधे होने पर ही इसकी विशिष्टता का दिग्दर्शन किया जा सकता हैं। जिसे चित्र-बन्ध प्रकरण में चित्रित किया गया हैं। इसकी रचना करके कवि देवीदास ने हिन्दी छन्द-जगत् में एक नई शैली वाले छन्द की उद्भावना की है। यथा—

भज वन तम जग दावि गन अति धूर सहै बैन।
भव तजि दाग अधू सबै जिन मग बिनु तरि हैन।। विवेक. २/१३/१३

---

१. सन्देश. पृ. ६५-६६

(९) अर्द्ध तुकगुपत गतागत-दोहरा

यह छन्द भी तुकुगुपत दोहरा के समान ही हैं। किन्तु चित्र में बँधे रहने पर इसके पढ़ने की शैली में कुछ अन्तर है। इसके पढ़ने से ही सुन्दरता परिलक्षित हो पाती है। यथा—

नई नव सरस वर दसा दर वस रस वन ईन।
नहीं न गुर पद चिर भनी भर चिद पर गुन हीन।। विवेक. २/१३/१६

इस प्रकार कवि ने उपर्युक्त छन्दों को अपने काव्य-ग्रन्थ में अपनाकर उसे विशिष्टता प्रदान की है।

(ख) भाषा-विश्लेषण

भाषा भावाभिव्यक्ति की संवाहिका मानी गई हैं। भाषा ही भावों की प्रेषणीयता का सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। प्रामाणिक एवं गम्भीर विचारों को व्यक्त करने के लिए उचित एवं सन्तुलित भाषा का होना नितान्त आवश्यक है। इसके अभाव में कवि अपने कवि-कर्म में सफल नहीं हो सकता। कवि देवीदास इस क्षेत्र में भी एक सिद्धहस्त लेखक सिद्ध होते हैं।

देवीदास-साहित्य की भाषा प्रधान रूप से १८ वीं शताब्दी की बुन्देली मिश्रित हिन्दी है। किन्तु उसमें तत्सम, और तद्‌भव शब्दों के साथ-साथ प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, अवधी, राजस्थानी तथा उर्दू एवं फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का भी अभाव नहीं हैं। कवि ने भाषा की गुणग्राहकता को ध्यान में रखकर ही लोक-प्रचलित अन्य भाषाओं की शब्दावलियों को ग्रहण किया है और अपनी भाषा के भाण्डार को समृद्ध बनाया है। जहाँ तक भाषा-ध्वनियों का प्रश्न हैं, उनमें प्राचीन हिन्दी (अथवा अपभ्रंश) की ध्वनियों के समान ही परिवर्त्तन की झलक दिखलाई पड़ती है। यथा—

स्वर-ध्वनियाँ

(१) इ के स्थान पर "अ" का आदेश। जैसे—
इस-अस (परमानंद. २९)

(२) "ए" के स्थान पर "इ" का प्रयोग। जैसे—
एक-इक (वीत. ४/३)

(३) 'ऐ' के स्थान पर "अै" का प्रयोग। जैसे—
ऐसा-अैसो (वीत. ३/४)

(४) "ऋ" के स्थान पर "इ"। जैसे—
वृद्धापन-विरधापन (पुकार. १५/३), दृढ़-दिड (परमानंद.१०/१)

(५) "ऋ" के स्थान पर 'रि'। जैसे—.
ऋतु-रितु (पद. २८), ऋण-रिनु (राग. १४/६)।

(६) कहीं-कहीं ऋ स्वर यथावत् सुरक्षित है। जैसे—मृग-मृग(बुद्धि. ४१/३)।

व्यंजन ध्वनियाँ

व्यञ्जन ध्वनियों में भी कुछ परिवर्तन उपलब्ध होते हैं। उदाहरणार्थ—

१. 'ख' ध्वनि के स्थान पर 'ष' का प्रयोग। यथा—
शिखिर-सिषिर (पंचपद. १०/१), मुख-मुष (जीवचतु. ४/१६); सुख-सुष (उपदेश. २/१)

२. कहीं-कहीं 'क' के स्थान पर 'ख' और 'ख' के स्थान पर 'क' का प्रयोग। जैसे—
विवेक-विवेख (जोग. १४/२), सरीखे-सरीके (दसधा. ८/१)

३. 'ड' के स्थान पर "र" का प्रयोग। यह बुन्देली बोली की अपनी विशेषता हैं। उदाहरणार्थ—
केवड़ा-केवरा (मारीच. १४/४); करोड़-करोर (मारीच. १५/७) एवं क्रोर (पद. ४१/१ ख/२३); जुड़े-जुरे (पुकार. २२/२); छिड़क-छिरक (पंचवरन. ४/३)।

४. "क्ष" के स्थान पर 'छ'। कहीं-कहीं 'ख' का भी प्रयोग। जैसे— क्षण-छिन (परमानंद. १५/१), क्षोभ-छोभ (जोग.३/२) मोक्ष-मोख (बुद्धि.२४/१)।

५. 'ज्ञ' के स्थान 'ग्य' का प्रयोग। यथा—
प्रतिज्ञा— प्रतग्या (तीन मूढ़. १५/१); ज्ञान-ग्यान (वीत. २७/१), कहीं-कहीं 'ज्ञ' का प्रयोग भी मिलता हैं। जैसे—
ज्ञानी-ज्ञानी (वीत. २३/१); सुज्ञानी-सुज्ञानी (वीत. २३/१)।

६. "त्र" के स्थान "तिर" का प्रयोग। जैसे—
त्रियंच-तिरजंच (मारीच. ९/४); त्रिदोष-तिरदोस (पुकार. २/१)।

७. "थ" के स्थान पर "त" का प्रयोग। जैसे-हाथ-हात (बुद्धि. ४५/१)।

८. "द" के स्थान पर "ब" आदेश। जैसे— देहुरौ-बेहुरौ (जोग. १३/३)।

९. "य" के स्थान पर "ई" "ज" एवं 'व' का आदेश। जैसे—
नायक-नाईक (पंचपद. १/२); युग-जुग (पंचपद. २०/६);
आयु-आव (मारीच. १४/७); उपाय-उपाव (जोग., २४/२)।

१०. "ल" के स्थान पर "र"। यह बुन्देलखण्डी-बोली की विशेष प्रवृत्ति है। उदाहरणार्थ—
गला-गरौ (राग., ८) मूल-मूर (जोग. १३/२);
चंडाल-चंडार (पंचपद. २३/३)।

११. स, श, एवं ष के स्थान में मूल रूप से 'स' की प्रवृत्ति को अपनाया गया हैं। किन्तु कहीं-कहीं "स" के स्थान पर "श" का प्रयोग भी किया गया है। जैसे—
सदा-शदा (परमानंद., ६), सहित-शहित (परमानंद., १/१); स्वाद-श्वाद (धर्म. १६/२); शरीर-सरीर (परमाननंद., १६/२); शिव-सिव (परमानन्द., १७/१), शुद्ध-सुद्ध (परमानंद. १५/१)।

बुन्देली बोली का एक सुन्दर उदाहरण

आलोच्य ग्रन्थ में नेमिनाथ के बाल-वर्णन में बुन्देली-बोली का ठाट निराला ही है। उसका सौन्दर्य निम्न पद्य में देखिए—

"कारे हैं किसोर सो झुलाए वाही अंगुली सौं,
कारे पसु बंधे बध काजैं देखि कारे भए।।" ......
कारी कंदला में गही गिरनार गली है।" पंचवरन. २/१/२

इसी प्रकार—

बखानती कुवाद की कुवात वे सवाद की।
कुगैल है अदाद की विषाद चित्त में भरै।
छकीय मोह फाँद की सुपन्द्रहूँ प्रमाद की।
अपातता अनाद की मलीन आतमै करै।। बुद्धि. २/१६/४९

और भी—

पियै सुरा सुपान सी कियै कुरा कुमान सी।
उडैलनी अऊत सी छडैल छीद छूत सी।
भडैल भीत भूत सी कलैस को भडारि है। बुद्धि. २/१६/४८

(छ) गुण

गुणों के माध्यम से भाषा में सौन्दर्य आता है। कवि ने माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणों का प्रयोग अवसरानुकूल किया है। उनकी भाषा में प्रसाद और माधुर्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। प्रसाद गुण का आश्रय लेकर उन्होंने लोक प्रचलित सरल शब्दों द्वारा दर्शन के गूढ़-तत्वों को भी मानव-हृदय तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया है. उदाहरणार्थ—

"समकित बिना न तरयो जिया।
लाख क्रोर उपास करि नर कष्ट सहत मरयो।।" पद., ४/ख/२३

इसी प्रकार माधुर्य गुण और लक्षणा शक्ति के निम्न सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य हैं—

"दिपति महाअति जोर जिनवर चरण कमल दुति।
देखत रुप सुधी जन जाकौ लेत सबै चितचोर।।
कैंधो तप गजराज दई सिर भरि सैंदुर की कोर।
मोह निसाकरि दूरि भयो कैंधो निरमल ज्ञान सुभोर।।" पद. ४/ख/१८

(ज) कूटपद

देवीदास ने "जोग-पच्चीसी" और बुद्धिवाउनी नाम की रचना में ऐसे अनेक पद्यों की रचना की है, जो कूट-पदों की श्रेणी में आते हैं। ऐसे पद्यों में प्रश्न और उत्तर दोनों ही निहित रहते हैं। इस दृष्टि से कवि देवीदास हिन्दी के जैन कवियों में अपनी अनूठी पहिचान बनाते दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार के पदों को समझने के लिए पाठक को प्रयास करना पड़ता है। यथा—

"विनासीक कह छोड़ि अथिर कह जानि विरच्चे।
क़वन सेज दलमली कवन व्रत धारक संच्चे।
सिव सन्मुष कह गह्यौ ध्यान किहि परसु धरे पिन।
कह रहित तन तासु देखि जग कह्यौ कहा जिन।
को करत सेव जब जीति तिनि चार घातिया कर्म ठग।
श्री नेमिनाथ रागादि हनि भोजनादि मन रोधि खग।। जोग. २/१६/१

इस पद में १० प्रश्न हैं, जिनके उत्तर अन्तिम चरण के "भोजनादि मन रोधि खग" में निहित हैं। इस चरण में दस अक्षर हैं। उनमें से नौ अक्षरों के साथ अन्तिम

अक्षर को मिला-मिलाकर नौ प्रश्नों के उत्तर बनते हैं। और दसवें प्रश्न का उत्तर पूरे अन्तिम चरण से बनता हैं। जैसे—

१. प्रश्न— संसार में नष्ट होने योग्य वस्तु क्या है; जिसका त्याग आवश्यक है? उत्तर— भोग। २. प्रश्न— संसार में अस्थिर क्या है? उत्तर— जग। जग स्वयं अस्थिर हैं। ३. प्रश्न— पुराणों के अनुसार वह शैय्या कौन सी थी, जिसे रौंदा गया था? उत्तर— नागशैय्या। ४. प्रश्न— वह कौन सा व्रत हैं, जिसको धारण करने वाला सत्पुरुष कहलाता है? उत्तर— दिग्व्रत। ५. प्रश्न— नेमिनाथ ने शिवा माता के समक्ष किस मार्ग को ग्रहण किया था? उत्तर— तपस्या का मार्ग। ६. प्रश्न— अपना भव सुधारने के लिए कौन सा ध्यान किया जाय? उत्तर— नग अर्थात् केवलज्ञान। ७. प्रश्न— शरीर के साथ क्या लगा रहता है? उत्तर— रोग। ८. प्रश्न— संसार के कष्टों को देखकर जिनेन्द्र ने क्या कहा था? उत्तर— धिग अर्थात् धिक्कार। ९. प्रश्न— चार घातिया कर्मों को जीत लेने वाले की कौन सेवा करता हैं? उत्तर— खग अर्थात् स्वर्गलोक के देवता। १०. प्रश्न— श्रीनेमिनाथ भगवान ने रागादि का हनन किस प्रकार किया? उत्तर— भोजनादि मन रोधि खग।

उक्त ग्रन्थ में अनेक पद्य ऐसे हैं, जिनकी रचना कूट-पदों के अन्तर्गत हुई हैं। उन सभी का विश्लेषण कर पाना स्थानाभाव के कारण यहाँ सम्भव नहीं। उदहरणार्थ यहाँ दो पद्यों का भाव दर्शाया जा रहा हैं। प्रथम पद्य में कवि ने निर्ग्रन्थ गुरु की तपश्चर्या का वर्णन किया है। निर्ग्रन्थ गुरु ग्रीष्म ऋतु में चार महिने तक लगातार वन में रहकर तपस्या के भार को सहन करते हुए आत्म-भाव में लीन रहते हैं।

दूसरे पद्य में सात प्रकृतियों की चर्चा करते हुए बतलाया गया है कि तीन प्रकृतियाँ (मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और मिश्र मिथ्यात्व) ही सम्यक्त्व के परिणाम का हनन करने वाली हैं। जब शुद्ध भावों के द्वारा आत्मा की अनुभूति जागृत होती है, तब उक्त तीन प्रकृतियों का नाश तो होता ही हैं, साथ ही अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय रूप इन चार प्रकृतियों का भी नाश हो जाता है। यथा—

मास रहें वन चार अपीत तपी अरचान बहैं रसमा।
माछर भाव तजे सब हैं स सहैं वस जे तव भार छमा।।
मार हनैं जित तेह नमौं सु सुमौंन हते तजि नेह रमा।
मानत जे तप आनि धरे त तरे धनि आप तजे तनमा।। बुद्धि. २/१६/९
तीनि गई अरु तीनि के थोक की चार कसाई भली विधि दौंची। जोग. २/११/२४

(झ) सूक्तियाँ

सूक्ति का अर्थ है सुन्दर उक्ति। सूक्तियों का प्रयोग अभिधा शक्ति के अन्तर्गत किया जाता है। सहृदय कवि अपने विषय-प्रतिपादन में इस प्रकार की उक्तियों का प्रयोग करके पाठक को उद्‌बोधन तथा मार्ग-दर्शन देने का प्रयास करता है। आलोच्य कृति में भी कवि ने अनेक सूक्तियों का प्रयोग किया है। उनमें धर्म, पाप-पुण्य, सज्जन-दुर्जन, शील, संसार, क्रोध, मान, माया, सुमति-कुमति, काम आदि सम्बन्धी सूक्तियाँ प्रमुख हैं। उनमें से कुछ सूक्तियाँ उदाहरणार्थ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

१. ज्यौं निसि ससि बिनु हूँ न है जी नारि पुरिष बिनु तेम (धर्म. ११)

२. प्रीतम सुत सब जानिये जी नदी नाव संजोग रे भाई। (धर्म. १६)

३. मुक्ताहल बिनु पानि ताहि गुनवंत न गोहत। (बुद्धि. २९)

४. कल्पवृक्ष जिमि काट कै आंक लगावत द्वार। (धर्म. ९)

५. परमलता बिनु पहुप हुव। (बुद्धि. २९)

६. जैसे पावक छांडि के ईंधन दहे न कोय। (द्वादश. १२)

७. अमृत रस त्यागि कैं जी पीवत विष दुखदाई। (धर्म. ८)

८. दया मूल ध्रुव धर्म है। (बुद्धि. २८)

९. तैसे ग्रह संपति बिना जी धर्म बिना नर देह। (धर्म. १३)

१०. धर्म सर्व सुख खानि। (बुद्धि. २८)

११. बिजुली सम देख्यौ प्रकट जीवन तन धन हेत। (द्वादश. ३)

१२. ज्यों गजराज प्रवीन हीन दंतनि सु न सोहत। (बुद्धि. २९)

१३. शीतल होत हुदो जिम चंदन। (जिनवन्दना. ४)

१४. ज्ञान को आराधे सोइ पुरुष महान है। (बुद्धि. २४)

१५. जैसे अंध न जानै भान (परमा. ९)

१६. भाग्य बिना रे नर मुगध (बुद्धि. ४४)

इस प्रकार कवि ने बुन्देली बोली को काव्य में प्रतिष्ठित कर अपनी समकालीन बोलियों की विशेषताओं को भी ग्रहण कर लिया है। उनकी भाषा सरल, सहज, सुबोध और स्पष्ट है। उसमें हृदगत भावों को उद्‌बुद्ध करने की अद्भुत शक्ति है।

कवि ने भाषा की कोमलता के द्वारा प्रभावोत्पादन की शक्ति को द्विगणित कर दिया है। भाषा की संगीतात्मकता यत्र-तत्र अपनी मधुरिमा को बिखेर रही है तथा ताल, लय और नाद का सुन्दर समन्वय भावों को मूर्त्त रूप प्रदान करने में सक्षम है। वाक्यों का गठन अत्यन्त कुशलता के साथ हुआ है, जो भावाभिव्यंजना में पूर्ण रूप से सहायक है।

(ञ) शैली

भाषा और शैली दोनों ही एक दूसरे के पूरक हैं। भाषा जहाँ विचारों एवं भावों को अभिव्यक्ति के प्रकार से सम्बन्ध रखती है। कवि ने अपनी रचनाओं में प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप ही विविध प्रकार के काव्य-रूपों एवं शैलियों को प्रयुक्त किया है।

कवि देवीदास ने विचारों को ओजस्वी एवं प्रभविष्णु बनाने के लिए कहीं आदिकालीन चारण-भाट कवियों की भाँति छप्पय-कवित्त[१] शैली को अपनाया है तो कहीं अध्यात्म-रस की मंदाकिनी प्रवाहित करने के लिए अपभ्रंशकालीन दोहा चौपाई[२] छन्द का प्रयोग किया और कहीं-कहीं अपनी बात को चामत्कारिक उक्ति-पूर्ण ढंग से कहने के लिए सवैया-छन्द[३] का आश्रय लिया है और सवैया के विविध रूपों को भी सँवारा है। इन सारी पद्धतियों को देखकर कवि की कुशल काव्य-प्रतिभा एवं बहुज्ञता का साक्षात् परिचय मिलता है।

इन काव्य-पद्धतियों के साथ ही उन्होने विषय-वस्तु का प्रतिपादन जिस रूप में किया है, उससे अनायास ही विविध शैलियाँ भी स्पष्ट हो जाती हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(१) उपदेश शैली

कवि की अनेक रचनाएँ उपदेशात्मक-शैली पर आधृत हैं। कहीं कवि सद्‌गुरु[४] के माध्यम से सांसारिक प्राणियों को उद्‌बोधन देता है, तो कहीं उसने स्वयं भी उनके कल्याण के लिए इस शैली को अपनाया है[५]।

१. दे. पंच, जोग., बुद्धि. प्रकरण
२. दे. शीलांग.; चक्रवर्ती., उपदेश., विवेक. प्रकरण
३. दे. बुद्धि., सम्पूर्ण रचना
४. दे. बुद्धि. २/१६/७,११,१५,१७,१९, पद. ४(ख) ९/१२
५. दे. पद. ४. ख/ २४/५.

(२) प्रश्नोत्तरी शैली

भारतीय-साहित्य परम्परा में प्रश्नोत्तर की यह शैली अत्यन्त प्राचीन है। यह विधा चमत्कार के साथ-साथ प्रसाद युक्त भी है। कवि ने सैद्धान्तिक-तत्वों का निरूपण इस शैली के द्वारा सरलतम रूप में कर दिया है, जो पाठक या श्रोता के हृदय में भली-भाँति पैठ जाता है[१]। ''पदपंगति'' जैसी रचनाएँ इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

(३) निषेध-शैली

जहाँ कवि ने कुविचारों, कषायों एवं मिथ्यात्व का त्याग करने की सलाह दी है, वहाँ उक्त शैली का निर्वाह हुआ है। यथा— मान-मान कही जिया तू मान-मान कही[२]।

(४) प्रबोधन-शैली

निषेध-शैली के समान ही यह शैली है। अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ निषेध-शैली में त्याग पर बल दिया जाता है, वहाँ इसमें त्याग और ग्रहण दोनों ही पर विशेष जोर दिया जाता है। इसमें प्रबोधक के हृदय की उदात्त-भावना का विशेष दर्शन होता है। यथा—

मेरी कही मानुं आपनौ प्रताप आप। तेरी एक समै की कमाई कौ न टोटौ है[३]।।

(५) पद-शैली

कवि ने ''पदपंगति[४]'' एवं ''राग-रागिनी[५]'' रचनाओं में पद-शैली को अपनाया है। उनके पद विभिन्न राग-रागनियों पर आधारित हैं, जिनमें कल्पना, अनुभूति, भावुकता एवं संगीतात्मकता का अद्भुत समन्वय है। ये सभी पद गेय है।

इस प्रकार कवि ने भाव-रस के अनुकूल विभिन्न-शैलियों को ग्रहण किया है। सभी शैलियों के मूल में भावाभिव्यंजना की विविधता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

तात्पर्य यह है कि कविवर देवीदास बुन्देली-हिन्दी के ऐसे महाकवि हैं, जिन्होंने अध्यात्म एवं भक्ति-परक साहित्य के माध्यम से बुन्देली-हिन्दी में विविध रचनाओं के द्वारा ''माँ भारती'' की अमूल्य सेवा की है। इनकी रचनाएँ समकालीन इतिहास, संस्कृति, साहित्यिक काव्य-शैली एवं भाषा के अनेक रहस्यपूर्ण तथ्यों को प्रकाशित करने में सक्षम है।

---

१. पद्. ४./ख/२४; २. वही.

३. जोग. २/११/१३; ४. पद. ४(ख) सम्पूर्ण ५. राग. ४ (क) सम्पूर्ण।

८. भौगोलिक सन्दर्भ

(१) देश

कवि देवीदास ने चक्रवर्त्ती-विभूति वर्णन में प्राच्यकालीन भारतीय भूगोल के अच्छे सन्दर्भ प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने देश का वर्णन करते हुए बतलाया है, कि चक्रवर्त्ती के अधिकार में ३२००० (हजार) देश आते हैं, जो धन, धान्य, स्वर्ण आदि से समृद्ध रहते हैं[१]। कवि के इस "देश" शब्द से प्रतीत होता है कि उन्होंने एक सीमित प्रदेश अथवा नगर के लिए ही "देश" शब्द का प्रयोग किया है। आदिपुराण में नगर की परिभाषा देते हुए बतलाया गया है कि जिसमें परिखा, गोपुर, अटारी, कोट और प्राकार निर्मित हों तथा सुन्दर-सुन्दर भवन बने हुए हों, वह नगर है[२]। मानसार में भी आदिपुराण के समान ही नगर की परिभाषा देते हुए बतलाया गया है कि जहाँ पर क्रय-विक्रय आदि व्यवहार सम्पन्न होते हों, अनेक जातियों और श्रेणियों के कर्मकार बसते हों और जहाँ सभी धर्मों के धर्मायतन स्थित हों, उसे नगर कहते हैं[३]।

(२) ग्राम[४]

कवि ने ग्राम का वर्णन करते हुए बतलाया है कि ग्राम उन्हें कहा जाता है, जो चारों ओर विपुल बाड़ से घेरे हुए हों। चक्रवर्त्ती के ऐसे ग्रामों की संख्या एक करोड़ होती है। आदिपुराण में भी बाड़ से घिरे हुए ग्राम का वर्णन किया गया है[५]। "बृहत्कल्प" में ग्राम की परिभाषा देते हुए कहा है कि जहाँ के निवासियों को १८ प्रकार के कर देने पड़ते हैं, उन्हें ग्राम कहते हैं[६]।

(३) मटंब- (मटम्ब)

आदिपुराण में मटम्ब उस बड़े नगर को कहा गया है, जो ५०० ग्रामों के मध्य में व्यापार आदि का केन्द्र हो। मटम्ब व्यापार-प्रधान बड़े नगर को कहा जाता है। इसमें एक बड़े नगर की सभी विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं[७]। आचारांगसूत्र में मटम्ब की परिभाषा देते हुए बतलाया गया है कि जिस गाँव के ढाई कोस या एक योजन तक चारों ओर कोई गाँव न हो, उसे मटम्ब कहते हैं[८]। कवि देवीदास द्वारा

---

१. चक्रवर्त्ती., ३/४/१; २. आदि., १६/१६९-१७०; ३. मानसार, अध्याय १०; ४. चक्रवर्त्ती., ३/४/१; ५. आदि., १६/१६६; ६. बृहत्, २, १०८८, पृ. ३४२; ७. आदि., १६/१७२; ८. आचारांग सूत्र., १/८, ६/३.

प्रयुक्त मटंव[१] की परिभाषा आदिपुराण के मटम्ब से मेल खाती है। चक्रवर्त्ती-विभूति वर्णन में कवि ने मटंव की संख्या ४ हजार बतलाई है, जो चक्रवर्त्ती के अधिकार में रहते थे।

(४) खेट

नदी और पर्वत से घिरे हुए नगर को खेट कहा गया है। ऐसे १६ हजार खेट[२] चक्रवर्त्ती के अधिकार में रहते थे। आदिपुराण की परिभाषा भी उपर्युक्त ही है[३]। समरांगणसूत्र के अनुसार खेट ग्राम और नगर के बीच होता है। यह नगर से छोटा और ग्राम से बड़ा होता है। ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है कि नगर से एक योजन की दूरी पर खेट का निवेश अभीष्ट है[४]। बृहत्कल्प के अनुसार जिस बस्ती के चारों ओर धूल (मिट्टी) का परकोटा हो अथवा जो चारों ओर से गर्द-गुबार से भरा हो, उसे खेट कहा गया है[५] इन वर्णनों से प्रतीत होता है कि खेट वस्तुतः "खेड़ा" शब्द का रूप है। इसके चारों ओर भी छोटे-छोटे ग्राम होते हैं। इसे एक छोटा नगर (या कस्वा) भी कह सकते हैं, जो किसी सरिता के तट पर समतल भूमि पर स्थित होता है। आदिपुराण के अनुसार खेट की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

१. नदी या पर्वत की तलहटी में उसकी अवस्थिति।

२. खेट का ग्राम से कुछ बड़ा होने के कारण नगर-रूप में उसका विकास।

३. नदी-पर्वत से संरुद्ध होने से औद्योगिक-विकास के साधनों की प्रचुरता।

४. कृषि-कार्य की प्रमुखता।

(५) कर्वट (अथवा खर्वट)

कवि ने कर्वट को पर्वत से आच्छादित बतलाया है अर्थात् जो चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ हो, उसे कर्वट कहते हैं। कवि के अनुसार इस प्रकार के कर्वटों की संख्या २४ हजार है[६] जो चक्रवर्त्ती के अधिकार में रहते हैं। आदिपुराण में कर्वट को खर्वट कहा गया है। उसमें भी खर्वट को पर्वत प्रदेश से वेष्टित कहा गया है। उसके अनुसार खर्वट अनेक गाँवों के व्यापार का केन्द्र रहता था[७]। कौटिल्य ने दो सौ ग्रामों के मध्य खर्वट की अवस्थिति मानी है[८]। सामरिक दृष्टि से इस कर्वट का विशेष महत्व होता था।

---

१. चक्रवर्त्ती.. ३/४/२; २. चक्रवर्त्ती. ३/४/३; ३. आदि. १६/१७१;
४. ब्रह्माण्ड., अध्याय १०, पृ. १०४; ५. बृहद्. २,१०८९, पृ. ३४२;
६. चक्रवर्त्ती. ३/४/३; ७. आदि. १६/१७५; ८. कौटिल्य. १७/१/३

(६) पट्टन

कवि के अनुसार जो समुद्रतट पर बसा हो और जहाँ रत्नों की अत्यधिक उत्पत्ति होती हो उसे पट्टन कहते हैं[१]। बृहत्कल्प के अनुसार नदियों और समुद्रों के किनारे स्थित बन्दरगाहों को जहाँ से नावों और जहाजों द्वारा व्यापार होता था, पत्तन या जलपत्तन कहते[२] थे। आदिपुराण[३] और मानसार[४] के अनुसार भी पत्तन एक प्रकार का विशाल वाणिज्य-बन्दरगाह है, जो किसी सागर या नदी के किनारे स्थित रहता है तथा जहाँ पर मुख्य रूप से वणिक्जन निवास करते थे। बृहत्कथाकोश में पत्तन को रत्नसम्भूति— रत्न प्राप्ति का स्थान बताया गया है[५]। कवि देवीदास ने पट्टन की संख्या अडतालीस हजार बतलाई है, जो चक्रवर्त्ती के अधिकार में रहते थे[६]।

(७) द्रोणमुख

जो नगर सागर के तट पर स्थित हो और जहाँ जाने के लिए जल और स्थल दोनों मार्ग हों, उसे द्रोणमुख कहते हैं[७]। बृहत्कल्प में भी इसकी यही परिभाषा दी गई है[८]। शिल्परत्न में द्रोणमुख को बन्दरगाह माना गया है।[९] द्रोणमुख को व्यावसायिक केन्द्र के रूप में भी महत्व दिया गया है, जो चार सौ ग्रामों के मध्य रहता था और उन ग्रामों की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करता था[१०]। कवि देवीदास ने द्रोणमुख की जानकारी देते हुए बतलाया है कि चक्रवर्त्ती के अधीन एक लाख द्रोणमुख रहते हैं।

(८) संवाहन[११]

कवि ने "संवाह" शब्द को ही संवाहन के रूप में लिया है। उन्होंने बतलाया है कि चक्रवर्त्ती के १४ हजार संवाहन थे, जिसमें २८ हजार दुर्ग बने हुए थे, जहाँ पर शत्रुओं का प्रवेश असम्भव था। आदिपुराण में उस प्रधान नगर को संवाह कहा गया है, जिसमें मस्तक पर्यन्त ऊँचे-ऊँचे धान्य के ढेर लगे हों[१२]। बृहत्कथाकोश में "वाहनं" संवाह के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और इसे अद्रिरुढ—पर्वत पर बसा हुआ एक ग्राम कहा गया है[१३]।

---

१. चक्रवर्त्ती. ३/४/४; २. बृहत्. २, १०९० पृ. ३४२; ३. आदि. १६/१७२; ४. मानसार नवम अध्याय; ५. बृहत्कथा. ९४/१६; ६. चक्रवर्त्ती. ३/४/४; ७. वही. ८. बृहत्., २,१०९०, पृ. ३४२; ९. शिल्परत्न अध्याय ५/२१२; १०. आदि.१६/१७५; ११. चक्रवर्त्ती. ३/४/५; १२. आदि. १६/१७३; १३. बृहत्कथा., ९४/१७.

(९) अन्तर्दीप[१]

कवि ने अन्तर्दीप की चर्चा करते हुए बतलाया है कि अन्तर्दीप की स्थिति उपसमुद्र के बीच में होती है। उनके इस कथन से ज्ञात होता है कि समुद्र के बीच जो टापू बन जाते हैं, उसे ही उन्होंने अन्तर्दीप कहा है, जिसे वर्तमान में अन्तर्दीप या अन्तरीप भी कहा जाता है। इनकी संख्या उन्होंने ५६ बतलाई है, जो चक्रवर्त्ती के अधिकार में रहते थे।

(१०) दुर्गाटवी[२]

कवि ने दुर्गाटवी के सम्बन्ध में बतलाया है कि पर्वतों पर स्थित गाँवों को दुर्गाटवी कहते हैं। इन दुर्गाटवियों की कुल संख्या २८ हजार थी, जो चक्रवर्त्ती के अधिकार में रहते थे।

९. राजनैतिक सन्दर्भ

कवि देवीदास ने अपने साहित्य में प्रसंगवश निम्नलिखित तथा चक्रवर्त्ती के अधीनस्थ आठ प्रकार के राजाओं की चर्चा की है, जिसमें उनकी विशेषताओं को लक्षित करते हुए, उनके अधिकार-क्षेत्र का उल्लेख किया है। यथा—

(१) राजा

एक करोड़ गाँव के अधिपति को राजा कहते हैं। वह मुकुट को धारण करने वाला एवं सेवकों को इच्छित पदार्थ प्रदान करने वाला होता है। उसके अधिकार-क्षेत्र को राज्य एवं मुख्यालय को राजधानी कहते हैं[३]। तिलोयपण्णत्ति में भी राजा की यही परिभाषा दी गई है[४]।

(२) अधिराजा

कीर्त्ति से व्याप्त दिशाओं वाले और पाँच सौ राजाओं के स्वामी को अधिराजा कहते है[५]। तिल्लोयपण्णति में भी इसी विशेषता-सम्पन्न राजा को अधिराजा कहा गया है[६]।

---

१. चक्रवर्त्ती. ३/४/६; २. वही. ३/४/५; ३. वही. ३/४/४८; ४. तिलोय. १/१/४-४२; ५. चक्रवर्त्ती. ३/४/४९; ६. तिलोय. १/१/४५.

(३) महाराजा

एक हजार राजाओं के स्वामी को महाराजा कहते है और उसके अधीनस्थ क्षेत्र को साम्राज्य कहते हैं[१]।

(४) अर्द्धमांडलिक

दो हजार मुकुटबद्ध राजाओं में प्रधान राजा अर्द्धमाण्डलिक कहलाता है[२]। उसके अधीनस्थ क्षेत्र को अर्द्धमण्डल कहते हैं[३]।

(५) माण्डलिक

चार हजार राजाओं के स्वामी को माण्डलिक कहा जाता है। उसके अधीनस्थ क्षेत्र को मण्डल कहा जाता है। सभी राजा उसके चरणों की पूजा करते हैं[४]।

(६) महामाण्डलिक

आठ हजार राजाओं के स्वामी को महामाण्डलिक कहते हैं। उसके क्षेत्र को महामण्डल कहा जाता है[५]।

(७) अर्द्धचक्री

सोलह हजार राजाओं के अधिपति को अर्द्धचक्री कहा जाता है। सभी राजा उसको झुककर प्रणाम करते हैं। वह बड़ा पुण्यशाली माना जाता है[६]। उसके अधीनस्थ क्षेत्र को अर्धचक्री-साम्राज्य कहते हैं।

(८) चक्रवर्त्ती

छह खण्ड रूप भरत क्षेत्र का स्वामी चक्रवर्त्ती कहलाता है। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसे नमस्कार करते हैं[७]। उसके क्षेत्र को चक्रवर्त्ती-क्षेत्र (साम्राज्य) कहा जाता है[८]। देवीदास ने भी इसी रूप में इसका वर्णन किया है[९]।

---

१. चक्रवर्त्ती. ३/४/४९; २. वही. ३/४/५०; ३. तिलोय. १/१/४६;
४ चक्रवर्त्ती. ३/४/५०; ५. वही. ३/४/५१; ६. वही. ३/४/५१;
७. वही. ३/४/५२; ८. तिलोय. १/१४८; ९. चक्रवर्त्ती. ३/४/५२;

१०. कवि देवीदास की रचनाओं का जैन एवं जैनेतर भक्त कवियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन

कवि देवीदास नें जिस— भक्ति-साहित्य की रचना की है, वह जिनेन्द्र-भक्ति से ओत-प्रोत है। जैन-दर्शन में भक्ति का रूप सख्य, दास और माधुर्य-भाव की भक्ति से भिन्न होता है। जिनेन्द्र तो वीतरागी हैं, वे राग-द्वेष से मुक्त हैं, अतएव न तो वे स्तुति से प्रसन्न होते हैं और न निन्दा से अप्रसन्न ही। वे तो समताभावी हैं, किन्तु उनकी भक्ति में एक विचित्रता यही है कि उनकी निन्दा या भक्ति करने वाला स्वतः ही दण्ड या उत्कर्ष का भागी बन जाता है।

जैनधर्म में आत्मा के तीन भेद बतलाये गए हैं— १. बहिरात्मा, २. अन्तरात्मा और ३. शुद्धात्मा। शुद्धात्मा को परमात्मा भी माना गया है। प्रत्येक जीवात्मा कर्म-बन्धन से छुटकारा प्राप्त कर लेने पर परमात्मा बन जाता है। जैनधर्म के अनुसार अनन्त आत्माओं की भाँति अनन्त परमात्मा भी हो सकते हैं। शुद्ध, बुद्ध, पूर्णज्ञान-ज्योति को प्रदीप्त करके मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेने वाली सिद्ध-परमेष्ठी की आराधना भक्त-साधक इस लक्ष्य से करता है कि उसकी आत्मा भी निर्मल और स्वच्छ होकर पूर्ण ज्ञान को प्राप्त कर, उस परमपद को पा सके।

देवीदास-विलास में कवि ने आध्यात्मिक पद्यों एवं पदों की जिस अजस्र-पयस्विनी को प्रवाहित किया है, उसमें भावमय संगीतात्मक आत्माभिव्यक्ति के साथ-साथ दार्शनिक विचारों की अभिव्यंजना भी अन्तर्निहित है। उसमें हृदय-तत्व की कोमल भावनामय अनुभूति के साथ ही दार्शनिक अगाधता भी विद्यमान है। इसलिए इनकी रचनाएँ भक्तिपरक एवं तथ्य-निरूपक होने के कारण महत्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। इनमें उन्होंने आत्मा-परमात्मा, सतगुरु, मन, माया, आनन्द-अनुभव, समरसता, सहजता, पाखण्ड-विरोध आदि तथ्यों का उद्घाटन एक सहृदय कवि के रूप में किया है। इनके जीवन सम्बन्धी विश्लेषण संसार की वास्तविकता के आवरण में आवेष्टित हैं।

कवि देवीदास की जीवन और जगत सम्बन्धी विचारधाराओं पर जैनाचार्य कुन्दकुन्द (ई. पू. प्रथमसदी), जोइन्दु (छठवींसदी), मुनि रामसिंह, (१०वीं सदी), *बनारसीदास (१७वीं सदी), आनन्दघन (१८ वीं सदी), भूधरदास (१८वीं सदी),* एवं भैया भगवतीदास (१८वीं सदी) का पूरा प्रभाव है। साथ ही हिन्दी के भक्तिकालीन कवियों के साथ कहीं-कहीं उनकी विचारधारा एवं भावना का ही नहीं, अपितु शब्दों

का साम्य भी परिलक्षित होता है। उनमें एक ओर कबीर (१३९८ ई.) जैसा रहस्यवाद, पाखण्ड-विरोध एवं सतगुरु की महत्ता का उद्‌घोष है, तो दूसरी ओर सूर(१४७८ ई.) तुलसी (१५३२ ई.) और मीरा (१५०३ ई.) जैसी भक्त-वत्सलता, अनन्यता एवं तन्मयता भी विद्यमान है।

अपने पदों की रचना जिस प्रकार कबीर, सूर, तुलसी एवं मीरा ने गौरी, सारंग, सोरठ, ध्रुपद, भैरवी, बिलावल, धनाश्री, रामकली, जयजयवन्ती, यमन, मलार, केदार, कानरा आदि विभिन्न राग-रागनियों में की, उसी प्रकार देवीदास ने भी उक्त राग-रागनियों में सुन्दर एवं सरस पदों की रचना की है। संगीत की रस-प्रवणता और माधुर्य उनके पदों में सर्वत्र व्याप्त है। इस कथन के स्पष्टीकरण के लिए यहाँ उनका संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) आत्मा-परमात्मा

हम पूर्व में ही कह आए हैं कि जैन-दर्शन में आत्मा के तीन भेद माने गए हैं। इसमें बहिरात्मा को मिथ्यात्व से युक्त मलिन बतलाया गया है। अन्तरात्मा शुद्ध और सात्विक होती है एवं आत्मा का सर्व विशुद्ध रूप ही परमात्मा है। उसे ब्रह्म भी कहा गया है। जैनेतर हिन्दी-भक्ति-काव्य में ब्रह्म को आराध्य माना गया है एवं आत्मा को भक्त। आत्मा उसकी आराधना में लीन रहता है। वैदिक-धर्म के अनुसार आत्मा, परमात्मा का ही एक अंश है, जबकि जैन-धर्म में आत्मा स्वतन्त्र अस्तित्व वाला है और वह स्वयं विशुद्ध होकर परमात्मा भी बन जाता है।

जायसी (१४९५ई.) ने सूफीमतानुसार ब्रह्म की स्थिति हृदय में मानकर जगत् को उसकी प्रतिच्छाया के रूप में देखा है। यथा—

"काया उदधि चितव पिंड पाहाँ।
देखौ रतन सौं हिरदय माहाँ।।" जायसी ग्रन्था. १०, पृ. १७७

तात्पर्य यह है कि ईसी पिण्ड में परमात्मा रूपी प्रियतम प्रतिष्ठित है। जायसी ने इसी को शाश्वत माना है। सूफी मत में आत्मा के दो रूप स्वीकार किए गए हैं— १. संसारी, और २. विवेकी। जायसी ने आत्मा की ज्ञानरूपता, स्वपर प्रकाशरूपता, चैतन्यरूपता, नित्य शुद्ध परमप्रेमास्पदरूपता और सद्रूपता को स्वीकार किया है। उन्होंने बतलाया है कि अन्तर्मुखी-साधना के द्वारा परमात्मा से साक्षात्कार सम्भव है।

कबीर के अनुसार जीव और ब्रह्म पृथक् नहीं है। इसलिए वे कहते हैं—

"कबीर दुनिया देहुरे सीस नवांवण जाई।
हिरदा भीतर हरि बसै तू ताही सौं ल्यौ लाई।।" कबीर ग्रन्था. १०, पृ. १०५

दादू (१५४४ ई.) ने भी परमात्मा को घट के अन्दर ही स्थित माना है और उसे तीर्थों में न खोजकर घट में खोजने की सलाह दी है—

"केई दौड़े द्वारिका केई कासी जाहि।
केई मथुरा कौ चले साहिब घट ही मांहि।" दादू की बानी, पृ १६

सूर ने भी ब्रह्म और जीव में कोई भेद नहीं माना। उनका कथन है कि माया के वशीभूत होकर ही जीव अपने स्वरूप को भूल जाता है—

—अपुनपौ आप ही बिसरयो।
जैसे स्वान काँच मंदिर में भ्रमि-भ्रमि भूक मरयो।। सूरसागर, ३६९

तुलसी ने भी जीवात्मा को परमात्मा से भिन्न नहीं माना। उनके मतानुसार जीव माया के कारण ही अपने वास्तविक स्वरूप को विस्मृत कर देता है—

"जिय जबतैं हरि तैं बिगान्यौ तबतैं देह गेह निज जान्यौ।
माया बस स्वरूप बिसरायो तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो।।" विनयपद, १३६

देवीदास ने जैन-दर्शन के अनुरूप ही परमात्मा की स्थिति शरीर रूपी मन्दिर में स्वीकार की है—

देह देवरे मैं लखों निरमल निज देवा।
जजन-भजन विहवार सों कह मारत ठेवा।। पद. ४/ख/२
अप्पा आपु यही घट माहीं। परमानन्द., १/१/१

कवि देवीदास के अनुसार इस परमतत्व को भेद-विज्ञान के बिना नहीं जाना जा सकता। भेद-विज्ञान अपनी शक्ति से जीव और शरीर को अलग-अलग करके चेतन को स्वानुभव की शक्ति प्रदान करता है। इसलिए उसे "हिये की आँखे" कहा गया है। कवि ने जीव और देह की पृथकता को निम्न रूप में व्यक्त किया है—

पाहन में जैसे कनक दूध दही में घीउ।
काठ माहि जिम अगनि है त्यों शरीर में जीउ।। परमानंद., १/१/२४
जैसे काठमाहि वसै पावक सुभाव लियै हाटक सुभाव लियै।....
जैसे चिदानंद लियै आपनौ स्वरूप सदा
भिन्न है निदान बसै देह की गहल मैं।। वीत., २/९/२४

कबीर ने भी शरीर और आत्मा की भिन्नता को इसी प्रकार दर्शाया है- -

नित उठि जरा कीन्हा परगासा। पावक रह जैसे काष्ठ निवासा।
बिना जुगति कैसे मथिया जाई। काष्ठे पावक रहा समाई।।

संकलन ग्रन्थ., पृ. ४८

(२) परमात्मा के विविध नाम-रूप

जैन-परम्परा में प्राचीन काल से ही जिनेन्द्र देव को अनेक नामों से अभिहित किया जाता रहा है। जोइन्दु[१], मुनि रामसिंह[२], मानतुंग[३], भट्ट अकलंक[४] प्रभृति ने उसे यद्यपि ब्रह्मा, विष्णु, शिव, निरंजन आदि नामों से पुकारा है। फिर भी वह इन सभी पौराणिक नामों से विलक्षण है। वह तो शुद्ध, बुद्ध और शाश्वत है। भले ही उसे किसी भी नाम से पुकारा जाय किन्तु उसका तात्पर्य केवल अखण्ड, अविनाशी आत्मा या परमात्मा से ही होगा। जैनदर्शन की दृष्टि से उक्त समस्त नामावली शुद्ध आत्मा की ही प्रतीक या पर्यायवाची है।

कबीर ने भी उपर्युक्त परम्परा से प्रभावित होकर निर्गुण ब्रह्म को राम, शिव, विष्णु, गोविन्द, निरंजन एवं अल्लाह आदि नामों से पुकारा है। किन्तु उनके राम दशरथ-पुत्र न होकर सबसे भिन्न और सबसे ऊपर परम-आत्मा के ही प्रतीक हैं। कबीर की मान्यता यह रही है कि, जो जन्म लेता और मरता है, वह राम नहीं, माया है। उनका विष्णु तो जगत् का विस्तार है, गोविन्द समस्त ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला है और राम युगों-युगों तक उस ब्रह्माण्ड में रहने वाला है। यथा—

अलह अलख निरंजनदेव, किह विधि करौं तुम्हारी सेव।
विस्न सोई जाको विस्तार सोई कृस्न जिनि कीयो संसार।।

कबीर ग्रन्था., पद, ३२७

किन्तु आगे वे कहते है कि समस्त विश्व के नष्ट हो जाने पर भी राम अविनश्वर रहता है—

"कहै कबीर सब जग विनस्या राम रहे अविनाशी रे। कबीर ग्रन्था., पृ. ४६३

देवीदास ने प्राचीन परम्परा के अनुसार ही जिनेन्द्र देव को अनेक नामों से सम्बोधित किया है। इन्होंने उसे ब्रह्मा, शिव, जगदीश, हरि, हर, एवं राम आदि कहकर पुकारा है। इन सभी नामों का अभिप्रेत अविनाशी-आत्मा ही है। यथा—

---

१. परमात्मप्रकाश, २/२००; २. पाहुडदोहा., ५४, २१५;
३. भक्तामर स्तोत्र, २५; ४. अकलंक स्तोत्र, २,३,४,१०.

सोई परम ब्रह्म परधान सोई शिवरूपी भगवान। परमानंद., १/१/१७
वसुगुन सहित सिद्ध सुख धाम निरविकार निरंजन राम।। परमानंद., १/१/२०
स्वयंसिद्ध जगदीश नमौ त्रिभुवनपति नाइक।। पंचपद., २/७/१

उनका कथन है कि— परमात्मा को किसी भी नाम से अभिहित किया जा सकता है। किन्तु उसे परम-आत्मा होना चाहिए।

(३) परमात्मा की भक्ति

इस अमूर्त्त, अलक्ष परमात्मा की भक्ति सरल नहीं है। देह-देवालय में बसने वाले ब्रह्म से प्रेम करना एवं उसका ध्यान करना दुष्कर कार्य है। मन को वश में करके जैन-भक्तों एवं कबीर ने ब्रह्म का ध्यान किया। उन्होंने लौकिक एवं अलौकिक सुख की कामना किए बिना निष्पृह भाव से मन को ब्रह्म में समर्पित कर दिया। कबीर ने मन को ब्रह्म में समर्पित करने की भावना को निम्न रूप में व्यक्त किया है—

इस मन को विसमिल करौं, दीठा करौं अदीठ।
जौ सिर राखों आपणाँ तौ पर सिरिज अंगीठ। कबीर साखी सुधा. मन को अंग ६

उन्होंने बिना शर्त मन को निरंजन में लगा दिया— "मन दीया मन पाइयै" में मन के उन्मुख होने की बात बिना किसी शर्त के है। कबीर जैसा बिना शर्त आत्म-समर्पण का भाव हिन्दी-साहित्य में अन्यत्र मिलना कठिन है।

कवि देवीदास ने भी बिना शर्त उस निरंजन से मन लगाने की बात कही है। क्योंकि उन्होंने जिस जिनेन्द्रदेव की भक्ति की है वह न तो विश्व का नियन्ता है और न ही कर्तृत्व-शक्ति युक्त। जिनेन्द्र देव में केवल प्रेरणा देने वाला कर्तृत्व है। जिन-भक्त इस तथ्य को भली-भाँति जानता है और प्रेरणा देने वाले प्रभु के ध्यान में अपने मन को बिना शर्त के ही केन्द्रित करता है। उसकी भक्ति निष्काम होती है। देवीदास कहते हैं कि—"हे जीव, तू अन्य सभी भावों को त्याग कर अपनी आत्मा की ही भावना कर। वह आत्मा, जो आठ कर्मों से रहित और दर्शन, ज्ञान, चारित्र से युक्त है। उसी का ध्यान करने से परमात्म-तत्व की प्राप्ति सम्भव है। इसलिए बाह्य-क्रियाओं की ओर से विमुख होकर अन्तर की आराधना कर। यथा—

"आतम तत्व विचारौ सुधी तुम आतम तत्व विचारौ।
वीतराग परिनामनि कौं करि विकलपता सब डारौ।।पद. ४/ख/१०

(४) निर्गुण-सगुण

जैनधर्म में निर्गुण का अर्थ है— पूर्ण वीतरागता। परमात्म-पद प्राप्त करने के लिए इसी वीतरागता से परिपूर्ण आराध्य का चिंतन, मनन एवं ध्यान किया जाता है। कबीर ने भी निराकार और निर्गुण ब्रह्म की आराधना की है। किन्तु इसके साथ ही उन्होंने कहीं-कहीं सगुण ब्रह्म का वर्णन भी किया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका ब्रह्म निराकार और साकार. अद्वैत और द्वैत, अभाव-रूप और भाव-रूप हैं। उन्होंने सत्, रज और तम से रहित ब्रह्म को निर्गुण और विश्व के कण-कण में व्याप्त होने से सगुण माना है। वह बाहर से भीतर तक और भीतर से बाहर तक एक जैसा फैला है। कबीर ने जाने-अनजाने जैन-दर्शन के अनेकान्त को अपनाकर ही ब्रह्म के इन विविध रूपों का अनुभव किया है। यथा—

"संतो धोखा कासों कहिये।
गुण में निर्गुण निर्गुण में गुण।
बाट छांड़ि क्यों बहिये।। कबीर ग्रन्था., पृ. १११

उनकी सत्यान्वेषक बुद्धि ने उस ब्रह्म को जब जिस रूप में समझा, परखा, तब उसी रूप में ग्रहण किया। कबीर ने इस अनेकान्त दृष्टि को किस सम्प्रदाय से ग्रहण किया? इसके सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है, कि "कबीर पर नाथ-सम्प्रदाय का बहुत अधिक प्रभाव था और नाथ सम्प्रदाय में जो बारह सम्प्रदाय अन्तर्भुक्त किये गए थे, उनमें पारस-सम्प्रदाय और नेमि-सम्प्रदाय भी थे। ये सम्प्रदाय जैन थे। इसलिए नाथ-सम्प्रदाय में अनेकान्त का स्वर अवश्य था। भले ही उसका स्वरूप कुछ अस्पष्ट रहा हो[१]।"

कबीर ने उस परमतत्व को अनुपम, अरूपी तथा पुष्प-सुगन्ध से भी झीना बतलाया है[२]।

पूर्व में जिसको जोइन्दु "निष्कल[३]" और मुनि रामसिंह "निसंग[४]" कह चुके थे। उसी को कबीर ने निर्गुण कहा है—

"निर्गुण राम जपहु रे भाई।"

---

१. कबीर, पृ. ३०४, अचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी।
२. कबीर ग्रन्थावली, पृ. ६४।
३. परमात्म. १/२५।
४. पाहुडदोहा., १००।

सूरदास ने यद्यपि अपने काव्य में पूर्ण रूप से सगुण-ब्रह्म की ही भक्ति की है तथापि कहीं-कहीं रहस्यात्मक अनुभूति के साथ उनके काव्य में निर्गुण-ब्रह्म के दर्शन भी हो जाते है—

आदि सनातन एक अनूपम अविगत अल्प अहार।
ओंकार आदि वेद असुर हन निर्गुण सगुण अपार।। सूर सारावली; पद. ९९३

तुलसी ने सूर की ही भाँति सगुण-भक्ति को अपनाया है। किन्तु कहीं-कहीं ब्रह्म के निर्गुण रूप की चर्चा भी कर दी है। यथा—

आदि अंत कोई जासु न पावा।
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना कर बिनु कर्म करे विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी बिनु बानी बकता बड़ जोगी।। मानस; पृ. ९९

अन्य स्थल पर उन्होंने "सगुणहिं निगुणहिं नहिं कुछ भेदा[१]" कहकर दोनों रूपों में कोई भेद नहीं माना।

प्रारम्भ में मीरा ने भी योग-साधना को स्वीकार करके, निर्गुण-ब्रह्म की आराधना का ध्यान किया है। उनके निम्न उद्धरण में उनकी इस भावना का परिचय मिल जाता हैं—

तेरो मरम नहिं पायो रे जोगी।
मीरा के प्रभु हरि अविनासी भाग्य लिख्यो सौ ही पायो।
मीरा की प्रेम साधना; पृ. २८१

लेकिन बाद में उन्होंने योग-साधना के बीहण कंटकाकीर्ण असाध्य मार्ग को छोड़कर सगुण-भक्ति को अपनाकर अपने इष्टदेव की उपासना माधुर्य-भाव से की। उन्होंने आराध्य को प्रियतम माना और स्वयं उनकी प्रेयसी बनकर अहर्निश उनकी बाट जोहती रहीं. यथा—

पीव-पीव मैं रटूँ रात दिन दूजी सुधि बुधि भागी री।
मीरा व्याकुल अति अकुलानी पियाकी उमंग अति लागी री।।
मीरा पदावली पद. ९१।

---

१. मानस; पृ. ९९।

देवीदास ने भी पंच परमेष्ठी के अरहंत और सिद्ध को सगुण और निर्गुण के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने सगुण और निर्गुण में किसी प्रकार की कोई सीमा-रेखा नहीं खींची। क्योंकि दोनों अवस्थाएँ एक ही आत्मा की मानी गई हैं। इसलिए देवीदास दोनों अवस्थाओं के पुजारी हैं। अपनी "पंचपद-पच्चीसी" रचना में उन्होंने सगुण और निर्गुण दोनों की स्तुति–वन्दना[१] की है। एक ओर वे उसे रूप, रेख-विहीन बतलाते हुए कहते हैं— "कि वह परम तत्व न तो हल्का है, न भारी, न कोमल है, न कटु, न सुगन्धित है, न दुर्गन्धित, वह तो केवल अनुभूति जन्य है।" सभी विकल्पताओं का त्याग करके ही उसका अनुभव किया जा सकता[२] है, तो दूसरी ओर उसकी अर्चना, वन्दना, श्रवण, कीर्त्तन, पूजा आदि की चर्चा करते हुए वे कहते हैं—

वंदत तसु चरनारविंद अति विबुध अनंदित।
चरन कमल चरचत सुकृत्य नर पाप निकंदित।। पंचपद; २/७/४
श्रवन कथन उपदेस चिंतवन भजन क्रियादिक आर।
देवियदास कहत इह विधि सौं कीजै स्वगुन सम्हार।। पद; ४/ख/१४

(५) निरंजन

जैनाचार्यों ने अविनाशी, कर्ममल से रहित और केवलज्ञान से परिपूर्ण परमात्मा के लिए निरंजन शब्द का प्रयोग किया है[३]। मुनि रामसिंह के अनुसार दर्शन और ज्ञानमय निरंजन-देव परम-आत्मा ही है। निर्मल होकर जब तक उसे नहीं जान लिया जाता तभी तक कर्म-बन्ध होता है। इसलिए उसी को जानने का प्रयत्न करना चाहिए[४]।

कबीर ने निरंजन शब्द को ब्रह्म के पर्यायवाची के रूप में ग्रहण किया है। उन्होंने निरंजन से परमतत्व की ओर संकेत करते हुए उस तत्व को निर्गुण और निराकार भी माना है—

गोव्यंदे तू निरंजन तू निरंजन राया।
तेरे रूप नाहीं रेख नाहीं और नाहीं माया।। कबीर ग्रन्था; पृ. १२१

कबीर के अनुसार यदि महारस का अनुभव करना है, तो निरंजन का परिचय प्राप्त कर उसे हृदय में बसा लेना आवश्यक है। कबीर के विचार से दृश्यमान पदार्थ अंजन है और निरंजन इन पदार्थों से नितान्त पृथक् है। यथा—

---

१. पंचपद., २/७/४; २. पद., ४/ख/१०; ३. परमात्म., १/१/१७;
४. पाहुडदोहा., ७७-७९

"अंजन अलप निरंजन सार यहै चीन्हि नर करहु विचार।
अंजन उतपति वरतनि लोई बिना निरंजनि मुक्ति न होई।। कबीर ग्रन्था; पद. ३३७

तुलसी ने भी निरंजन शब्द का प्रयोग विशुद अविनाशी और विकार रहित परमात्मा के लिए किया है। यथा—

निरमल निरंजन निरविकार उदार सुख तैं परिहरयो।। विनय. ३/३६/२

देवीदास ने भी कर्ममलरहित, शुद्ध, बुद्ध, निर्मल आत्मा को निरंजन की संज्ञा से अभिहित किया है। उनका कथन है, कि जब तक हृदय रूपी नेत्रों में सद्गुरु की वाणी रूपी अंजन नहीं लगता, तब तक निर्मल-दृष्टि जागृत नहीं हो पाती। यथा—

निर्मल दिष्टि जगै जब अै न लगे गुरु बैन हृदै दृग अंजन।
सो सिवरूप अनूप अमूरित सिद्ध समान लखै सु निरंजन।। बुद्धि. २/१६।१७

उन्होंने राग-दोष रहित, तर्करहित, निराकार, निरविकार, शुद्ध आठ-गुणों से युक्त सिद्ध-स्वरूप को निरंजन माना है। यथा—

देखत होत परम अहलाद राग-दोस वर्ज्जि तक्कवाद।
निराकार सुद्ध सु अनूप सदा सहित निज स्वगुन स्वरूप।
वसु गुन सहित सिद्ध सुख धाम निरविकार निरंजन राम ।।
परमानंद., १/१/२०-२१

(६) सद्गुरु

जैन-साहित्य में पंचपरमेष्ठी में सिद्ध को छोड़कर चार परमेष्ठी की प्रतिष्ठा सद्गुरु रूप में की गई है। संत कवियों ने भी सद्गुरु की पूर्ण प्रतिष्ठा की है। कबीर ने तो उसे गोविन्द से भी श्रेष्ठ सिद्ध किया है— "बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय" किन्तु जैनाचार्यों ने दोनों को एक बतलाया है। गुरु ही गोविन्द हैं। आत्मा और परमात्मा के भेद मिटाने वाला ही गुरु है। गुरु वह है, जिसकी कृपा से ब्रह्म की प्राप्ति हो सके। गुरु अपने ज्ञान रूपी दीपक से उस ब्रह्म का पंथ-दिखलाता है। अन्तर केवल इतना ही है कि कबीर के गुरु के पास तो यह दीपक था, किन्तु जैन गुरु तो स्वयं दीपक रूप होते है यथा—

"गुरु दिणयरु गुरु हिमकरणु गुरु दीवउ गुरु देउ।
अप्पापरहँ परंपरहँ जो दरिसावइ भेउ।।" पाहुड़दोहा—१

"पीछे लागा जाई था लोक वेद के साथ।
आगै थें सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथ। कबीर ग्रन्था., पृ. २

दादू के गुरु तो, जैसे ही उनके मस्तिष्क पर आशीर्वाद का हाथ रखते हैं, वैसे ही उन्हें अगम-अगाध के दर्शन हो जाते हैं—

दादू गैब माहि गुरुदेव मिल्या पाया हम परसाद।
मस्तक मेरे कर धरया देखा अगम अगाध।। सन्तसुधासार, पृ. ४४

सुन्दरदास (१५९६ ई.) के गुरु ने भी दयालु होकर उनका मिलन परमात्मा से करवा दिया। यथा—

परमातम सो आत्मा जुरे रहे बहु काल।
सुन्दर मेला करि दिया सद्गुरु मिले दयाल।। सुन्दर दर्शन, पृ. ११७

जायसी ने पद्मावत में हीरामन तोते को गुरु रूप में प्रतिष्ठित किया है। यथा—

"बिन गुरु पंथ न पाइअ भूले सोई जो भेंट।।" पद्मावत, पद. २१२

उनके रहस्यवाद का मूलतत्व प्रेम है और प्रेम को प्रदीप्त करने वाला गुरु ही है। हीरामन तोता गुरु रूप है और सारे विश्व को उसने शिष्य बना लिया है। वह गुरु साधक-शिष्य के हृदय में विरह की चिनगारी प्रक्षिप्त कर देता है और सच्चा साधक उसे सुलगा देता है—

गुरु विरह चिनगी जो मेला, जो सुलगाई लेई सो चेला।। पद्मावत-पद. १२५

सूरदास ने भी भवसागर से पार उतरने के लिए गुरु के महत्व को दर्शाया है। उनके अनुसार गुरु ही अन्धकार में विलीन होने वाले पथ को दिखलाने वाला दीपक है। वह ऐसा सामर्थ्यवान् है कि क्षण भर में ही उद्धार कर सकता है। यथा—

"गुरु बिन ऐसी कौन करे,
माला तिलक मनोहर बाना लै सिर छत्र धरै।
सूर श्याम गुरु ऐसो समरथ छिन मैं लै उधरै।। सूरसागर, पद. ४१६

तुलसी ने रामचरितमानस के प्रारम्भ में ही गुरु की वन्दना की है और उन्हें कृपासागर माना है। मोह भ्रम का निवारण करने में सूर्य रूपी गुरु ही एक मात्र सहायक है—

बंदउ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु वचन रवि कर निकर।। मानस; पृ. ३

मीरा ने सतगुरु की प्रतिष्ठा करते हुए बतलाया है कि सतगुरु के मिलने से ही मन का संशय दूर होता है। सतगुरु के अनुसार यह संसार किसी का नहीं है, यह तो केवल भ्रम का झूठा पर्दा है, जो लोगों को अपने आकर्षण के जाल में लुब्ध

किए है। जबसे सतगुरु ने इस सत्य का उद्घाटन किया है, तभी से मैं भगवद्भक्ति में लीन हो गई हूँ—

"सतगुरु मिलया संसा भाग्या सेन बताई साँची।
न घर तेरा न घर मेरा गावैं मीरा दासी।। मीरा पदावली., पृ. २०
"मैंने राम रतन धन पायौ।
बसत अमोलक दी मेरे सतगुरु करि किरपा अपणायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तरि आयो। मीरा पदावली., पद. १५७

देवीदास ने जैन परम्परा के अनुसार ही अरहंत, आचार्य, उपाध्याय एवं साधु-परमेष्ठी को सतगुरु माना है और स्वीकार किया है कि परमात्मा को प्राप्त करने के लिए सद्गुरु ही सच्चा पथ-प्रदर्शक है। वही शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति कराने वाला है, उसके शब्दों को हृदयंगम करने से आत्म-ध्यान में लीन होकर ही जीव अष्टकर्मों के बन्धन से छुटकारा प्राप्त करके परमात्म-पद की प्राप्ति कर सकता है—

काल अनादि गए भव भीतर विमुख रहयौ सुसखा तैं।
सदगुरु सबद अबद करुँ भाई आतम ध्यान लगा तैं। पद., ४/ख/९
सुमति आंगुली करि अंजै अंजन सदगुरु बैन।
मोह तिमिर फाटे जबै प्रगटे अंतर नैन।। बुद्धि; २/१६/१६

(७) नाम-स्मरण

अपने आराध्य के श्रवण, कीर्त्तन एवं नाम-स्मरण पर सभी कवियों ने विशेष बल दिया है। आराध्य के नाम-स्मरण से भक्त का मन निर्मल होता है। यह एक आध्यात्मिक-साधना है। इसमें हार्दिक भावों का होना आवश्यक है। बिना-भाव के नाम स्मरण व्यर्थ है। इसलिए जैन-परम्परा में भावशून्य क्रिया को निरर्थक बतलाया गया है— "यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भाव-शून्याः।" कबीर ने भी इसे स्वीकार किया है और कहा है कि यदि केवल खाँड कहने से मुँह मीठा हो जाता, भोजन कहने मात्र से भूख की शान्ति हो जाती, तो राम का नाम लेने मात्र से मुक्ति भी हो जाती. लेकिन ऐसा होता नहीं है। आराध्य के भावपूर्ण स्मरण से ही साधक सांसारिक जीवन में भी अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेने में समर्थ हो सकता है। इसी नाम-स्मरण एवं भगवद् भजन को कबीर ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

"भगति भजन हरि नांव है दूजा दुक्ख अपार।
मनसा वाचा कर्मणा कबीर सुमिरण सार।" कबीर ग्रन्था, पृ. ४
"मन रे राम सुमरि राम सुमिरि भाई।।" कबीर ग्रन्था., पृ. १४७

सूरदास ने भी नाम-स्मरण की महत्ता को अपने पदों में व्यक्त किया है—

जौ तू राम नाम धरतो।
अब कौ जनम आगिलो तेरो दोऊ जनम सुधरतो। संकलन ग्रन्थ, पृ. १३८
कित्ते दिन हरि सुमिरन बिनु खोये। प्राचीन हिन्दी काव्य, पृ २३

तुलसी भी राम नाम का जाप करते हुए जीवन का कल्याण कर लेना चाहते हैं—

"राम राम राम राम राम राम जपत।
मंगलमुद उदित होत कलि-मल-छल-छपत।
नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत।।" विनय. पद. १३०

देवीदास ने भी आराध्य के स्मरण पर जोर दिया है और उसी के माध्यम से अपने स्वरूप को पहचानने का प्रयत्न किया है। जिनेन्द्रदेव का भाव-पूर्ण स्मरण करने से दुर्मति का नाश एवं सुबुद्धि की प्राप्ति होती है, समता रूपी जल से हृदय सराबोर हो जाता है। जिनेन्द्र की भक्ति से संसार के क्लेश दूर हो जाते हैं और सुकृत रूपी वृक्ष में मुक्ति रूपी फल लग जाते हैं। यथा—

"जिन सुमिरन उर बीच बसत जब जिन सुमिरन उर बीच।" पद., ४/ख/३
"नीचगति परिहै सुमरि नर नीचगति परिहै।
मगन विसय कसाय जिम लौंन जल गरिहै।।" पद., ४/ख/१५

(८) मन

परमात्म-पद को प्राप्त करने में मन की शक्ति अचिन्त्य है। यह संसार भ्रमण और मोक्ष दोनों का कारण है। उसे विषय-वासनाओं से पृथक् करके आत्मा में स्थिर करने की स्थिति को ही योग कहा गया है। कबीर ने मन से ही मन की साधना करने की सलाह दी है। चंचल मन को वश में करने पर ही राम रूपी रसायन का पान करना सम्भव है—

"चित चंचल निहचल कीजे तब राम रसायन पीजै।" कबीर ग्रन्था.

सूर ने भी मन की स्थिरता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि जब मन वश में हो जाता है तो फिर उस परम-आत्मा की भक्ति के अतिरिक्त उसके लिए कोई कार्य

रह ही नहीं जाता। मन का उस परम-शक्ति से ऐसा अनन्य नेह लग जाता है कि वह उसके बिना ठीक उसी प्रकार नहीं रह पाता, जैसे कि जहाज का पंछी उड़कर अन्यत्र नहीं जा पाता और पुनः वहीं लौटकर आ जाता है। यथा—

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावे।
जैसे उड़ जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवे।। सूरसागर, १/१६८

देवीदास ने भी मन की दोनों स्थितियों— (१) चंचलता और (२) स्थिरता का दिग्दर्शन कराते हुए बतलाया है कि मन तो अनादि काल से अस्थिर है। वह ध्वजा की तरह चंचल होकर यहाँ से वहाँ उड़ता रहता है। लेकिन जब उसको वश में कर लिया जाता है तो वही मन जहाज के पंछी के समान स्थिर हो जाता है और जिसका मन स्थिर हो जाता है, वह सहज ही में शुद्धात्मा का स्पर्श कर लेता है। फिर उसका सांसारिक विषय-वासनाओं का व्यापार स्वतः ही समाप्त हो जाता है—

''मन की दौर अनादि निधन इम जैसे अथिरपताखा।
सो जिहाज पंछी सम कीनी थिर जिम दरपन ताखा।'' राग. ४/क/३
मन जाको निज ठौर है परसि आतमाराम।
कहि साधौ जाके नहीं धंधौ आठौ जाम।। उपदेश., २/१०/२५

(९) सारग्राही वस्तु का ग्रहण

कबीर ने परमात्म-पद को प्राप्त करने के लिए भौंरे का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि जिस प्रकार भौंरा घट-घट से ग्रहण करने योग्य वस्तु को पहचान कर उसको ग्रहण कर लेता है और निरर्थक वस्तु का त्याग कर देता है। उसी प्रकार मानव को चाहिए कि वह परमात्म-पद को प्राप्त करने के लिए सारग्राही वस्तुओं को ग्रहण करले और निरर्थक वस्तुओं का त्याग कर दे—

''कबीर औगुण न गहै गुण ही कौं ले बीनि।
घट-घट महु के मधुप ज्यूँ परआतम ले चीन्ह।। कबीर ग्रन्था., पृ ४३
''जब गुण के गाहक मिले तब गुण लाख बिकाई।
जब गुण कूँ जानै नहीं कौड़ी बदले जाये।। कबीर-संकलन ग्रन्थ., पृ. २४

देवीदास ने भी परमात्म-पद की प्राप्ति के लिए ग्रहण योग्य वस्तुओं को ग्रहण करने एवं त्यागने योग्य वस्तुओं को त्याग देने की सलाह दी है—

''ग्राहक जोग वसत ग्राहज करि त्याग जोग तजि दीन्हौं रे।
धरनै की सुधारना धरि पुनि करनै काजु सु कीन्हौं रे। राग., ४/क/२

आत्म-दैन्य भावनावाले तुलसी ने भी अपनी दीनता, विनम्रता प्रदर्शित करते हुए समता, सन्तोष आदि सद्‌गुणों के ग्रहण करने पर बल दिया है—

''कबहुंक हौं यहि रहनि रहौंगौ।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तैं संत सुभाव गहौंगौ।
जथा लाभ संतोष सदा काहू सैं कछु न चहौंगौ। विनय., पद. १७२

(१०) माया-मान का त्याग

कबीरदास ने कहा है कि जो व्यक्ति ब्रह्म को प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें अपने हृदय से मान, माया आदि कषायों को बाहर निकाल देना होगा। क्योंकि जिस प्रकार एक म्यान में दो खड्‌ग नहीं रह सकते, उसी प्रकार एक ही हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम और अभिमान दोनों एक साथ नहीं रह सकते—

''पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खड्‌ग देखा सुना न कान। कबीर वचना., पृ. १०४

देवीदास ने भी इसी भाव को व्यक्त करते हुए कहा है कि यह जीव तो संसार के मिथ्या, मोह में भ्रमित होकर सदियों से भटक रहा है। यह अपने हृदय में स्थित शुद्ध, निजानन्द, चैतन्य स्वरूप परम तत्व को तो देखता ही नहीं। जहाँ वह अपने शुद्ध स्वरूप में अकेला ही निवास कर रहा है, वहाँ अशुद्ध भावों की तो पहुँच ही नहीं है—

''एक सुद्ध निज गुन सदन सहित दूसरौ नाहिं।
मिथ्यामद मोहित भयों भ्रम्यों जिया जग माहिं।। द्वादश., २/४/९

(११) बाह्याडम्बर एवं जाति-पाँति-खण्डन

साधना के अन्तर्बाह्य पक्षों में से कभी-कभी साधक बाह्य-क्रियाओं पर विशेष बल देने लगते हैं, जिनसे साधना की बाह्य-क्रियाओं का बोलबाला बढ़ जाता है और आन्तरिक शुद्धि की उपेक्षा करके मात्र तीर्थ वन्दना, पूजा, धार्मिक-अन्धविश्वास एवं जाति-पाँति की उलझनों में ही उलझ कर रह जाता है।

तीर्थंकरों एवं जैनाचार्यों ने प्राचीन काल से ही धार्मिक-अन्धविश्वासों एवं पाखण्डों का विरोध किया है। सम्भवतः उनसे अनुप्राणित होकर सन्त कबीर ने भी

इनका विरोध तीक्ष्ण उक्तियों द्वारा किया है। भावनाहीन होकर मूर्त्ति पूजा करने अथवा मूँड-मुंडाने एवं माला फेरने वालों को पाखण्डी कहकर उन्होंने उन पर कठोर प्रहार किया है। उनका विचार है कि इन कार्यों से समाज में विघटन की भावना प्रबल होती है। साथ ही मन विकार-रहित नहीं हो पाता। इसलिए वे सर्वप्रथम मन को वश में करने की सलाह देते हैं—

"केसो कहा बिगारियो जो मूडै सौ बार।
मन को काहे न मूड़िए जामैं विषै विकार।। कबीर ग्रन्था., पृ. ३६
"पाहन पूजे हरि मिलें तो मैं पूजूँ पहार।" कबीर ग्रन्था., पृ. ३४
"कबीर माला काठ की कहि समझावे तोहि।
मन न फिरावे आपणों कहा फिरावे मोहि।।" कबीर ग्रन्था., पृ. ३५

जायसी ने पद्मावत के जोगीखण्ड में बाह्याचार पर हल्का सा विरोध प्रगट किया है। वहाँ रत्नसेन ज्योतिषी के बाह्याचार-पालन का विरोध करता हुआ कहता है कि प्रेम-मार्ग में दिन, घड़ी आदि पर दृष्टि नहीं रखी जाती—

"प्रेम पंथ दिन घरी न देखा, तब देखे जब होइ सरेखा।।"
पदमावत जोगीखण्ड पद्य २.

सुन्दरदास, भीखा, दादू आदि संत कवियों ने भी बाह्याडम्बर एवं जाति-पाँति का विरोध किया है। तुलसी ने भी राम-भक्ति से रहित जप-तप, तीर्थ आदि क्रियाओं की आलोचना करते हुए उसकी तुलना हाथी को बाँधने के लिए बनाई गई बालू की रस्सी से की है—

जोग जाग जप विराग तप सुतीरथ अटत।
बाँधिवे को भव-गयंद रेनु की रजु बटत।। विनय पद. १२९
"व्रत-तीरथ तप सुनि सहमत पचि मरै करैं तन छाम को।
ग्यान विराग जोग जप तप भय लोभ मोह कोह काम को।। विनय. पद. १५५

उनके प्रभु भक्त-वत्सलता में बिना किसी भेद भाव के शबरी द्वारा दिए गए जूठे बेर प्रेम सहित खा लेते हैं।[१]

सूर ने भी भगवद्भक्ति में जाति-पाँति का विरोध किया है। उनके अनुसार भगवान तो समरस-भावी हैं। उनकी भक्तवत्सलता सबके लिए समान रूप से है। वे अपने भक्त के लिए किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं दर्शाते—

१. रामचरितमानस पृ. ५७२.

''काहू के कुल तन न विचारत।
कौन जात और पाँति विदुर की ताही के पग धारत। सूर संकलन पृ. १३५
जन की और कौन पति राखै।
जाति पाँति कुल कानि न मानत, वेद पुराननि साखै।। वही पृ. १३५

परमात्म-पद की प्राप्ति के लिए देवीदास भी बाह्याडम्बर और जाति-पाँति का तीव्र विरोध करते हैं। उनके अनुसार आत्मशुद्धि के बिना व्रत, जप, तप, तीर्थ-भ्रमण आदि केवल आडम्बर और दिखावा है। इससे परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। उसे तो चित्त-शुद्धि और गुरु-प्रसाद से स्व-पर विवेक जागृत होने पर अपने हृदय में प्रकाशित ज्ञान से ही प्राप्त किया जा सकता है। उनके अनुसार रागादिक-मल रहित चित्त में ही परमात्मा का निवास रहता है, जो निरामय, निरंजन, ज्ञानमय होता है। अतः उसे वहीं खोजो, अन्यत्र भटकने से क्या लाभ? यथा—

राखत सीस जटा केइ लुंचत केइक मूड मुडा संतोसै,
केइक नगन सहित अभ्रन करि केइक अंग भभूदि समोखै।
केइक धूमपान करि पाचत झूलत खात अधोमुख झोखैं।
केइक पंच अगिनि पिनि बैठत कस्ट सहत तप करि तन सोखै।
देवियदास सकल जीवनि कौं स्वपर विवेख बिना अति जोखैं।। पद् ४/ख/१५

अंग लगावत राख रहत नित मौन धारि मुख।
संग भार सब नास करत तप सहत घोर दुख ।। बुद्धि. २/१६/४३

आगे भी कवि जाति-पाँति एवं कुल वंश की चर्चा करता हुआ कहता है, कि केवल तपस्वी हो जाने से या ऊँची जाति और वंश में जन्म ले लेने से ही इस भवसमुद्र को पार नहीं किया जा सकता। संसार से पार उतरने के लिए कुल, वंश एवं जाति की आवश्यकता ही नहीं है। उसके लिए तो चित्त को निर्मल बनाने की और हृदय स्थित आत्मा को विशुद्ध करने की आवश्यकता है। उसी से आत्मा का कल्याण सम्भव है—

ना तापछ यह जगत में न तापछ तुम हंस।
ना तापछ तुम आपनी जात पाति कुल वंस।
न तारैं माता-पिता न तारैं कुल गोत। उपदेश. २/१०/१६-१७'

(१२) शास्त्र-ज्ञान-समीक्षा

जिस प्रकार बाह्याचार से मुक्ति की प्राप्ति सम्भव नहीं है, ठीक उसी प्रकार कोरे ग्रन्थ-ज्ञान से भी आत्म-तत्व की उपलब्धि सम्भव नहीं। गूढ़ चिन्तन के पश्चात्

प्राचीन और संत कवियों ने यही निष्कर्ष निकाला कि केवल शास्त्र-ज्ञान में प्रवीण व्यक्ति निश्चय ही आत्म-लाभ नहीं कर सकता। यथार्थतः उसे स्वसंवेद्यज्ञान की परम आवश्यकता है। क्योंकि कोरे शास्त्र-ज्ञान से संकीर्णताओं, रूढ़ियों एवं अन्ध-विश्वासों को ही प्रश्रय मिलता है। विभिन्न मतों के ग्रन्थों के कारण ही वाद-विवाद होते हैं और साम्प्रदायिकता बढ़ती है। मुनि योगीन्द्र[1] और मुनि रामसिंह[2] ने इस कोरे शास्त्रज्ञान को त्याज्य ठहराकर एक ओर जन-जीवन के लिए ज्ञान का सहज द्वार खोल दिया, तो दूसरी ओर उन्होंने पंडित और पुरोहितों के ऊपर सीधा प्रहार भी किया, कि उनके शास्त्र एवं विचार कोरे पाखण्डों से परिपूर्ण हैं।

कबीर ने कोरे शास्त्र-ज्ञान का विरोध करते हुए उसी एक अक्षर को पढ़ने की सलाह दी है, जिससे आत्म-कल्याण सम्भव है। यथा—

पोथि पढ़ि-पढ़ि जग मुवा पंडित भया न कोय।
एकै आखर पीव का पढ़ै सो पंडित होय।। कबीर ग्रन्था. पृ. २०२

देवीदास ने भी कोरे शास्त्र-ज्ञान का विरोध किया है—

वे कहते हैं कि केवल अक्षर-ज्ञान अर्थात् शास्त्र-ज्ञान प्राप्त करके क्या होगा? क्योंकि शास्त्रों में तो ज्ञान रखा नहीं। यथार्थ ज्ञान की खान तो आत्मा में निहित है। अतः ज्ञान-स्वरूपी आत्मा का अनुभव करो, तभी मुक्ति की प्राप्ति हो सकेगी। अक्षरों की चतुराई मात्र से लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव नहीं। वह तो एक मात्र दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रय संयुक्त नित्य, सहजानन्द, महासुखकन्द आत्मा के ज्ञान-श्रद्धान करने से होगा। अतः केवल निर्मल आत्मा का ध्यान करो। यथा—

अछिर कौं कह चेतत मूरिख अछिर मैं कह ज्ञान धरे हैं।
ग्यान धरे जिहि मैं तिहि चेतु सु अछिर कौन प्रमान परे हैं।।
अछिर तौ चतुराइन मैं चतुराइनि तैं कह काम सरे हैं।
सौ त्रिगुनातम आतम नित्य महासुखकंद अनंद भरे हैं।। जोग. २/११/२२

(१३) सख्य-भक्ति

सूर की भक्ति मुख्य रूप से सख्य-भाव की भक्ति है। उसके कारण ही उसमें ओजस्विता का स्वर प्रधान है। जैन-परम्परा में भी उस चेतन-आत्मा को, जिसमें

१. परमात्मप्रकाश और योगसार पृ. ३८३; २. पाहुडदोहा पृ. ३०.

परमात्म-शक्ति निहित है, लेकिन जो अपने स्वरूप को भूलकर बाह्य क्रियाओं में भ्रमण शील है, उसे आचार्यों और कवियो ने एक सच्चे मित्र की भाँति फटकारा और उनकी भर्त्सना की है। मुनि रामसिंह ने कहा है— "हे जीव, धन और परिजन के विषय में चिन्तन करने से तुम मोक्ष रूपी सुख को प्राप्त नहीं कर सकते. इस तथ्य को जानते हुए भी तुम उसी का चिन्तन करने में अपना सुख मान रहे हो।" यथा—

"मोक्खु ण पावहिं जीव तुहुँ धणु परियणु चिंतंतु।
तो इ विचिंतहिं तउ जि तउ पावहि सुक्ख महंतु।।" पाहुड.—।।

कवि कुमुदचन्द्र, (१६वीं शती), जगतराम (१७वीं शती) एवं द्यानतराय (१७वीं शती) ने भी इसी प्रकार की अभिव्यंजना की है—

प्रभु मेरे तुम कूँ ऐसी न चाहिए।
सघन विघन घेरत सेवक कूँ।।
मौन धरि किउं रहिए।।—हिन्दी जैन पद संग्रह पृ. १५

"हम टेरत तुम हेरत नाहीं यौं तो सुजस बिगारौगे।
हम हैं दीन दीनबन्धु तुम यह हित कब पारौगे।।" वही. पृ. ९७

"तुम प्रभु कहियत दीनदयाल।
अपन जाय मुकति में बैठे हम जु रुलत जगजाल।।
तुमरो नाम जपैं हम नीके मन वच तीनों काल।
तुम तो हमको कछु देत नहिं हमरे कौन हवाल।। हिन्दी जैन पद. पृ. ११५

कवि देवीदास का पद-साहित्य तो उक्त प्रवृत्ति से सर्वत्र ओत-प्रोत है। उसमें भी ओज की प्रधानता है। जिस प्रकार सूर के मीठे उपालम्भ ओज की वाणी से व्यंजित हैं, उसी प्रकार देवीदास भी अपने आराध्य के प्रति उपालम्भ व्यक्त करने में किसी से भी पीछे नहीं है। यथा—

सरन जिन तेरे सुजस सुनि आयो।
तुम हौ तीन लोक के नायक सुरझावन उरझायो।..
श्री भगवंत अंत नहिं जाकौ छन-छन होत सवायो।
ज्यौं इन बैरिनि को तुम जीते सो मुझ क्यों न बतायो।
सो समुझाई कहयौ अब जौ निज चाहत पंथ चलायो। पद. ४/(ख)/७

सेवक साहिब की दुविधा न रहे प्रभजू करि लेउ भलाई। पुकार., २/८/४
निर्मलनाथ करो हमारी मति ज्यौं आपनौ सो करो सब स्वारथ।।

जिनवन्दना., १/४/३

यद्यपि सूर और देवीदास के भक्ति-स्वर आपस में मिलते-जुलते हैं, तथापि देवीदास में कुछ विशेषता बनी रहती हैं। उनके काव्य में समानता होते हुए भी उनकी प्रेरणा के मूल स्वर भिन्न हैं। सूर ने सगुण भक्ति को अपनाकर निर्गुण का खण्डन किया है, परन्तु जैन-भक्ति में सगुण-निर्गुण जैसी भिन्न धाराएँ नहीं है, क्योंकि उसमें जो अरहन्त सगुण-ब्रह्म के रूप में पूज्य है, वही अघातिया कर्मों का हनन करके, निर्गुण-ब्रह्म भी बन जाता है।

इसीलिए जैन भक्ति और अध्यात्म में कोई अन्तर नहीं है। दोनों का समन्वय ही जैन-भक्ति का आधार है। इसी रूप में देवीदास ने जिनेन्द्र देव की सगुण-निर्गुण भक्ति को अपनाया है।

दोनों ने ही अपने-अपने आराध्यों के समक्ष दीनता युक्त भक्ति करके याचना की है, किन्तु सूर की अभिलाषा तो उनके आराध्य ने स्वयं ही आकर पूर्ण कर दी, किन्तु देवीदास का आराध्य तो वीतरागी है, वह तो स्वयं नहीं आ सकता, जैसा कि आचार्य समन्तभद्र ने कहा है—

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।। स्वयम्भू. पृ. ९६

इसलिए उसके स्मरण, कीर्त्तन और ध्यान से जिन पुण्य-प्रकृतियों का बन्ध हुआ, उन्हीं से जैन भक्त को लौकिक और अलौकिक सुखों की प्राप्ति होती है।

(१४) दासभक्ति

जैन परम्परा में नवधा-भक्ति न होने पर भी जैन-कवियों ने उसके अंगों को अपने काव्य में स्थान दिया है। तुलसीदास ने भक्त की दीनता एवं असमर्थता को प्रदर्शित करने में भक्ति के नौ साधन— श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य एवं आत्मनिवेदन का निरूपण किया है। जैन कवि देवीदास ने क्रम-बद्ध रूप में तो इनकी चर्चा नहीं की, लेकिन आत्मशुद्धि के लिए रागात्मिका-भक्ति को अपनाते समय उनके पदों में इनकी झाँकी अवश्य दिखलाई पड़ जाती

है। वे भी इस असार-संसार-समुद्र से पार उतरने के लिए तुलसी की भाँति विनम्रता और दीनता के स्वर में बार-बार अपने सर्वज्ञ देव की पुकार करने लगते हैं और उसी क्रम में उन्हें अपना स्वामी मानकर अपने को दास रूप में व्यक्त करते हैं।

तुलसी ने तो अपने आराध्य राम की भक्ति सर्वत्र दास्य-रूप में ही प्रस्तुत की है। यथा—

सेइये सु साहिब राम सौं।। विनय. पद १५७
तू गरीब को निवाज हैं। गरीब तेरो।
बारक कहिए कृपालु तुलसीदास मेरो।। वही. ७८/६
विरद गरीबनिवाज राम कौ।।
तातैं हो बारबार देव द्वार पुकार करति।। वही. ९९

देवीदास भी अपनी विनम्रता और दीनता के उद्रेक में सेव्य-सेवक-भाव की अभिव्यंजना निम्न शब्दों में करते हुए दिखलाई पड़ते हैं—

सेव सकल सुखदाई रे जाकी सेव सकल सुखदाई।
श्री जिनराज गरीबनिवाज सुधारन काज सबै सुखदाई। पद. ४/ख/४
दीनदयाल बड़े प्रतिपात दया गुनमाल सदा सर नाई।।
बैरहिं बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनिये जिनराई।। पुकार. २/८/१

(१५) अनुभव

आध्यात्मिक-साधना में स्वानुभूति को सभी साधकों ने स्वीकार किया है। यद्यपि वेदान्त सूत्र में "तर्कप्रतिष्ठानात् (१/१/१) सूत्र आया है, परन्तु आत्मानुभूति में तर्क के लिए कोई स्थान नहीं। जैन-परम्परा में स्वपर-विवेक के द्वारा किए गए आत्म-ज्ञान को अनुभव कहा गया है। यह अनुभव मुण्डकोपनिषद् (३/१/८) के अनुसार न तो नेत्रों से देखा जा सकता है और न वाणी द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता है। यथा—

"न चक्षुर्ग्रह्यते नापि वाचा।" और,
"यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्तमनसा सह ।।" तैत्तरीय. १/९

आत्म-साक्षात्कार के द्वारा जिस अनुभव की प्रतीति होती है, उसे चिदानन्द, चैतन्य-रस या ब्रह्मानन्द कहा जाता है।

कबीर ने स्वानुभूति को महत्व देते हुए भी अद्वैतवाद के आधार पर ब्रह्म से साक्षात्कार का अनुभव किया। उनके अनुभव में भी तर्क की कोई गुंजाइश नहीं।

कबीर ने इस आनन्द में तर्क की प्रतिष्ठा करने वालों को "मोही मन वाला" कहकर उन्हें ब्रह्म को खुले नेत्रों से पहिचानने की सलाह दी है। यथा—

खुले नैन पहिचानों हंसि-हंसि रूप निहारौं। कबीर ग्रन्था. सबद ३०

वस्तुतः यह आत्मानुभव अन्तर्मुखी-वृत्ति होने पर ही प्राप्त हो सकता है। दादू ने भी इस अनुभव का पान किया था, तभी तो वे कह सके—

देख्या नैन भरि सुन्दरि— दादू की बानी, परचा कौ अंग पृ. १३

देवीदास ने भी आत्मानुभव के द्वारा इस अलौकिक आनन्द को प्राप्त करने की चर्चा की है। उन्होंने भेद-विज्ञान के द्वारा प्राप्त किए गए अनुभव को ही जगत का सार माना है। यथा—

आतम अनुभव सार जगत महिं आतम अनुभव सार. पदपंगति— ४/ख/१४

एक समै अनभौ रस पीकरि छोड़ि भरम वघरूले।
देवियदास मिलै तुमरो पद आनि तुम्हें पग धूले।। वही ४/ख/१३

उन्होंने इस अनुभव-रस का पान कर लिया था। इसीलिए इतनी सहजता से वे संसार के विषम-जाल में फँसे हुए प्राणियों को बार-बार उसके पान करने की सलाह देते हुए कहते हैं कि यह महारस अमृत की खान है। यथा—

स्वाद करि अनभौ महारस परम अंम्रत खान। वही ४/ख/२६

(१६) आनन्दानुभवजन्य-समरसता

परमात्मा के प्रति प्रेम की भावात्मक अभिव्यक्ति को रहस्यवाद माना गया है। आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य को समरसता कहा जाता है। क्योंकि दोनों के मिलन से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है और उस आनन्द को ही रस कहा जाता है। किन्तु जैन-परम्परा में आत्मा और परमात्मा के तादात्म्य में भिन्नता है। उसमें आत्मा को एक अखण्ड ब्रह्म का अंश नहीं माना गया है, अतः उसमें परमात्मा के साथ मिलने जैसी कोई बात नहीं होती। उसके अनुसार तो आत्मा निर्मल होकर स्वयं ही परमात्मा बन जाती है।

आत्मा परमात्मा में मिलती हो या परमात्मा बनती हो, दोनों ही अवस्थाओं में समरसता एवं तज्जन्य आनन्द की अनुभूति कबीर और देवीदास दोनों के काव्य में विद्यमान है। कबीर ने आत्मा-परमात्मा के मिलन को अमृत का धारासार बरसना बतलाया है। जिस प्रकार अमृत से अमरत्व की प्राप्ति होती है, ठीक उसी प्रकार आत्मा-परमात्मा के मिलन की यह वर्षा परमपद प्रदान करती है। यथा—

अमृत बरसै हीरा निपजै घंटा पड़ै टकसाल।
कबीर जुलाहा भया पारखी अनभौ उतरया पार।। कबीर, परचा कौ अंग-४७

देवीदास ने भी इस समरसता का अनुभव प्राप्त किया है। वे इस रस का पान करके आनन्द-विभोर हो उठते हैं और कहते हैं—

आतम रस अति मीठौ साधौ आतमरस अदि मीठौ।
स्यादवाद रसना बिन जाको मिलत न स्वाद गरीठौ।।
पीवत होत सरस सुख सो पुनि बहुरि न उलट-पुलीठौ।।
पद पंगति—४/ख/२०

किन्तु इस रस का स्वाद तो स्याद्वाद रूपी रसना के माध्यम से ही ग्रहण किया जा सकता है। कवि ने इस प्रकार एकान्त-दृष्टि का विरोध करते हुए अनेकान्त-दृष्टि की प्रतिष्ठा की है। उनके अनुसार जो व्यक्ति इस रस को पी लेता है, वह पुनः इस संसार में लौट कर नहीं आता। परमात्म-पद प्राप्त करने का यह सबसे उत्कृष्ट उपाय है। अन्त में वे कहते हैं कि समरस की स्थिति आ जाने पर वही भक्त सेवक स्वयं ही साहिब भी हो जाता है, उसमें अन्य कोई स्थिति शेष नहीं रह जाती—

वह सेवक साहिब वही और नहीं कनेवा।
देवियदास सुदिष्टि सौं दरसे स्वयमेवा।। पद पंगति. ४/ख/२
सेवक-साहिब की दुविधा न रहै।। पुकार. २/८/२४

इस समरस रूपी सुधा को पीने वाला व्यक्ति ही परमपद (मोक्ष-पद) की प्राप्ति करने में समर्थ हो जाता है। यथा—

इम सुख सुधा दृग पिवत घट होत सरल वर मोखमग।
जसु इहि प्रकार वसु जाम भनि समदंसन जयवंत जग।। बुद्धि. २/१६/२३

इस समरसता का अनुभव कर लेने के पश्चात् जीव का अहंभाव स्वतः ही समाप्त हो जाता है। मुनि जोइन्दु के अनुकरण पर कबीर ने भी आत्मा-परमात्मा की मिलन-स्थिति को स्पष्ट करते हुए बतलाया है, कि जब जीव परमतत्व से एकत्व प्राप्त कर लेता है, और विश्व के सभी प्राणियों में उस परमतत्व की सत्ता आभासित होने लगती है, तब दोनों में कोई भेद नहीं रह जाता, जो ज्ञान-स्वरूप परमात्मा है, "वही मैं हूँ" और जो "मैं हूँ" वही ज्ञानस्वरूप परमात्मा है—

तूं तूं करता तूं भया मुझमें रही न हूँ।
बारी फेरी बलि गई जित देखूँ तित तूँ।। कबीर ग्रन्था. पृ. ४

देवीदास भी यही कहते हैं कि संसार के बाह्य-द्वन्द्वों में संलग्न रहने पर भी साधक अपने आराध्य के गुणों का स्मरण, चिन्तन एवं मनन करता हुआ अपने स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। धीरे-धीरे वह "सो ऽहं का अनुभव कर लेता है और आगे शुद्धो ऽहं में विचरण करता हुआ अपने स्वरूप में लीन हो जाता है—

सोहं सोहं सो सबै जिया न दूजौ भेद।
बारंबार सुचिंतवत मिटै कर्मक्रत खेद।। द्वादस. २/४/३३

कवि देवीदास के और भी अनेक पद ऐसे हैं, जो हिन्दी-भक्त कवियों की विचार-धाराओं और भाव-सरणी से प्रायः समानता रखते हैं। उनमें से कुछ को तुलना की दृष्टि से यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

तुलसी ने वनवास-वर्णन प्रसंग में नारी की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए सीता के द्वारा यह कहलवाया है, कि "परिवार और समाज में पति के बिना पत्नी का जीवन निरर्थक है", अपने इस विचार को उन्होंने निम्न दृष्टान्त के द्वारा स्पष्ट किया है—

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।
मानस पृ. ३३५

तुलसी ने उक्त उदाहरण के द्वारा जीवन के व्यावहारिक पक्ष को स्पष्ट किया है। किन्तु देवीदास ने लगभग उसी प्रकार का दृष्टान्त देकर धर्म की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने धर्म और अधर्म को धारण करने वाले व्यक्तियों के जीवन की धारा को स्पष्ट किया है। उनके अनुसार धर्म रहित व्यक्ति का जीवन संसार में मात्र पशु के समान होता है। समाज में जिस प्रकार पति-विहीन नारी की स्थिति होती है, उसी प्रकार धर्म विहीन व्यक्ति के जीवन की भी स्थिति होती है. यथा—

ज्यों जुवतिय बिनु कंत रैन बिनु चंद जोतिभर।
ज्यों सरतोइ न होइ लच्छ जिम हू न सून घर।। बुद्धि. २/१६/२४

ज्यो निसि ससि बिन हूँ न है जी नारि पुरिष बिनु तेम।
जैसे गजदंतनि बिना जी धर्म बिना जन जे मरे भाई तूं।। धरम २/६/११

संसार के सभी सम्बन्ध स्वार्थ से युक्त हैं। पति, पत्नी, पुत्र और धन ये सभी क्षणिक हैं। इनका मिलन उसी प्रकार है, जैसे नदी पार करते समय कई व्यक्ति एक साथ नाव मैं बैठते हैं, और तट पर पहुँचते ही अपने पृथक्-पृथक् मार्गों में जाने के कारण एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। सूर ने उक्त भावना को निम्न-पद में व्यक्त किया है—

ज्यों जन संगति हेत नाव मैं रहति न परसैं पार।
तैसें धन दारा सुख संपति विछुरत लगैं न बार।। प्राचीन काव्य पृ. २५

देवीदास ने भी संसार के नश्वर सम्बन्धों का चित्रण नदी और नाव के माध्यम से ही किया है—

कमला सील चला चलौ जी रूप जरा तन रोग।
प्रीतम सुत सब जानियैं जी नदी नाव संजोग।। रे भाई तूं।। धर्म. २/६/१४

सभी भक्त कवियों का ध्यान आराध्य के चरण-कमलों में ही मुग्ध होकर मग्न रहा है। उनकी दृष्टि से प्रभु के चरणों में इतनी शक्ति निहित है, कि उसी से भक्त का कल्याण हो जाता है। इसीलिए कवियों ने उनके चरणों का आश्रय ग्रहण करके अपने जीवन को कृतार्थ माना है। जिस प्रकार भौंरा कमल-रस का पान करके तृप्ति का अनुभव करता है, उसी प्रकार भक्त भी अपने प्रभु के चरणों की सेवा करके संसार-समुद्र से पार होकर परमतत्व में लीन हो जाता है। इसी भावना को व्यक्त करते हुए कबीर कहते हैं, कि ब्रह्म के चरण-कमलों में जो आनन्द प्राप्त होता है, उसका वर्णन कथन के द्वारा सम्भव नहीं, उसका अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। क्योंकि वह तो अनिर्वचनीय है—

चरन कमल बंदौ हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कुछ दरसाई।।
बहिरौ सुनै गूंग पुनि बोलै रंक चले सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार बंदौ तिहिं पाई। सूरसागर— १/१

तुलसी भी यही भावना व्यक्त करते हैं—

जाऊँ कहाँ तजि चरण तिहारे।
काकौ नाम पतितपावन जग केहि अतिदीन पियारे।। विनय. १०१

मीरा भी चरणों की वन्दना करती हुई कहती हैं—

"मन रे परसि हरि के चरण।।— मीरा की पदा. पद १

देवीदास तो जिनेन्द्र-चरणों में लीन ही नहीं रहे, अपितु उन्होंने नवीन *उद्भावनाओं, कोमल कल्पनाओं और वैदग्ध्यपूर्ण व्यंजनाओं के साथ उन चरणों* के सौन्दर्य और कल्याण-कारी रूप को भी व्यक्ति किया है। वे कहते हैं, कि जिनेन्द्र-चरणों का सौन्दर्य अपूर्व है। उन चरणों की आभा इतनी दीप्तिमान है कि आत्मा की शोध करने वाले व्यक्तियों के चित्त का हरण हो जाता है। वह आभा ऐसी प्रतीत

होती है, मानों तपरूपी गजराज के सिर पर सिन्दूर की रेखा खींची गई हो, अथवा मोह रूपी रात्रि को समाप्त करके उज्ज्वल ज्ञान रूपी प्रभात का उदय हुआ हो, अथवा अनन्त-सुख रूपी वृक्ष के दल उमंग में भर कर लहलहाने लगे हों अथवा शिवरमणी के मुख को केशर के रंग में डुबो दिया गया हो। यथा—

दिपति महा अति जोर चरन कमलदुति।
देखत रूप सुधी जब जाकौ लेत सबै चितचोर।।
कैंधो तप गजराज दई सिर भर सैंदुर की कोर।
मोह निसाकरि दूरि भयो कैंधो निरमल ज्ञान सुभोर।।
के सिवकामिनि के मुख राख्यौ केसरि के रंग बोर।। पद पंगति— ४/ख/१८

मीरा की भक्ति में अपने प्रभु के दर्शनों की पीड़ा का जो वर्णन है, वह अत्यन्त मार्मिक और अनिर्वचनीय है। निम्नपद में उनकी अन्तर-व्यथा इस प्रकार प्रतीत हो रही है, जैसे सागर के अन्तर का मन्थन और आलोड़न उसकी उत्ताल तरंगों में दिखलाई पड़ रहा है—

दरस बिन दूखन लागे नैन।
जब से तुम बिछुरे प्रभु मोरे कबहुँ न पायो चैन।।
मीरा के प्रभु कबरे मिलोगे दुख मेटण सुख दैन।। मीरा पदावली पृ. ११३

देवीदास के पदों में भी प्रभु के दर्शन की उत्कट-लालसा में उनके हृदय की तीव्र अन्तर-व्यथा और विकलता का दर्शन होता है—

दरद भयौ जिनदेव तुम दरसन बिनु मोकौं दरद भयौ।
दीनदयाल गरीब-नवाजन या अरजी सुनि लेउ।।..
देवियदास कहत सुख दीजे प्रभु चरनन की सेउ।। पद पंगति. ४/ख/१६

मीरा अपने आराध्य के सौन्दर्य पर इस प्रकार मुग्ध हो जाती है, कि उससे दूर रहना उसके लिए कठिन हो जाता है। इसलिए वह उसे अपने नेत्रों में ही बसा लेने की बात कहती हैं। उसकी इस तन्मयता और एकरसता ने ही आराध्य से प्रत्यक्षीकरण का मार्ग सुलभ और सुगम बना दिया है। यथा—

बसो मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहनी मूरत सांवली सूरत, नैना बने बिसाल।..
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल गोपाल।। मीरा. पृ. १३३

देवीदास भी इसी प्रकार जिनेन्द्र की अनन्य - भक्ति में लीन होकर उन्हें अपने हृदय में बसा देने की भावना व्यक्त करते हैं—

जाके गुन ध्यावत सुपावै परमारथ कौं।
जाकौ जस गावै कोटि तीरथ के किये मैं।।
जाके बैन सुनै नैन खुले उर अंतर के।
जाकौ नाम लेत फल सदा दान दिये मैं।।
देखैं सुख रूप ज्यों अतिहि रस पिये मैं।
देवीदास कहैं ते सुबसौ मेरे हिये मैं।। जिनवन्दना. १/४/१७

इस प्रकार हिन्दी साहित्य के सन्त एवं भक्त कवियों के काव्यों के आलोक में देवीदास-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि देवीदास अन्य जैन एवं जैनेतर भक्त कवियों के सदृश होते हुए भी कुछ दृष्टियों से अपनी पृथक् पहिचान बनाते हैं। अतः यह कहने में कोई संकोच नहीं कि वस्तुतः उनका साहित्य हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि सिद्ध होती हैं। क्योंकि उसमें आध्यात्मिक-रहस्यों की चिन्तनपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ उनकी चित्रमयता, मनोवैज्ञानिकता, स्वाभाविकता, सजीवता और मौलिकता विद्यमान है। उन्होंने साहित्य में अनेक छन्दों के उपयोग के साथ मडरबन्ध, गतागत छन्द आदि लिखकर समस्त हिन्दी-जगत में अपने विशिष्ट काव्य-कौशल की छाप छोड़ी है और इस माध्यम से जहाँ उन्होंने बुन्देली-प्रतिभा के गौरव को उज्ज्वल किया है, वहीं हिन्दी-जगत में जैन हिन्दी साहित्य को प्रथम पंक्ति में अग्रस्थान दिलाने का भी सत्प्रयत्न किया है।

विद्यावती जैन

महाजन टोली नं. २
आरा (बिहार) ८०२३०१

१. स्तोत्र-स्तुति वन्दना खण्ड

१. परमानन्द स्तोत्र-भाषा

दोहरा

परमब्रह्म परमात्मा परमदेव परधान।
बंदौं परमानंद मैं परमरूप भगवान।।१।।

चौपही

चेतनि शक्ति-शहित आनंद निरविकार निरगद निरद्वन्द।
ध्यानहीन तसु सूझत नाँहि अप्पा आपु यही घट माँहि।।२।।

सुखसागर अनंतमय ज्ञान अरु अनंत बलवीरजवान।
दरसन सहित अनंत सुधाम इह विधि अलख आतमाराम।।३ ।।

निरविकार निरबाध अभंग अंतर बाहिज कैं निरसंग।
आनंदमई सदा अविरुद्ध ए चेतन लच्छनि कहि विसुद्ध।।४।।

चिंतत नर उत्तिम आतमैं मद्धिम मगन मोह गात मैं।
अधम चिंतवत हैं नित काम महा अधम चिंतत परधाम।।५।।

विकल परहित अमृतरस ज्ञान धरि विवेक अंजुलि परवान।
पीवत ताहि मुनीश्वर जान पावन पद अविचल निरवान।।६।।

आनंदमई सदा यह जीव जानत ते बुध कहे सदीव।
सो शरदहै आतमाराम कारन परमानंद सुताम।।७।।

ज्यौं नलिनी जल के संग रीत जलतैं रहत निरंतर तीत।
ज्यौं घट बसै आत्मा चित्र निरमल रहै देह तैं भिन्न।।८।।

द्रिव कर्म तैं न्यारौ हंस भावकरम बिनु वर निरवंस।
अरु नोकर्म रहित शिवगाम निश्चय रीति आतमाराम।।९।।

आनंदमई ब्रह्मगुन कूप णिज तन माँहि विराजत भूप।
ध्यानहीन किम लखैं अजान जैसे अंध न जानैं भान।।१०।।

ध्यान धरत भविजन दिढ़ काइ ध्यान माँहि मनु रहत समाइ।
लखि परब्रह्म करत निरधार लच्छन शकल आतमासार।।११।।

जे निजधर्म सहित परधान करत हीन दुख नियम प्रमान।
जे परचैं अप्पा-परताइ सुगुन विचारि हौंहि सिवराइ।।१२।।

आनंदमई आतमा जुक्त सब संकल्प-विकल्प विमुक्त।
धरत सुभाव आप में आप करत ध्यान जोगीश्वर जाप।।१३।।

आनंदमई ग्यान परवीन निराकार निरभै गद हीन।
सुख-अनंत करि सहित सुपंथ निरमल निरलोभी निरगंथ।।१४।।

निश्चयलोक मात्र जिय जान व्यवहारी सु सरीर प्रमान।
इहविधि भेद आतमा भयो जैसो श्रीजिनवर वरनयो।।१५।।

ता छन लख्यो आतमा सुद्ध ता छन नसे कुभाव कुबुद्ध।
ता छिन थिर होइ ब्रह्म अराध ता छन मिटे शकल अपराध।।१६।।

सोई परम ब्रह्म परधान सोई शिव-रूपी भगवान।
सोई परमतत्व निरधार सोई महापरमगुन सार।।१७।।

सोई परमजोति परवीन सोई परमतपोधन लीन।
सोई परमध्यानमय धीर सोई परमआत्मा वीर।।१८।।

सोई सरव करन कल्यान सोई सुख भाजन दुख हान।
सोई सुद्ध सदा पद ठीक सोई प्रगट आतमा लीक।।१९।।

सोई सहित परमआनंद सोई सुखदायक निरदंद।
सोई सुद्ध परम चैतन्य गुनसागर सोई परभिन्य।।२०।।

देखत होत परम अहलाद रागदोस वर्ज्जि तक्कवाद।
निरआकार सुद्ध सु अनूप सदा सहित निज स्वगुन स्वरूप।।२१।।

वसु गुन सहित सिद्ध सुखधाम निरविकार निरअंजन राम।
जा सम सकल आतमासार जानत पंडित भेद विचार।।२२।।

चेतमि सुद्ध चिन्ह परवान केवलदरसन केवलज्ञान।
चेतनि शहित परम आनंद चेतनि जसु भुव प्रगट सुछंद।।२३।।

दोहरा

पाहन मैं जैसे कनक दही दूध में घीउ।
काठि माहि जिम अगिनि है ज्यौं शरीर में जीउ।।२४।।

तेलु तिली के मध्य है परगट हो न दिखाई।
जतन जुगति मैं भिन्नता खरी तेलु हो जाई।।२५।।

जैसे घट में आतमा खोजै ध्यान लगाइ।
स्वपर-भेद पर-भिन्न करि छेद जगत सिव जाइ।।२६।।

जह जग रीति न भीति भय हार जीति नहीं सोष।
सिद्धस्वरूपी आतमा रहित अठारह दोष।।२७।।

केवलदरसन-ज्ञानगुन केवलसुक्ख अनंत।
केवलसिद्धस्वरूपमय परमब्रह्म निवसंत।।२८।।

परमानंद पुनीत यह अस्तुति भाषा कीन।
पढ़ैं सुनैं जे सर्दहैं करैं कर्ममल छीन।।२९।।

देखि-देखि असलोक[1] में करै चौपही बंद।
संत सयाने सर्द हैं [2]अस्तुति परमानंद।।३०।।

भिन्न-भिन्न को कहि सकै ब्रह्मरूप गुन भास।
अलप बुद्धि करि अलप गुन वरनैं देवियदास।।३१।।

(२) जिनस्तुति

राग-ढार हरदौर की

तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो मन वच तन करि जिन चौबीस।
जिनसम देव न दूसरों हो जिनवर तीन भुवनपति ईस।।
तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो।।१।।

छुधा त्रसा तिन्हिकै नहीं हो तिन्हि कैं राग-दोस पुनि नाँहीं।
जनमु धरै न मरनु करैं हो आवत नहीं बुढापे माँहि।।
तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो।।२।।

रोग सोग विसमै बिना हो निरभय निद्रारहित सुदेव।
अरति खेद चिंता चुकी हो निरमद निरमोही निपसेव।।
तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो।।३।।

चौसठ चंवर सुढारही हो तिन्हिके सीस आनि सुर-ईस।
संपूरन सोभित महा हो उपमा बिनु अतिसय चौतीस।।
तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो।।४।।

---

(१) श्लोक (२) स्तुति

आठ प्रतिहारज दिपै हो परम चतुष्टय कौ सुख न अंत।
छयालीस गुन के धनी हो तारन तरन जगत निहिचंत।।
तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो।।५।।

सिरीयपाल सागर तरे हो तिन्हि को नाम जपत गम्भीर।
मानतुंग मुनिराज के हो सुमरत टूटि गए जंजीर।।
तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो।।६।।

सारिमेव सुरगै गए हो सुरपद लह्यौ अंजनाचोर।
वादिराज मुनि की गई हो सुमरत कुष्ट व्याधि अति घोर।।
तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो।।७।।

महिमा श्रीजिनराज की हो सो कवि कहै कहा लौं कोई।
नागेसुर गनधर थके हो कहत न पारु पावत सोई।।
तीर्थंकर ध्याइये हो परमपद पाइये हो।।८।।

(३) जिन-नामावली—

गीतिकाछन्द

बन्दौं सुपद अरहन्त सिद्ध समस्त उरधर ध्यायकें
बन्दौं सु आचारज और उवझाय मस्तक नायकें
चरणारबिन्द सु साधु तिनके निरख कर शिर नायकें।
कर भिन्न-भिन्न सु नाम जिन-चौबीस के गुण गायकें।।१।।

बन्दौं प्रथम आदीश जिनवर बहुर अजित जिनेश जू।
सम्भव सु अभिनन्दन जिनेश्वर सुमति श्रीपरमेश जू।।
छठवें सुपद्मप्रभु सुपारसनाथ देव सु सातवें।
लखिये सुचन्द्रप्रभ जिनवर परखिये निज आठवे।।२।।

जिन पहुपदन्त नमौं सुसीतलनाथ के पद पूजिये।
गण ग्यारहें श्रेयांस-जिनवर भक्तिवन्त सु हूजिये।।
वर वासुपूज्य जिनेस पूजत सरब सुख-सम्पत्ति मिलै।
श्रीविमलनाथ जु माथ नावत जात सब संकट विलै।।३।।

जिनवर अनन्त-अनन्त-गुण-गण जासु महिमा कौ कहै।
जिनधर्म धर्मधुरा सु तिनके शरण पुन सब लोक है।।

जिन शान्तिनाथ सुशान्ति करता अष्ट कर्म सु मारिकै
श्रीकुन्थुनाथ सु हीन करता दुख चतुर्गति टारिकै।।४।।

अरि कर्म जीतन मल्लि जिनवर जासु गुन उर धारिये
परमात्मा सुखकेतु मुनिसुव्रत न उरतें टारिये।।
नमि-नेमि-पारसनाथ-जिनवर वर्द्धमान सु अन्त मैं।
वरनैं सु जिन चौबीस पूजौं सु अति हो निश्चिन्त मैं।।५।।

(४) चतुर्विंशति जिन-वन्दना

(१) श्री आदिनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

सोभित उत्तुंग जाकौ पाँच धनुष सै अंग।
परम सु रंग पीत-वर्ण अतिभारी है।।
गुण सो अथंग देख लाजत अनंग को है।
कोट सूर सोभ जातैं प्रभा अधिकारी है।।
द्विविध प्रकार संग जाके नाहिं सरबंग।
डारिके भुजंग भोग तृष्णा निरवारी है।।
होत मन पंग जस सुनत अभंग जाकौ।
ऐसे नाभिनंदनकों वन्दना हमारी है।।१।।

(२) श्री अजितनाथ जिन-वन्दना

छप्पय

द्रष्टा भाव नोकर्म कंज-नाशन समान हिम।
जन्म जरा अरु मरण तिमिर छय करण भान जिमि।।
सुख समुद्र गम्भीर मार कुंतार हुतासन।
सकल दोस पावक प्रचण्ड झर मेघ विनाशन।।
पाइक समस्त जग जगत गुरु भव्य पुरुष तारन तरन।
बन्दों त्रिकाल सुविसुद्ध करि अजित जिनेश्वर के चरण।।२।।

(३) श्रीसम्भवनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

मोह कर्म छीन के सुपरम प्रवीण भये।
फटक मणि भाजन मँझार जैसे नीर है।।

शुद्धज्ञान साहजीक सूरज प्रकास्यो हिए।
नहिं अणु तिमिर परोक्षताकी पीर है।।
सकल पदारथ के परछी प्रत्यक्ष देव।
तिनतैं जगत्रि के विषैं न धीर-वीर है।।
जयवन्त टोह ऐसे सम्भव जिनेश्वर जू।
सुख-दुख कों न जाके करत शरीर है।।३।।

(४) श्री अभिनन्दननाथ जिन-वन्दना

सवैया तेईसा

चार प्रकार महागुणसार करे तिन घातन कर्म निकंदन।
धर्ममई उपदेश सुनैं तसु शीतल होत हृदौ जिमि चंदन।।
इन्द्र नरेन्द्र धनन्द्र जती सब लोकपति सु करैं पद-वन्दन।
घाल करें तिनिकी गुणमाल विसुद्ध त्रिकाल नमों अभिनंदन।।४।।

(५) श्री सुमतिनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

मोह कौ मरम छेद सहज स्वरूप वेद।
तजो सब खेद सुख कारण मुकति के।।
शुभाशुभ-कर्ममल धोय वीतराग भये।
सुरझे सुख-दुखनि तैं निदान चार गति के।।
क्षायक-समूह ज्ञान-ज्ञायक समस्त लोक।
नायक सो सुरग उरग नरपति के।।
नमों कर जोर शीश नाय सो सुमतिनाथ।
मेरे हृदै हूजे अणि करता सुमति के।।५।।

(६) श्री पद्मप्रभनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

विनाशीक जगत जे विलोक जे उदास भये।
छोड़ सब संगहो अभंग बन लियो है।।
जोड़ पद पद्म अडोल महा आतमीक।
जहँ नासा अग्र होय मग्न ध्यान दियो है।।
हिरदैं पदम जाके विषैं मन राखों थांम।
छयदि स्वरूप हो अंतिहि रस पियो है।।

तेई पद्म-पद्म जिनेसजू मैं पाय निज।
आपुन बल बाँधिके विभाव दूर कियो है।।६।।

(७) श्रीसुपार्श्वनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

विनसे विभाव जाही छिन मैं असुद्धरूप।
ताही छिन सहज स्वरूप तिनि करषे।।
मति श्रुत आदि दे सुदाह दुख दूर भयो।
ह्रदै तासु सुद्ध आतमीक जल वरषे।।
केवलि सुदिष्टि आई संपति अटूट पाई।
सकल पदारथ समै मैं एक परषे।
तिनही सुपास जिनेस की बढ़ाई जाके।
सुनैं जगमाँहि भव्य प्राणी हिय हरषे।।७।।

(८) श्रीचन्द्रप्रभ जिन-वन्दना

कुण्डलिया

देवा देवन के महा चन्द्रप्रभ पद जाहि।
वन्दौं भव उर कमलिनी विगसत देखत ताहि।।
विगसत देखत ताहि सु तौ सब लोक प्रकासी।
केत करै प्रकास चन्द्र महि जोति जरासी।।
विमल चन्द्र मह समद सम स्वदेह वाणी स्वयमेवा।
चन्दा सहित कलंक वे सु निःकलंकित देवा।।८।।

(९) श्रीपुष्पदन्त जिन-वन्दना

कवित्त

माह्यो मन तिन मदन डस्यो पिन भगत अंत तिहिं मिलो न थानि।
समोसरण महिं सो प्रभू पगतर पहु रूप हो वरसी आनि।
पुनि तिनकी सु नाम महिमा सौं अपगुन भयो महागुन खानि।
तेई पुष्पदन्त जिनवर के सेवत चरण-कमल हम जानि।।९।।

(१०) श्रीशीतलनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

शीतल सरसभाव समतारस करि सुपरम अन्त उर भीनौं।
अति शीतल तुषार सम प्रगटत गुण उर करम कमल वन छीनौं।।

दरसन ज्ञान चरन गुण शीतल निरमल जगे सहज गुण तीनौं।
शीतलनाथ नमौं सु आपु तिन्हि सहज स्वभाव आप लख लीनौं।।१०।।

(११) श्री श्रेयान्सनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

चौंसठ चमर जाके सीस सुर ईस ढारैं।
अतिसै विराज तीस चार अगरे।।

आठ प्रातिहार जान अंतु हैं चतुष्टैसे।
तिन्ह कौ प्रकास लोकालोक विषै वगरे।।

क्षुधा तृषा आदि जे सु रहित अठारा दोस।
सुद्ध पद पाय मोक्षपुरी काजै डगरे।।

धरिकैं सुभाव भाव नमों सु श्रेयान्सनाथ।
कर्मचार घातिया कौ मर्म चिन्ह रगरे।।११।।

(१२) श्री वासुपूज्य जिन-वन्दना

कवित्त

घातिया करम मेंटि सहज स्वरूप भेंटि।
भए भव्य तिन्है जे सरैया ज्ञानदान के।।

सहेतु लाभ मोख कौ स आतमा अदोष कौ।
अंतिहि सुख भोग अंतराय कर्म हान के।।

उपभोग अंतराय गये सों विभूति पाय।
समोसरणादि सुख देत निरवान के।।

वीरज अनंत नंत दंसण प्रकास्यो सत्य।
ऐसे वासुपूज्य सुसमुद्र सुद्ध ज्ञान के।।१२।।

(१३) श्री विमलनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

निर्मल धर्म गहो तिन पर्म सु निर्मल पंथ गह्यो परमारथ।
निर्मल ध्यान धरो सर्वज्ञ जगो अति निर्मल ध्यान जथारथ।।

निर्मल सुख्य सु निर्मल दृष्टि विषै सब भास रहे सुपदारथ।
निर्मल नाथ करौ हमरी मत ज्यों आपनौ सो करो सब स्वारथ।।१३।।

(१४) श्री अनन्तनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

सहज स्वभाव ही सौं वीतत विकल्प सबै।
लखौ तिनि जगत विलात जैसे सपनौं।।
जानीयों सो जान्यों देखवोह सो तौ देख्यो सब।
दिप्यो ज्ञान दर्शन विथ्यौ समस्त झपनौं।।
अंतराय कर्म अन्त किये तैं अनन्त बल।
भयो मोहमर्दन अनन्त सुख सपनों।।
जयवन्त होहु ऐसे जग में अनन्तनाथ।
पायो तिनि सदाकौ गुमाओ रूप अपनौं।।१४।।

(१५) श्री धर्मनाथ जिन-वन्दना

कवित्त

गुण कौ न अन्त जाके गण-फणपति थाके।
रसना सहस्र करि पार नहीं पायो है।।
घातिया करम चार आठ दस दोष टारि।
सकत सम्हार भूल भ्रम जु नसायो है।।
परम अतिंहि ज्ञान प्रगट्यौ सहज आनि।
अति सुखदाय परधान पद पायो है।।
ऐसे धर्मनाथ लिये मुकत वधू सो साथ।
जासों देवीदास हाथ जोड़ सीस नायो है।।१५।।

(१६) श्री शान्तिनाथ जिन-वन्दना

शुद्धोपयोग अतिंहिय भोग लह्यौ तिहिं कर्म कलंक निवारे।
एक समै महिं जे सर्वज्ञ भये सब लोक विलोकन हारे।।
पूंजन जे भवि या जग मैं तिन्हि पुण्य उदै पद उत्तम धारे।
ते भगवन्त अथाहि अनन्त वसो उर शान्ति जिनेस हमारे।।१६।।

(१७) श्री कुन्थनाथ जिन-वन्दना

जाके गुन ध्यावत सु पावै परमारथ कौं।
जाको जस गावै कोटि तीरथ के किये मैं।।

जाके वैन सुनैं नैंन खुलैं उर अन्तर के।
जाको नाम लेत फल सदा दान दिए मैं।।
जाके करैं वन्दना के पाप को निकंदन है।
देखैं सुख रूप ज्यों अतिहि रस पिये मैं।।
तेई कुन्थुनाथजू सो साथ मोख-मारग के।
देवीदास कहैं ते सुवसो मेरे हिए मैं।।१७।।

(१८) श्री अरहनाथ जिन-वन्दना

मोह-भट बान्ध्यो तिन्हि सुभट कसाय सान्ध्यो।
धान्ध्यो मन मदन विलात भयो डरिके।।
अपनौ सु सहज-स्वरूप सुद्ध नौका बैठ।
पार भए तृष्णा अपार नदी तरिके।।
लियो पद साहजीक परम अदोस होय।
जन्म-जरा-मरणादि सखा छोड़ करिके।।
वन्दना सु कीजे ऐसे अरह जिनेसुर की।
होय के विसुद्ध हाथ जोड़ सीस धरिके।।१८।।

(१९) श्री मल्लिनाथ जिन-वन्दना

मारि महा बलबन्त हन्यौ सुजन्यौ सुखराग विरोध वितीतो।
इन्द्रिन कौ विसरो व्योपार सुतौ अति ही सुख कारण लीतो।।
स्वारथ सुद्ध जगो परमारथ धारण खेद सब जग जीतो।
मल्ल जिनेश असल्य भये तिन आपन हूँ अपनौ पद बीतौ।।१९।।

(२०) श्री मुनिसुव्रतनाथ जिन-वन्दना

डारि परिग्रह धारि महाव्रत टारि मिथ्यात मिटै दुख मूजौ।
शेष-नरेस-सुरेस सबै जब आनि महा तिनिकौ पद पूजौ।।
जा सम और नहीं जग मैं सुख कारण देव निरंजन दूजौ।
प्राण अधार सुधी तिनिके जयवन्त सदा मुनिसुव्रत हूजौ।।२०।।

(२१) श्री नमिनाथ जिन-वन्दना

ध्यान कृपान सों क्रोध निदान हन्यों तिन मान बली छल लोभा।
राजविभूति अनित्य लखी सब नीर भरैं न रहैं जिय क्षोभा।।

जे निरवार विसुद्ध भये तन चेतन कर्म पुरातम गोभा।
श्री नमिनाथ सदा शिवकी वरनैं कवि को सु सदा करि सोभा।।२१।।

(२२) श्री नेमिनाथ जिन-वन्दना

राजमती सी त्रिया तज के पुनि मोख वधू सुत्रिया को सिधारे।
राजविभौ सबही तजके सब जीवन दान दिये हितकारे।।

आतम-ध्यान धरे गिरनार पै कर्म कलंक सबै तिनि जारे।
जादौं सुवंस करौ सब निर्मल जो जगनाथ जगत्रि तैं तारे।।२२।।

(२३) श्री पारसनाथ जिन-वन्दना

सवैया

नामकी बढ़ाई जाके पाहन सुपाई काह।
ताहि स्पर्शें होइ कंचन सु लौह कौ।।

अचरज कहा है तिन्हकौ सु निज ध्यान धरै।
सहज विनाश होत राग-द्वेष मोह कौ।।

तिनही बतायो मोख मारग प्रगट रूप।
कर्मतन चेतन विछौह कौ।।

देखो प्रभू पारस की वार सुस्वरूप जाने।
भयो सो करै या सुद्ध आतमा की टोह कौ।।२३।।

(२४) श्री महावीर जिन-वन्दना

सवैया

सफल सुरेश शीश नावत असुरेश ईश।
जाके गुण ध्यावत नरेश सर्व देश के।।

धोय मैल कर्म चार-घातिया पवित्र भये।
थिर हो अकंप विषै आतमा प्रदेश के।।

तारण समर्थ भवसागर त्रिलोकनाथ।
करता अनूप शुद्ध धर्म उपदेश के।।

ऐसे वर्धमानजू के वंदना त्रिकाल करौ।
दाता जे [1]जगत्रि माँहि सुमति सुदेस के।।२४।।

---

१. मूल प्रति में "जणत्रिमाँह".

२. संख्यावाची साहित्य खण्ड

(दर्शन, सिद्धान्त, अध्यात्म एवं नीतिपरक मिश्रित साहित्य)

(१) पंचवरन के कवित्त.

दोहा

पंचवरन यह जगत महि अरुन श्याम अरु पीत।
सेत हरित जिन नेमि की अस्तुति कहौं पुनीत।।१।।

सवैया इकतीसा

लाल लसिउ देवी कौं सुवाल लाल पाग बाँधैं लाल द्रग अधर अनूप लाली पान की।
लाल मनी कान लाल माल गरैं मूंगन की लालअंग झंगा लाल कोर गिरवान की।।
लाल रंग फेंटा लाल मोजा लसैं पाइनि में लाल-लाल सबै मिलि खेले सभा कान की।
जाकौ लाल रूप देखि लाजैं कोटि कामदेव होत लाल जोति है अलोप कोटिभान की।।२।।

कारे हैं किसोर सो झुलाए वाही अंगुली सौं कारे नेमिनाथ कारी नागसेज दली है।
कारे पसु बँधे वध काजैं देखि कारे भए कारी कंदला में गही गिरनार गली है।।
कारे नीर भरे अध-ऊरध घटा है कारी भादौं की अंधेरी कारी-कारी मेघ झली है।
कारी सिखा शैल की विराजे जापै देह कारी मानौं गजकुंभ पै करैं कलोल अली है।।३।।

सिंघासन से तपै समूह सेत वारिज है जातैंसेत दंड की प्रभा उतंग चली है।
जापै सेत छत्र धरे हीरा नगसेत जरे मानौं सेत भान आनि करी रछपली है।।
सेत जगमगै जोति सेत फूल व्रष्टि होती सेत ध्यान धरैं सेत धरैं मुक्तगली है।
सेत संख लछन विराजैं जे जिनेस जापैं मानौं सेत कंज पै करैं कलोल अली है।।४।।

पीरी रची भूमि जहां सौंम की कुबेरजू नैं कटिनिका पीरी पीरौ कोटु महाबली है।
पीरे नरथंभ जापै अथिर पताखा पीरी पीरे फूल झरैं सूधे परैं नीची नली है।।
पीरी रंग केसरि की छिरक समंत दीसैं पीरे हैं अशोक वृछ सोभा सबै भली है।
पीरी गंधकुटी पै विराजै नेमिनाथ ईस मानौं चंपकली पै करैं कलोल अली है।।५।।

रागदोस पासि हरैं, चिंता भै निवास हरे, खेद, स्वेद निद्रा मोह माया जार हरे है।
अरति अचिर्ज हरे, छुधा त्रसा विर्ज हरे काम मद सिर्ज हरे भोग ज्ञान खरे है।।
सुखी तन लर्म हरे घातिया सुकर्म हरे लोक रूढ धर्म हरे महाध्यान धरे हैं।
जरा जोग हरे हरे बन में निवास करे रोग सोग हरे फेरि औतरे न मरे है।।६।।

हरे हैं सुपारसु जिनेस हरे पारसु हैं हरे कर्म कंज हो तुसार सम सियरे।
चंदप्रभ सेत हैं सुपेत हैं सु पुष्पदंत सो हैं सेत महामुक्ति कामिनी तैं नियरे।।
कारे मुनिसोव्रत हैं, कारे हैं सु नेमिनाथ बसै देवीदास के सु आठों जाम हियरे।
लाल पदमप्रभ जिनेस लाल वासुपूज बाकी बचे षोडस जिनेश्वर सो पियरे।।७।।

(२) सप्तव्यसन-वर्णन

दोहरा

दूत मास मद वेसुवा अरु आखेट कुधाम।
चोरी परजुवती रमन सात विसन के नाम।।१।।

गंगोदक छन्द

जुवा थैं नहीं पाप हैं और दीरघ सवै पाप हैं ते जुवा मैं बसे हैं।
सही सात अघ कौ जुवा मूल है सो सकल गुन हते ते जुवा मैं नसे हैं।।
यही दूत खेलैं सवै पंडवन देस हारे महा सो अवेरा परे हैं।
सधन पाप के भर सु ये मैं वखानैं सु ते पाप लोगनि खिलौना करे हैं।।२।।

भखे मांस जिन्हि जीभ के स्वाद काजै सु जे मूढ पापी चले नर्क जै हैं।
नहीं सुख है लेस किंचक जहां घोर संकट महाकष्ट करिकै सहै हैं।।
पछारे सु बकुरा इदै भिम्मनै मांसके पाप ते देह दुर्गति धरे हैं।
सघन पाप के भर सु ये मैं बखानैं सु ते पाप लोगनि खिलौना करे हैं।।३।।

सुरा पानि पीकैं छकैं मूड पापी रहे बेखवरि वे प्रजादा भए हैं।
नहीं जे सुपुत्री लखैं माँ सहोदरि कहैं वाइली वात दुर्गति गए हैं।।
यही सो सुरापानि के पाप तैं वंस जादौं सवै द्वारिका मैं जरे हैं।
सघन पाप के भर सु ये मैं बखानैं सु ते पाप लोगनि खिलौना करे हैं।।४।।

विषैवंत जन के हरै धर्म कौ जे रहें वेसुवा सौं व्रथा जन्म खौवें।
सवै विघन कौ ग्रह सु है वेसुवा वेसवा के रसी जे कुधी नीच होवैं।।
विषै लालची जे रमैं वेसुवा सौं महापाप बूडैं नरक औतरे हैं।
सघन पाप के भर सु ये मैं बखानैं सु ते पाप लोगनि खिलौना करे हैं।।५।।

रहे वेसुवा सौं सही चारुदत्त सेठि अघ सौं असर्फी सवै खोइ दीनी।
रही हात कौडी नहीं खर्च कौं वेसुवाला गए काम की दिष्टि कीनी।।
उठै ले बिना दाम दै छांव छोई विषै पाप तै तिन्हि महा दुख भरे हैं।
सघन पाप के भर सु ये मैं बखानैं सु ते पाप लोगनि खिलौना करे हैं।।६।।

करैं पाप जे पारधी है भए रूप राचै नहीं प्रान जीवनि सतावैं।
सु हैं दुष्ट पापी अखेटी सही जीभ के लंपटी जे महादुख पावैं।।

नहीं जीव के घात तैं पाप है और आगम विषैं जे ततछन धरे हैं।
सघन पाप के भर सु ये मैं बखानैं सु ते पाप लोगनि खिलौना करे हैं।।७।।

भए लोक की दर्व मूसिवे कौं सु ते चोर चोरैं सबै वस्तु प्यारी।
करैं जो महात्रास पावैं धनी जे मरैं जाइ नर्कै परे दुक्खभारी।।
गये सुभ्र सिवभूत चोरी विसन तैं परैं जाइ कै दुक्ख के पाथरे हैं।
सघन पाप के भर सु ये मैं बखानैं सुते पाप लोगनि खिलौना करे हैं।।८।।

महापाप की मूरि नारी पराई पगै जे समैं एक के सुक्ख काजैं।
रमैं मानि आनंद सौं जोग दैकैं कुधी दुर्गति जे नहीं नैकु लाजैं।।
यही और की नारि के पाप पै नासि रावन गयो राजु नर्कै परे हैं।
सघन पाप के भर सु ये मैं बखानैं सु ते पाप लोगनि खिलौना करे हैं।।९।।

करन तीनि ठानैं सु मद आठ आनैं जुरा जोग सौं पंच इंद्रिनि लगे हैं।
कहैं चारि विकथा सात विष्न सेवैं कषायैं सदाचार ही सौं पगे हैं।।
मिलैं पंच मिथ्यात ए कर्म छत्तीस करे बंध तिन्हि ते निगोदै परे हैं।
सघन पाप के भर सु ये मैं बखानैं सुं ते पाप लोगनि खिलौना करै हैं।।१०।।

दोहा

सेवत सात कुविष्न ये परत दुर्गते जीव।
जो इन्हि पापनि तैं रहित सो सिवरूप सदीव।।११।।

(३) दसधा सम्यक्त्व

जे विरक्त भव-भोग तैं सिवआसक भवि कोई।
तिनि कौ द्रग दस विधि कह्यौ जिन आगम लखि सोई।।१।।

छप्पइ

आज्ञा प्रथम सुभाव दुतिय मारग सुखदाइक।
त्रितिय नाम उपदेस सूत्र चौथो बुध लाइक।।
वीर्जभाव पंचमौ षष्ट संछेप निज्जइ।
सप्तम विधि विस्तार अर्थ अष्ट गुन लिज्जइ।।
परमावगाढ़ नवमौ कथन अरु अवगाढ़ विचार चित।
यहु भेद भिन्न दश भाँति कहि समकित हित नित सुनहु मित।।२।।

दोहरा

जिन सासन भाषित करै बानी चित सरधान।
आज्ञा समकित भाव सो जानौं बुध परवान।।३।।

दरसन ज्ञान चरित जुत परम सुद्ध सुख होई।
बरतै नित निज पंथ मैं मारग समकित सोई।।४।।

चौपही

सुनि करि गुर उपदेसै सोई अविचल मगन जासु मैं होई।
करि सरधा सु एक चित गहिये सो उपदेश समकिती कहिये।।५।।

सोरठा

सुनि सुबानि सिद्धंत करि सरधा निहचल मगहि।
सूत्र नाम सो संत समकित विबुध प्रमान कहि।।६।।

गीतिका छंद

गहि पंचपद पैंतीस अछिर पंचपरमेष्टी धरै।
इन्ह आदि और जिनेस भाषित जाप जप सुमिरन करै।।
अपि थिर अटल करि धरि विमल गुन हर्षि-हर्षि हियैं भिया।
इहिं भांति नाम विसेष करि सो वीर्ज गुन समकित जिया।।७।।

सवैया तेईसा

देव नहीं अरिहंत समान नहीं गुर श्रीनिरगंथ सरीके।
जीव दया जुत तैं ध्रुव धर्म नहीं पुनि और प्रकार सुधीके।।
ए विधि तीनि अमोलक रत्न धरै थिरता करि अंतरहीके।
सम्यक सो कहिये सनछेप सु जा बिनु जे जग मैं जन फीके।।८।।

अरिल्ल

नै अनेक सुविसेक एक चिद्रूप गुनि।
बहु विस्तार त्रिलोक जासु बहु रूप सुनि।।
सदा करै सरधा सु रहै निज पंथ मैं।
सो समकित विस्तार कह्यौ जिनग्रंथ मैं।।९।।

सवैया तेईसा

जीव अजीव सु आश्रव बंधन संवर-निर्जर मोख प्रमानैं।
पाप मिलै अरु पुन्य दुहू जब ए नव भेद पदारथ जानैं।।
विंजन सुद्ध-असुद्ध अनेक सुभेद करै सरधा उर आनैं।
सो दुख दाह सिरावन नाम सु सम्यक अर्थ जिनेस बखानैं।।१०।।

अरिल्ल

परम समरसी भाव परम रस रीति है।
सुद्ध भाव अरु सुद्ध सकल वर नीति है।।
इह विधि करि सरधा सु सुद्ध पद जानियै।
सो समकित परमावगाढ वखानियैं[1]।।११।।

कवित्त छंद

उत्तिम क्रिया दान पुनि उत्तिम व्रत उत्तिम उत्तिम मतिचित्त।
उत्तिम भक्ति छेत्र श्रुत उत्तिम उत्तिम जप सुमिरन अनमित्त।।
उत्तिम ध्यान धैन तप तीरथ उत्तिम मन अस्तुति वरनित्त।
उत्तिम भाव-ठाव सब उत्तिम सो अवगाढ़ नाम समकित्त।।१२।।

दोहरा

यह समकित महिमा कथन गन फनपति थक होत।
सो दशविधि संछेप करि वरन्यौं धरम उदोत।।१३।।

(४) द्वादशानुभावना[2]

बंदौ सिद्ध विभाव विनु परमानंद विलास।
सदा सुद्ध उपयोग मय रहित चतुर्गति वास।।१।।
चतुर्गती संसार मैं जे जिय परे कुफंद।
द्वादसानुप्रेक्ष्या कहौं तिहि कारन सुख कंद।।२।।
अथिर भिया जग जीवनौं नीरव जू जा जेम।
बिजुली सम देखौ प्रगट जोवन तन धन हेम।।३।।
यही निरन्तर जानि बुध तजि अनित्य स्वयमेव।
अनित्यानुप्रेक्ष्या सु यह भाषी गनधर देव।।४।।
असरन जीव जगत्र सब सरनु न कोई जीव।
आपु-आपु कों सरन निज देखौ आपु सदीव।।५।।

---

१. मूल प्रति परवानियै
२. रचना काल- दुतिय कुवार सुदि १२ सं. १८१४
ग्राम दुगौडे मध्यदिसाल १८सौ सुफिर धरौ चतुर्दस और।
दुतिय कुंवार सुदिद्वादसी गुरुवासर सुख ठौर।।

दरसन ज्ञान चरित्रमय लखौ आपु करि आपु।
और सरन जिय कौं नहीं सब परिहरौ खिलापु।।६।।

तीनि लोक महि सरनु यह दूजौ सरन न और।
देखौ एक स्वरूप निज तीनि लोक सिर मौर।।७।।

पंच प्रकार भ्रम्यौ जगत बंधन बंध्यौ सु पंच।
प्रगट लखे बिनु आतमा सुख न कहू इक रंच।।८।।

एक सुद्ध निज गुन सदन सहित दूसरो नांहि।
मिथ्यामद मोहित भयो भ्रम्यौ जिया जग मांहि।।९।।

जब सम्यक दरसन लहैं सब परिहरै विभाउ।
एक स्वरूप सु होइगौ मुक्तिपुरी कौ राउ।।१०।।

अन्य सरीरादिक सबै अन्य आतमाराम।
अन्य वस्तु तजि कीजिये आपु विषै विसराम।।११।।

जैसे पावक छांडि कैं ईंधनु दहै न कोइ।
जीव विना जिम कर्म कौ हनता और न होइ।।१२।।

सात धातु मय तन सुयहु क्रम कुल असुचि निवास।
जामै तुम कह रचि रहे निज गुन करौ प्रकास।।१३।।

देखौ तन अपवित्र अति विमल चिदानंद रूप।
पुदगल कौ परसंग तजि परसौ तत्व अनूप।।१४।।

जो अपनौ परिनाम तजि पर परनति मैं लीन।
सो आश्रव जानौं सुधी अहंबुद्धि करि कीन।।१५।।

आश्रव यह संसार कौ भार बड़ा वन बंस।
सो परिनाम विसारि निज निरखौ निरमल हंस।।१६।।

जो पहिचानै आप पर त्यागै पर परिनाम।
सो संवर जिनवर कह्यौ जाकौं सदा सलाम।।१७।।

जबै जीव संवर करै धरै मुकतिपुर पंथ।
तब विभाव सब परिहरै धरि पदवी निरगंथ।।१८।।

सहज रूप आनंदमय सदा सुद्ध निकलंक।
कंचन सम सु अलिप्त नित कर्म सुभासुभ पंक।।१९।।

खोजु करौ निज घट विषैं वही न दूजौ ठाम।
जिय जाके आधार तूँ सार आतमाराम।।२०।।

सो दुरलभ संसार मैं परम अपूरव लाभु।
ताकौं तूं जिन दिष्टि सौ निरखु विवर्जित गाभु।।२१।।

वारंबार त्रिसुद्धि करि धरौ आतमाध्यान।
राग दोष दौ परिहरौ जौ चाहत निरवान।।२२।।

रागदिक के परिहरै देखौ निरमल देव।
एक स्वरूप सु जगमगै निरविकलप स्वयमेव।।२३।।

जो जगु देखे देखु तिहि देखनहार न अन्य।
सो स्वरूप समदिष्टि सौं सहज होइ उतपन्य।।२४।।

को देखै किहि देखिये दुविधा कहूँ न रंच।
सदा अखंडित सुथिर पद रहित सकल परपंच।।२५।।

सून्यौ सो सून्यौं सही सूनी दसा न जीव।
सुन्य सुभाव सु परिहरौ सुनि जिन वचन सदीव।।२६।।

परमानंद मई सदा ज्ञान चरन द्रग लीक।
सो निहचलपद आतमा बसै हृदै तहतीक।।२७।।

सुन्य सुभावहि परिनवै सो परभाव निदान।
चिदानंद सूनौ नहीं जिनवर वचन प्रमान।।२८।।

पावत परमातम सु पद छूटै सकल उपाधि।
टूटै तांतौ जगत सौं लूटे सुगुन समाधि।।२९।।

केवलज्ञान स्वरूपमय दिष्टा परम सुछंद।
प्रगटै निज अनुभूति जुत पर-परनति करि मंद।।३०।।

मनवचकाया सौं नहीं समरस भाव समेत।
अप्पा आपु विचार जिय यह तेरौं निज हेत।।३१।।

जो जुग जानैं जानु जिहि वही जानिवे जोग।
और न कोई दूसरौ सहित संत उपयोग।।३२।।

सोहं सोहं सो सवै जिया न दूजौ भेद।
बारंबार सु चिंतवत मिटै कर्म क्रत खेद।।३३।।

निज पर परख सुधर्म ध्रुव सुद्ध परिनमन रूप।
निज-निज गुन अलोकनौ सिव कारन चिद्रूप।।३४।।

भैया तूं भ्रम-भूलि मति लगै और के साथ।
अपनौ निज घट देखु तह तीनि लोक कौ नाथ।।३५।।

हूंठ हाथ तन देहुरौ जामैं निरमल देव।
मूरिख भयो फिरै कहां करत और की सेव।।३६।।

जानत सब जिहि जानु तूं और न जाननहार।
धंधै परे जगत्र जन स्वपर विवेख विसार।।३७।।

जो जानैं सो जानियैं ध्यान धरिये जास।
स्वपर भेद परगट जुदै तीनि लोक तिहि पास।।३८।।

बांधे विविधि प्रकार जे अध्यावसा करि कर्म।
कारन जाकौं निर्जरा सो श्री जिनवर धर्म।।३९।।

रहित सुभासुभ परिनमन विमल सुचेतन भाव।
परम धुरंधर धरम सो सुद्ध वस्तु दरसाव।।४०।।

जजन भजन पर परिहरौ हृदै जगै जव ज्ञान।
कर्म-धूलि लागै नहीं यहै पंथ निरवान।।४१।।

सम्यकदिष्टि विना सुधी निज गुन लख्यौ न जाइ।
जाके ध्यावत परम पद महिमा कही न जाइ।।४२।।

व्रत तप नियमादिक सहित स्वपर विवर्जित भेद।
सो मूरिख मिथ्यामती करै अकारथ खेद।।४३।।

जो निरमल पद पारखी धारी व्रत तप सील।
सो पहूँचे निरवान पद काटि कर्म वसु कील।।४४।।

ए द्वादस विधि भावना भवि-जीवनि के काज।
मूल पराक्रत देखि कैं भाषा करी अवाज।।४५।।

जो त्रिसुद्ध करि चिंतवै अगम अगोचर बात।
जाकौं जग तरिवौ महासुगम समीप दिखात।।४६।।

देवी अति मति मंद पुनि कहिवे कौं असमर्थ।
बुद्धिवंत धरि लीजियो जह अनर्थ करि अर्थ।।४७।।

गुरु मुख ग्रंथ सुन्यौं नहीं मुन्यौं जथावत आप।
निज पर मनु समझावनौं निरविकल यह जाप।।४८।।

(५) शीलांग चतुर्दशी

दोहा

सील सहित बंदौं सु सिव गए कर्म वध छोरि।
कहौं भेद सीलांग के सहस अठारह जोरि।।१।।

चौपहीछन्द

देवी प्रथम दूसरैं नरनी पुनि तीजै तिरजंचनि वरनी।
चौथे लिखी चतेवर नारी इहि परकार विकलपन चारी।।२।।

मन-वच-जोग विषैं पुनि काया क्रत कारित अनमोद बिछाया।
तिगुनि तीनि पर नव गनि लीजे जुवति चारि विधि नव पर दीजे।।३।।

ये छत्तीस भेद विस्तरिये एक-एक इंद्रिनि पर धरिये।
छत्तिस पंचै करि सु बहोरौ गनि एकुसैअसी सब जोरौ।।४।।

पुनि कंदर्प भेद दस जानौं ते वरनौं करि ठीक ठिकानौं।
संसकार तन प्रथम सुदीरा दूजैं पुनि सिंगार सरीरा।।५।।

तीजै गनि सराग सेवंता क्रीडा हासि चतुर्थम गंता।
पुनि संसर्ग पंचमै कामा छटैं विषै संकल्पन वामा।।६।।

तन निरीछनौ सप्तम भेदा तन मंडन अष्टमै उभेदा।
नमैं भोग पूरव सुमिरंता मन चिंता दसमै वरतंता।।७।।

असीएकुसै भेद सु वरनैं ते इन्हि दस थोकनि पर धरनैं।
इहि परकार जोर सब देखौ भेद अठारहसै गनि लेखौ।।८।।

लिंगविहित पुनि दस विधिकेरे वरनौं सुनो सुप्रीतम मेरे।
चिंता प्रथम प्रवर्तत भारी दूजैं दरसन वांछा कारी।।९।।

पुनि तीजैं दीरघ उस्वासा चौथें कामज्वर दुरवासा।
अरु पंचमै दहै पुनि देही भोजन छटैं रुचै न सु तेही।।१०।।

होइ प्रपन्न मूरछा सातैं आठैं कामअंध मद मातैं।
नमैं प्रान संदेह समूझौ मोचन सुक्र दसौं पुनि बूझौ।।११।।

धरि इनि दस थोकनि पर प्यारे, भेद अठारहसै गनि न्यारे।
ए सव सहस अठारह जोरैं जामैं सीलवंत सुन लोरैं।।१२।।

इह विधि काम कलंक सु टालैं जे नरसील अखंडित पालैं।
जग महि सील सित जे प्रानी सो परतच्छ सुधी सरधानी।।१३।।

दोहरा

सील सहित सरवंग सुख सील रहित दुख भौन।
देवियदास सुसील कौ क्यौं न करौ चितौन।।१४।।

कहे भाखि सीलांग के सहस अठारह भेद।
ते पालै तिन्हि के हृदै सिव-सुख सरस उमेद।।१५।।

(६) धरम-पच्चीसी

दोहरा

पंच परमगुरु सुमरि कैं, सरसुति लागौं पाइ।
कहौं धरम पच्चीसिका, भाषा विविधि बनाइ।।१।।

ढाल वीर जिनिंद की फिर्यो भ्रमत संसार मैं जी।
मिथ्या विषय वढ़ाई लबधि बिना जिनधर्म की जी।।२।।

धारिय बहुत परजाइ रे भाई तूं यह धर्मु विचार।
तजहु सकल भ्रम जार रे भाई।। तूं तजहु.।।३।।

दुख चारों गति के सहे जी चौरासीलख मांहि।
कर्म तनै फल भोग ए जी धर्म विचार्यौ नांहि रे भाई।। तूं तजहु.।।४।।

नरगति दुर्लभ जानियैजी दुर्लभ देह निरोइ।
कुल-कमला दुरलभ मिली जी, धर्म बिना दई खोइ रे भाई।। तूं तजहु.।।५।।

धर्म-अर्थ-कामा बिना जी, नर पशुवत दुख धाम।
तामें धर्म प्रधान है जी, जा बिनु अरथ न काम रे भाई।। तूं तजहु.।।६।।

धर्म प्रथम ही आदरौ जी, विघन हरन सुभ रिद्धि।
जिहि ग्रह संपत्ति आवही जी, इछइ सुभगु न रिद्धि रे भाई।। तूं तजहु.।।७।।

गुन बिनु जीव सदा भ्रम्यौ जी, जनम-जरा-म्रत थान।
निश्चय करि सु नही कियो जी जै नर साइनि पान रे भाई।। तूं तजहु.।।८।।

तजति मूढ जिनधर्म कौं, जी सेवत विषय कसाइ।
सो अमरतरस त्यागि कैं जी, पीवत विष दुखदाइ रे भाई।। तूं तजहु.।।९।।
मिथ्याती धर्महि तजे जी, पोषत विषय-विकार।
कलपव्रछ जिम काटि कैं जी, आक लगावत द्वार रे भाई।। तूं तजहु.।।१०।।
या नरगति वर जानियैं जी छोडि विषय रचिधर्म।
इन्द्रादिक सुख भोग कैं जी लहत पूज्य पद पर्म रे भाई।। तूं तजहु.।।११।।
ज्यों निसि ससि बिनु हूँ नहै जी, नारि पुरिष बिनु तेम।
जैसे गजदंतनि बिना जी, धर्म बिना जन जे मरे रे भाई।। तूं तजहु.।।१२।।
ज्यौं दल में सोभा सबै जी, रथ-गज-वाज अनूप।
जैसे नरगति जानियैं जी, धर्म रहित बिनु भूप रे भाई।। तूं तजहु.।।१३।।
जैसे फूल विवासु कौ जी जल बिनु सरवर जेह।
तैसे ग्रह संपति बिना जी, धर्म बिना नर देह रे भाई।। तूं तजहु.।।१४।।
आराधन जिनदेव कौं जी, सेवत गुर निरगंथ।
धर्म-दान-सनमान सौं जी जे नर सफल सुपंथ रे भाई।। तूं तजहु.।।१५।।
कमला सील चला चलौ जी रूप जरा तन रोग।
प्रीतम सुत सब जानियै जी नदिय-नाव संजोग रे भाई।। तूं तजहु.।।१६।।
यह विचार मन आदरौ जी सुद्धभाव करि धर्म।
जहा भाव तहा धर्म है जी, भुंजै विवगति कर्म रे भाई।। तूं तजहु.।।१७।।
जे नर मूरख-बुद्धि हैं जी निंदत धर्म अपार।
विषय-स्वाद के लोलुपी जी, थावर गति मरि धार रे भाई।। तूं तजहु.।।१८।।
रुद्रभाव बरतैं सदा जी क्रोधादिक हंकार।
निरदै पर हियै बसैं जी नर्क गमन सहकार रे भाई।। तूं तजहु.।।१९।।
बुद्धिहीन मन आलसी जी लोभ सहि परपंच।
मानी गुन गोपै गुनी जी जे मरि हौहि त्रिजंच रे भाई।। तूं तजहु.।।२०।।
सरल चित्त संजुत दयाजी काज अकाज विचार।
माया बिनु गुन जुक्त है जी, पावत नर अवतार रे भाई।। तूं तजहु.।।२१।।
जे सुधर्म धन के रुची जी दानवंत जिन सेव।
विषय त्यागि व्रत धारिकैं जी, तप करि हौंहि सुदेव रे भाई।। तूं तजहु.।।२२।।

सुनि सुधर्म तजि भोग कौं जी उत्तिम अंग प्रधान।
उत्तिम ध्यानी महाव्रती जी पावत पद निरवान रे भाई।। तूं तजहु.।।२३।।

सिवकारन जिनधर्म है जी और दया विनु भर्म।
यही जानि निज आचरौ जी सुद्धभाव मम पर्म रे भाई।। तूं तजहु.।।२४।।

निरमल दरसन भक्ति है जी व्रत मंडित दस दोइ।
मरन करैं सल्लेखना जी इच्छक सिवपद सोइ रे भाई।। तूं तजहु.।।२५।।

सकल सुख इक धर्म तैं जी पाप करत दुख दोषु।
यह बालकु अबला कहै जी इष्ट लगै सोइ पोखु रे भाई।। तूं तजहु.।।२६।।

देवी मन कम्मोदनी जी ससिवत ग्रंथ बखान।
धर्म कोस सुखदाइकी जी पढि हैं संत सुजान रे भाई।। तूं तजहु.।।२७।।

(७) पंचपद पच्चीसी

दोहरा

पंच परमगुरु की कहौं महिमा सब सुख कंद।
निज सुबुद्धि परगासि करि वरनौं छप्पय छंद।।१।।

छप्पयछंद

नमौं आदि-आदि अरिहंत सकल संतनि सुख दाइक।
स्वयं सिद्ध जगदीस नमौं त्रिभुअनपति नाइक।।

आचारज-उवझाइ परमगुर जगत सहाई।
साध-पुरिष के चरन नमौं भय-भंजन भाई।।

ये जाम-जाम जपिये सदा थिर संतोस सुमन धरन।
ये पंच परमगुर जगत महि बहु प्रकार मंगल करन।।२।।

सिवनाइक सिवईस षष्टचालीस कलित गुन।
रागदोष अरि मोह जीति जिन्हि जेर करे पुन।।

उरह सुद्धउपयोग देह सुंदर छवि छाजत।
नष्ट अष्ट दस दोस अष्ट प्रतिहार्ज विराजत।।

केवल सुजुक्त दृग ग्यानमय चारि घातिया छय करन।
श्री परमदेव इव धरहुं बहु प्रकार मंगल करन।।३।।

जिन सम देव न और ठौर दीसत नंहि अदभुत।
नर सुर खग फन-इंद्र-विंद्र वंदित प्रकार नुत।।
सुमति सिद्धि दातार सुख खानि अखै पद।
मिथ्या भूभ्रत भस्म करन जिन सम सु वज्र गद।।
रतनाकर गुन गन ग्यान मय भवकलेस मल मद हरन।
नमि सुचरन कर जोरि जुग बहु प्रकार मंगल करन।।४।।

वंदत तसु चरनारविंद अति विबुध अनंदित।
चरन कमल चरचत सुकृत्य नर पाप निकंदित।।
तै अनेक जिनवानि एक नय करि पुनि मानिय।
आगम अरथ विचारि साध संतनि मन आनिय।।
परवान जासु जिहि विधि करिय उर सरधा मन वचन तन।
रसना सहस्त्र करि-करि कथत पारू न पावत सेसफन।।५।।

उदधि ज्ञान गंभीर मोह मद विषय विहंडित।
हाटक समगुन विमल सुद्ध जिय अखय अखंडित।।
केवल पद परगास भयो भव भीर विभंजन।
सकल तत्व वकतव्य देव ध्रुव परम निरंजन।।
मार्तंड बोध परगट अवय हरन तिमिर जन मन मरन।
चाहत सुयेम जिनदेव नुति बहु प्रकार मंगल करन।।६।।

रमनि मुक्ति वरकंत सकल संतनि कौं प्यारे।
भवन क्रपा गुन थान दान दाता हितकारे।।
लेत एक तसु नाम सबै कलि-कलुष विनासत।
चारू चित्त चैतन्य भिन्न निज परगुन भासत।।
हिय धरत सुरासुर त्रिजग पति परम भक्ति निस दिन सरन।
जै-जै जु देव अरिहंत जुव बहु प्रकार मंगल करन।।७।।

इय भव अस परलोक विविधि विधि हौ सुखदाता।
हाव-भाव करि नमौं दैंन सेवक जन साता।।
केलि करै सिव स्वर्ग पंथ सेवक जिनेश भवि।
सकल सिद्धि नव निद्धि-रिद्धि पावत अनेक छवि।।

मारग सुमुक्ति उपदेश दिय ध्यावत धुनि गनधर समन।
सो वीतराग सुख सार अति बहु प्रकार मंगल करन।।८।।

रच्छक मो उर होहु देव-देवनि के देवा।
भक्ति धरत उर हर्षि करत त्रिभुअन पति सेवा।।
लेत अभै पदसार सुद्ध करतूति विचारत।
हेय उपादि विकल्प त्यागि पुनि उर अवधारत।।
आतम सुभाव भेदत सरस सब असुद्ध करनी हरन।
परभिन्न परम पंडित भजत बहु प्रकार मंगल करन।।९।।

कीरति होत अपार एक जिननाम धरत चित।
पापपुंज परिहरत लेत अवतार भोग छित।।
तीरथ दान करै समान जौ जिन पुज्जत नर।
आनंद होत अपार सुक्ति पावत सुमुक्ति वर।।
ईश्वर सु होत त्रिभुअन तिलक संत पुरिष सेवत चरन।
सो भक्तिदेव अरिहंत की बहु प्रकार मंगल करन।।१०।।

सिखिरि लोक सिर सिद्ध सिला जह सिद्ध विराजैं।
थिय प्रमान नुति करौं अष्ट निर्मल गुन छाजैं।।
श्रीसुमुक्ति संजुक्त भुक्त सुखसार अतिंद्रिय।
समय सुद्व प्रनमौं सुताहि दातार परम थिय।।
बलवीर्ज ज्ञान दरसन विमल सब असुद्व करनी हरन।
उतपाद सिद्ध पुनि सहित ध्रुव बहु प्रकार मंगल करन।।११।।

हौ त्रिभुवन पति नाथ देव दातार परमधन।
लखत सुद्ध तुम ध्यान वीत विभ्रम विकार मन।।
सील सिंध सुखकंद दास मम हौं सुभक्त तुव।
दान देउ निज ज्ञान सरन आयो अनाथ हुव।।
सब काज सरत तुम अवधरत जीति कर्म भवदधि तरन।
जुत परम भक्ति उर धरि नमौं बहु प्रकार मंगल करन।।१२।।

पंचमगति राजत प्रमान पद देव निरंजन।
माया मोह विनासि रासि गुन गन भय भंजन।।

लाज काज बिनु वरन गंध रस फरस बीस किय।
इय असुद्ध परजाय हीन सिव सिद्ध परम जिय।।
करतूति क्रिया जन मन भरन रहित सुद्ध अव्वय अतन।
श्री परमसिद्धि दातार भवि बहु प्रकार मंगल करन।।१३।।

हियैं दिष्टि सम्यक्त ग्यान गुन ज्योति प्रकासी।
जग्यौ सुद्ध चरित्र सकल विपरीति विनासी।।
व्रत-तप-संजिम-जुक्त-मुक्त मारग विसरामी।
बलवीरज महिमा अनंत आरज परिनामी।।
चुत राग दोष निजगुन निलय आचारज पदवी धरन।
सो संत सहित छत्तीस गुन बहु प्रकार मंगल करन।।१४।।

सर्व संगं वर्जित विभाव परिनामन जाकैं।
राखे निज परिनाम आपुमहि आपु समाकैं।।
सुख समूह वेद्यौ निधान गुन समरस चखे।
इंद्रिय जनित विकल्प सुख दुखदाइक नखे।।
प्रगट्यौ सुबोध विभ्रम हरन सर्व सुद्ध पद आचरन।
सो होहु परम मुनिराज मुझ बहु प्रकार मंगल करन।।१५।।

दुद्धर ध्यान धरैं सुधीर तन-मन अडोल करि।
सहित परीसा घोर जीति रागादि मोह अरि।।
निसंदेह निरसंग सदा निर्भय विकार निर।
निरप्रमाद निरवाद साध निवसैं सुछंद गिर।।
संजुक्त संत पनवीस गुन परम दिगंबर सुद्ध गन।
निर्मल स्वरूप जुत होहु मुझ बहु प्रकार मंगल करन।।१६।।

तिन्हि कैं सम अरि मित्र एक कंचन कुधातु दुति।
दुख-सुख एक समान एक निंद्रा समान नुति।।
जेम ग्राम बस बास जेम ऊजर विछित्त नर।
जेम रंक जिम राउ जेम उपसर्ग रच्छ कर।।
जे पाप पुन्य सम जाति जग निजस्वरूप गुन आचरन।
प्रनमौं सु साध क्रम कमल जुग बहु प्रकार मंगल करन।।१७।।

तिन्हि कैं घट प्रगट्यौ समूह निज ज्ञान दिवाकर।
गुनगरिष्ट गंभीर परम उतकृष्ट सुखाकर।।

निरविकार परिनाम धाम निग्रन करन कर।
जीवन मरन प्रमान एक निज ज्ञान प्रानधर।।
तजि भर्म धर्म ध्रुव आचरत निर्मल पद परसत चरन।
विश्राम सकल सुख धाम धन बहु प्रकार मंगल करन।।१८।।

जीवादिक नवतत्व वेदि मुख पाठ करत धुनि।
निज स्वरूप आराधि साधि मारग सुमुक्ति मुनि।।
दमन पंच इंद्रिय सुमार छट्टम विकार मन।
त्रस थावर रखवार साथ भंडार अखै धन।।
संजुक्त भेद द्वादश सु तप बाहिज आभ्यिंतर धरन।
गुन अष्टवीस मंडित सुगुर बहु प्रकार मंगल करन।।१९।।

पंच महाव्रत धरन तरन तारन निवास बन।
पाप पुंज उदगरन करन मन हन पुनीत जन।।
सप्ततत्व उच्चरन मरन जन मन सुहरन पुनि।
मोह भुजंगम डरन धरम अनुसार परम चुनि।।
विधि चारि जीव रक्ष्या करैं सेवक सुखदातार जन।
तसु नाम जपत वसु जाम मम बहु प्रकार मंगल करन।।२०।।

यहिय पंच परमेष्टि करम गिरि दलन वज्रधर।
यहिय पंच परमेष्टि स्वर्ग सिवपुर प्रवेस कर।।
मोह विषम भव-कूप पर्‍यौ जिय बहु दुख पावहि।
कर गहि लेत उवारि सकल भव भ्रमहि भगावहि।।
यह मंत्र राज त्रैलोक्य महि सज्जीवन तारन तरन।
त्रैकाल जाम भनि जोरि जुग बहु प्रकार मंगल करन।।२१।।

पंच परम गुर मंत्र सुद्ध पद करि प्रमान धरि।
गनि अछिर पन तीस धीस साधै समूह भरि।।
अतुल अनादि अनंत अकृत अविचल प्रताप तसु।
तारन तरन त्रिलोक संत नासन सुकर्म वसु।।
इहि विधि प्रताप गनधर कथित भव्य पुरिष तारन तरन।
त्रैकाल जाम-भनि जोरि कर बहु प्रकार मंगल करन।।२२।।

जो पूरव क्रत कर्म उदै सुभ-असुभ देत रस।
भुंजत भोग उदास हर्ष पुनि नहि विषाद वस।।
जागत पुनि बहिरंत सैंन सोवंत सुपन करि।
ग्राम ग्रेह अस्थान मंत्र सुनत जत नैंकु भरि।।
जे पुरिष काल पंचम विषै पंचपरम पद मन धरन।
त्रैकाल जाम भनि जोरि कर बहु प्रकार मंगल करन।।२३।।

सागर अरु संग्राम सिंघ अरु नाग माग पुनि।
पावक अरु दुरव्याधि रोग बंधन अपार गुनि।।
चुगल चोर चंडार जगत जे ते उपाइ कर।
भूत पिसाच अनेक अवर बहु भांति लच्छहर।।
इन्हि आदि अवर भयहरन कहु पंच परम पद मन धरन।
त्रैकाल जाम भनि जोरि कर बहु प्रकार मंगल करन।।२४।।

पंच-परमपद-मंत्र अखिल अछिर तीसपन।
करत ध्यान धरि धीर सुद्ध मन-वच लगाइ तन।।
श्रावग सरधावंत दमन इंद्रिय सु पंच भर।
लच्छवार जपि मंत्र लच्छ परिमल सु पहुप धर।।
श्री जिनपद अर्चित भ्रम रहित तीर्थंकर पदवी धरन।
त्रैकाल-जाम-भनि जोरि कर बहु प्रकार मंगल करन।।२५।।

करत जीव बहु घात झूठ बोलत प्रमान हति।
परधन अरू परनारि करत बहु नेह मानि रति।।
नाना रत्त विभूति जानि जग महि अनेक विधि।
देखत करत विलाप होहि मम ग्रेह सर्व निधि।।
इहि भाँति आउ पूरी करत अंतकाल जपि मंत्रवर।
हनिकै कुकर्म सुभकर्म फल स्वर्गपुरी पावत सुनर।।२६।।

दोहरा

पंचपरम गुर की कहत महिमा मिलै न अंत।
जथा जुगति पच्चीसका कही जाम सुत संत।।२७।।

(८) पुकार-पच्चीसी

दोहरा

जे यह भव संसार मैं भुगतैं दुक्ख अपार।
सो पुकार पच्चीसका कहौं कवित्त इक ढार।।१।।

सवैया तेईसा

श्रीजिनराज गरीबनवाज सुधारन काज सबै सुखदाई।
दीनदयाल बड़े प्रतिपाल दयागुनमाल सदा सरनाई।।
दुर्गति टारन पाप निवारन हो भवतारन कौं भविताई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।२।।

जन्म-जरा-मरनौं तिरदोष लगे हमकौं प्रभु काल अनाई।
तासु विनासन कौं तुम नाम सुन्यौं हम वैद महासुखदाई।।
सो निरदोष निवारन कौं तुम्हरे पग सेवत हौं चितु लाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।३।।

जौ इक-दो भव कौ दुख होहि तौ राखि रहौं मन को समुझाई।
यों चिरकाल कुहाल भयो अबलौं कहुं अंतु पर्‌यौ न दिखाई।।
मो पर या जग मांहि कलेस परयौ दुख घोर सह्यौ नहिं जाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।४।।

देखि दुखी पर होत दयाल सु है इक ग्रामपती सिरदाई।
हौ तुम नाथ त्रिलोकपती तुम सौं हम अर्ज करी सिरनाई।।
मो दुख दूरि करौ भव के वसु कर्मनि तैं प्रभु लेउ छुड़ाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।५।।

कर्म बडे रिपु हैं हमरे हमरी पुन हीन दसा करि पाई।
दुक्ख अनंत दियो हमकौं हरि भाँतिनि भाँति निषाद लगाई।।
मैं इन वैरनि के वस होकरि कैं भटक्यौ सु कह्यौ नहिं जाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।६।।

मैं इस ही भवकानन मैं भटक्यौ चिरकाल अनादि गमाई।
किंचक ही तिल से सुख कौं बहु भाँति उपाइ कर्‌यौ ललचाई।।
चारि गतै जिहि मैं भटक्यौ जह मेरु समान महादुख पाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।७।।

नित्यनिगोद अनादि रह्यौ त्रस के पद की तह दुल्लभताई।
जौ क्रम सौं निकस्यौ वह तैं जब इत्यणिगोद रह्यौ चिरछाई।।
सूछम-बादर नामु भयो जब ही जिहि भाँति धरी परजाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।८।।

जाई मही जल तेज भयो पुनि मारुत होइ भयो तरु काई।
देह अघात धरी जब सूछम घातत वादर दीरघताई।।
एक उदैं परतेक भयो सहधारण एक निगोद बसाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।९।।

इंद्रिय एक रह्यौ चिरु मैं कब लब्धि[१] उदै छय ऊप समाई।
बे त्रक चारि धरी जब इंद्रिय देह उदै विकलत्रक आई।।
पंच सु आदिक दो परजंत धरैं इनि इंद्रिनि के त्रस काई।।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।१०।।

काइ धरी पशु की बहु बार भई जल जंतुनि की परजाई।
हो थल मांहि अगास रह्यौ चर होइ पखेरुव पंख लगाई।।
जो दुख मोहि भये पसु मैं तिन्हि कौं वरनै कहुँ पारु न पाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।११।।

नर्क मंझार लियो अवतार पर्‌यौ दुखभार न कोई सहाई।
ते तिल से सुख काज करे अघ सों सुदि नर्कनि में सब आई।।
ता तिय कैं इसकी पुतरी हमरैं हियरा करि लाल भिटाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की बिनती सुनियैं जिनराई।।१२।।

लाल प्रभा सु मही जह की अरु सर्कर रेत उन्हार बताई।
पंकप्रभा सुधु आवत है तमसी सुप्रभा सु महातम काई।।
जोजन लाखक कौ इसपिंड जहा इक ही छिन मैं गर जाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।१३।।

ए अघ सात महादुख कारन मैं विसयारस के फल पाई।
काटत बाँधत हैं सबही निरदै सरिता महि देत बहाई।।
देव अदेव-कुवार जहां सब पूरव बैरु बतावत जाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।१४।।

---
१. मूल प्रति ''लभ्धि''

जो नर देह मिली क्रम सौं करि गर्भ कुवासु महादुखदाई।
जे नवमास कलेस सहे मल मुत्र अहार महातप ताई।।
ए दुख देखि जबै निकस्यौ पुनि रोवत बालपनै दुखपाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियै जिनराई।।१५।।

जोवन मैं तन रोग भयो कबहुं विरहा वस व्याकुलताई।
माणि विषै रस भोग चह्यौ उमत्त रह्यौ सुख मानत भाई।।
आइ गयो छिन मैं विरधापन या नरभौ इहि भांति गमाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियै जिनराई।।१६।।

देवभयो सुरलोक विषै जब मोहि रह्यौ परियां उर लाई।
पाई विभूति बड़ी सुर की पर संपति देखत झूरत जाई।।
माल जबै मुरझया तब ही थिति पूरन जानत ही विललाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियै जिनराई।।१७।।

ए दुख मैं भुगते भव के जिन्हि कौं वरनैं कहुं पार न पाई।
काल अनादिन आदि भई तुम मैं दुख भाजन हौं अधमाई।।
सो तुम जानत हौ सबही जबही जिहि भाँति धरी परजाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।१८।।

कर्म अकाज कियो हमरौ हमकौं चिरकाल भए दुखदाई।
मैं न बिगार करे इनि कौ बिनु कारन पाइ भए अरि आई।।
मात-पिता तुम हौ जन के तुम छांडि फिरादि कहौ कह जाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।१९।।

सो तुम्ह सौं कह दुक्ख कहौ प्रभु जानत हौ तुम राइयराई।
मैं इन्हि कौं परसंग कियौ दिनहूंदिन आवत मोहि बुराई।।
ग्यान महानिधि लूट लियो इनि रंकु कियो हरिभाँति हराई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।२०।।

मैं प्रभ एक स्वरूप सही सब या इन्हि दुष्टनि की कुटिलाई।
पाप सु पुण्य दुहू निज मारग मैं हमकौ इन्हि पासि लगाई।।
मोहि थकाइ दियो जग मैं विरहानल दाह दहै न बुझाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।२१।।

या विनती सुनि सेवक की निज मारग सो प्रभु देउ लगाई।
हौं तुम दास रहौं तुम्हरे संग लाज करौ सरनागत आई।।

मैं करि आस उदास भयो तुम्हरी गुनमाल बना उर लाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।२२।।

देर[१] करो मति श्रीकरुनानिधि जू पति राखनहार निकाई।
जोग जुरे क्रम सौं प्रभ जू यह न्याइ हजूर भई तुम आई।।
आनि रह्यौ सरनागत हौ तुम्हरी सुनिकै तिहुलोक बड़ाई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।२३।।

मैं प्रभु जू तुम्हरी सम कौ इनि अंतरु पारि करी दुसराई।
न्याइन अंत कटै हमरी न मिलै हमकौं तुम्ह सी ठकुराई।।
संतनि राखि करौ अपनै ढिग दुष्टनि देउ निकारि वराई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।२४।।

दुष्टनि की रस-रंगति मैं हमकौ कछु जानि परी न निकाई।
सेवक साहिब की दुविधा न रहै प्रभ जू करि लेउ भलाई।।
फेरि नमैं सु करौ अरजी जसु जाहिर जानि परै जगताई।
बेरहि बेर पुकारत हौं जन की विनती सुनियैं जिनराई।।२५।।

या विनती प्रभ के सरनागत जे नर चित्तु लगाइ करैंगे।
जे जग मैं उपराज करे अघ एक समै भरि मैं सुहरेंगे।।
जे गति नीच निवारि सदा अवतार सुधी सुरलोक धरेंगे।
देवियदास कहै क्रम सौं पुनि ते भवसागर पार तरैंगे।।२६।।

दोहरा

प्रभ तुम दीनानाथ हौ मैं अनाथ दुख कंद।
सुनि सेवक की वीनती हरौ जगत दुख फंद।।२७।।

(९) वीतराग-पच्चीसी

दोहरा

मन वच तन करि कैं नमौं सुद्ध आतमाराम।
वरनौं चेतनि दर्व के त्रिविधि रूप परिनाम।।

सवैया इकतीसा

सुभासुभ सुद्ध या बखानौं तीनि परकार परनति जीव कैं सुभाव ही के रुख की।
विषय कसाइ अव्रतादि परिनामनि सौं करनी असुभ जग माहि थान दुख की।।

१. मूल प्रति "डेर"।

वरत विधान दान पूजा सोइ सुभ रीति जातैं उतपाद हैं विभूति विषै सुख की।
राग दोष रहि तप योग सुद्ध परिनाम दैन हार मोख भाखी भगवान मुख की।।१।।

दोहरा

हेय असुद्धपयोग फल कहौं दुविध परकार।
गर्भित विषय-कषाइ करि मलिन मोह भ्रम जार।।

सवैया इकतीसा

असुभ तैं जीव नरगति मैं दलिद्री दुखी तिरजंचगति मैं सहै है कष्ट वेदना।
नरक मैं परै नाना भाँति के विलाप करै जहाँ काहू नारकी के जीवन उमेदना।
सुभ परिनामनि के उदै राज-देव सुख विषय कसाइ की उपाधि है शुभेदना।
जानौं मति फेर संत दौनों एकमेक पाप-पुण्य की विभूति फल या मैं महाखेदना।।२।।

दोहा

जाही सुख करि कैं सहित सदा सिद्ध अरहंत।
कहौं सुद्ध उपयोग फल उपादेय अत्यंत।।

सवैया इकतीसा

तिजग में भारी सो अपूरव अचिर्जकारी परम आनंद रूप अखै अविचल है।
प्रगटे सु आपहू तैं और कौ सहाइ बिना विषय वितीत सो अनोपम अमल है।।
एक सौ निरंतर प्रवर्तै सदा काल नित्य अखिल अबाधित अनंत तेज-बल है।
औसौ सुखु सरस प्रकासे भगवंतजू कै सौ तौ सब सुद्ध उपयोग ही को फल है।।३।।

दोहा

समकित रस परसे बिना पर्यौ न जिय कौ ठीक।
करि दिष्टांत कहौं सु बिनु सब करतूति अलीक।।

सवैया इकतीसा

जैसें और धातु के मिलापवान हीन हेम कसत कसौटी सौं सु दीसै पराधीनता।
जो पै पीट पत्र करि दीजे आंच नाना भाँति बिगरे सलौनी जाकी घटै न मलीनता।।
जैसें क्रिया कोटि करै प्रानी जौ विवेख विना धरैं बृत मौंन रहै देह करै-छीनता।
सम्यक स्वरूप के प्रकास भेद ग्यान बिना सुद्धता न लहै पै न दहै कर्म कीनता।।४।।

दोहा

जो निज आप स्वरूप लखि पाप पुन्य इक जोइ।
कहौ सुद्ध उपयोग मैं दीनी सकति समोइ।।

सवैया इकतीसा

पाप अरु पुन्य जानैं एक ही प्रमान करि सुभासुभ रीति दुरनीति मैं न दबै है।
इष्ट वा अनिष्ट दो प्रकार जे पदारथ हैं जापै राग-दोष भाव सौं न परिनवै है।।
विमल स्वरूप[१] जाग्यौ चेतना सुभाव जाकै भयो सांचौ सुद्ध उपयोगवंत तवै है।
जाकी देह तैं न उतपन्य होत दुख खेद सो तौ संत पराधीन वेदना नसबै है।।५।।

दोहरा

सुद्धजीव जुत सुद्ध गुन वरनौं करि दिष्टंत।
पराधीन सो वेदना वेदै नाहीं संत।।

सवैया इकतीसा

जैसे लोह पिंड में न पावक प्रवेस जबै तबै लोह पिंड मैं न वासना तपन की।
तपन विहीन लोह आपनै प्रमान सदा पावक बिना न लोह सहै चोट घन की।।
जैसें जीव पाप-पुन्य एकता विचारि राग दोष के अभाव सौं सम्हारि सुद्धपन की।
सुद्धउपयोगी भयो आपनो स्वरूप वेदि सो तौ वेदना न लहै पराधीन तन की।।६।।

दोहरा

चेतनि परम सुभाव सुख लीन आप रस मांहि।
वरनौं विषय विकार रस सुख को कारन नांहि।।

सवैया इकतीसा

जैसे केइ राति कैं फिरै या कहे बाघ, सर्प रक्षस कुजीव चोर आदि और लहिये।
दिष्टि तैं विदारि तम देखैं वस्तु भारी कम तिन्हि कैं न दीपकादिकौ प्रकास चहिये।
जैसे जीव को सुभाव सुख रूप आप ही तैं आप जिन भाषित प्रतीति उर गहिये।
विषै सुख आस है सु मोह कौं विलास भ्रम आतमा कैं ताहि कौन कारज कौं कहिये।।७।।

दोहरा

सुद्धपयोगी जीव कौं कहौं स्वरूपाधिकार।
वीतराग परिनमन की महिमा अगम अपार।।

सवैया इकतीसा

जानै सो प्रमान भली भाँति भेद आगम के जीव निरजीव आदि नवतत्व दरसी।
भरम विदारी धीर धर्मज्ञ तपचारी विगत विभाव सार संजिमी समरसी।।

---

१. मूल प्रति ''श्वरूप''

सुख दुख एक ही प्रमान जान जगत के राग दोष मोह दसा डारी है वितरसी।
अैसो सुद्ध परम विवेकी मुनिराज जाकै सुद्ध उपयोग घन घटा घट वरसी।।८।।

दोहरा

सुद्धपयोग प्रकार करि प्रगटी सकति अनंत।
आतम सुद्ध सुभाव कौं लाभु कहौं भगवंत।।

सवैया इकतीसा

जामैं ज्ञान केवल प्रकासे लोकालोक भासे दर्शनावरण जाकी कीनी है निकंदना।
अंतराई अंत करे हरे अरि मोहकर्म जगी स्वयमेव सांची परम अनंदना।
सुद्ध उपयोगी सो सुजोगी भोगी आपरस जामैं और जोग कौं प्रमान परधंदना।
ऐसे वीतरागजू विराजै देह देउरे मैं जाकी देवीदास तीनि काल करै वंदना।।९।।

दोहरा

सुद्धपयोग प्रकार करि प्रगट्यौ छाइक ज्ञान।
कहौं जासु करि कैं सहित स्वयंभू सु भगवान्।।

सवैया इकतीसा

भयो जाकैं लाभु आतमीक परिनाम कौं जगे अनंत भअै घातिया कौं छेउ जू।
सवै तत्व ज्ञाता सो विधाता सरवज्ञ जाकी इन्द्र धरनेन्द्र चक्रवर्त्ति करै सेउ जू।।
सुद्धउपयोग के प्रसाद करि आपहू तैं पायो है सुभाव जानै पर्म स्वयमेउ जू।
स्वयंभू सुनाम सुखधाम वीतराग अैसे तीनि लोकनाथ महादेवनि के देव जू।।१०।।

दोहरा

स्वयंभू सुप्रभ कौ कहौं निरमल नित्य सुभाउ।
अरु उतपाद बखान वय धू त्रिकाल समुझाउ।।

सवैया तेइसा

सुद्ध सुभाव दसा उपजी भगवंत विषै फिर कैं सुन खोइ।
नासिअ सुद्ध विभाव गए तिन्हि कैं सुन फेरि प्रवर्त्तत सोइ।।
चेतन सिद्धस्वरूप वही सु असुद्ध दसा पुनि सुद्ध समोइ।
या उतपाद तथा वय धू सबकौ सुमिलाप समै इक होइ।।११।।

दोहरा

सुद्धपयोग प्रसाद तैं प्रगट्यौ छाइक ग्यान।
स्वयंभू सु प्रभ कौ सु फिरि वरनन करौं बखान।।

सवैया इकतीसा

घातिया विनासैं भये इंद्रिय विकारहीन रहित प्रजाद बोध फैली विभो तास की।
भये थिर परिनाम आप विषैं आपहू के आकुलता सो तौं होत भई है विनास की।
स्वपर प्रकासी सुख आतमा विलासी अैसी पर पद्म खुलासी ग्यान केवल प्रकास की।
अंत बिन धीरज प्रकासे बलवीरज सु अैसे जिनराज कौं प्रनाम देवीदास की।।१२।।

दोहरा

इंद्रिनि करि आधीन जब सुख दुख भुगते जीव।
वीतराग इंद्रिनि बिना वरनौं ग्यान सदीव।।

सवैया इकतीसा

छुधा आदि दैके दुख जगत मैं नानाभाँति सुख है अनेक आदि और जे असन तैं।
पराधीन बिना ग्यान छाइक प्रकासे जब दोऊ उपजै न भगवान जू के तन तैं।।
तातैं भगवान जू सपर्स रस गंध वर्न रहित विकार भाव विषै रस मन तैं।
देवीदास कहैं जानो सुख जो अतिंद्री ग्यान महिमा बखानि जाकी कहै को वचन तैं।।१३।।

दोहरा

बहुरि कहों दिढतायकरि वीतराग की बात।
तिन्हि कैं सुख दुख हैं नहीं यहु दिष्टांत समात।।

सवैया इकतीसा

जैसे आगि लोह पिंड संगति विहीन होत सो तौं आगि एक खेद खिन्नता न लहै है।
आगि लोहपिंड के अभाव सौं सु आप ठान एकता सौं धन की सुचोट कौं न सहै है।।
जैसे वीतराग वेदि आपनों स्वरूप आपु सरवांग चेतना सुभाव ही कौं गहै है।
इंद्रिय वितीत रीति परम अतिंद्रिय है पराधीन विषै सुख दुख कौंन चहै है।।१४।।

दोहरा

जिन्हि कैं केवलज्ञान कौं विमल परिनमन होइ।
सो भगवान विषैं नहीं अनुपरोक्षता कोइ।।

सवैया इकतीसा

जामैं परमानू सौ न किंचित परोछ कछू द्रव्यक्षेत्र काल भाव समै एक गल के।
जामैं संसारी सु पराधीन इंद्रिय विकार मरजाद लियै बोध गए हो अवल के।।
जामैं पंचइंद्री गुन दरसे समंत पूरे समरथ जानिवे कौं समै एक पल के।
आपहू तैं परम प्रकासी अैसो जिन जू कैं अचल अवाधित अनंतज्ञान झलके।।१५।।

दोहा

चेतनि ग्यान प्रमान हैं ग्यान गेय परवान।
कहौं ग्यान सो सर्वगत सुनौं संत दै कान।।

सवैया इकतीसा

चिदानंद आपु ग्यान गुन की बराबरि है ग्यान गुन तैं न अधिकारौ है न कम है।
ग्यान गुन की विभूति फैली लोकालोक माहि लोकालोक ज्ञेय जातैं ग्यान ग्येय सम है।।
अतीत अनागत अनंत परजाय लियैं लोक है सु जामैं छह दरव कौ रम है।
जातैं बाहिरो अलोकाकास है सु जाके विषैं सर्वगत ग्यान सो कहावै जाकी गम है।।१६।।

दोहा

निश्चयनय करि ग्यान गुन ज्ञेय विषै नहिं जाइ।
ज्ञेय न आवै ग्यान मैं कहौं बात समुझाइ।।

सवैया इकतीसा

आतमा को परम सुभाव एक ग्यान ही है ग्यान सो तो और परमतत्व सौं अमिल है।
परमतत्व जीव दोऊ धरै न अवस्था एक एक अस्थान न प्रवर्त्तै सो अखिल है।।
व्यवहारनय सौं सुग्यान अरु ग्येय तत्व एक खेत रहैं यों अनाद ही कौ हिल है।
चच्छु कैसी रीति लखै जानै असपर्सै जैसे ग्यान ज्ञेय तत्व ज्ञेयाकार होकैं गिल है।।१७।।

दोहा

अपि करि पदारथ विषैं करै न जीव प्रवेस।
पैठौ सो व्यवहार करि लागैं कहौं सुलेस।।

सवैया इकतीसा

ग्यान परदरव पिछानिवे कौं परवीन ज्ञान के समूह धुव ज्ञेय विषैं नरसे।
व्यवहार दिष्टि सों पग्यौ सौ ज्ञान ग्येय विषैं पैठो सो दिखात क्रिया ग्याइक सब रसैं।।
इंद्रिय वितीत रीति परम अतिन्द्रिय है जामै सब लोकालोक के प्रमान दरसैं।
जैसे नैनं अपने प्रदेसनि प्रकार करि रूपी द्रव्य लखै जाने बिन हू सपरसैं।।१८।।

दोहरा

ग्येय विषै व्यवहार करि वरतै आतमराम।
सो वरनौं दिष्टांत करि सुद्ध जीव परिनाम।।

सवैया इकतीसा

जैसें इंदनील मणि डारै पय भाजन मैं मनि को सुभाव पय नीलौ सौ लगत है।
निश्चै करि जद्यपि सु नीलमनि आपु विषैं उपचार करै व्यापी पय में पगत है।।

जैसें सुद्ध ज्ञान की प्रवर्तना है ग्येय विषै व्यवहारनय के प्रमान सौं सगत है।
सुद्ध नयन निहचैं प्रमान ज्ञान एक ठान चग्यौ चिदानंद के समूह मैं दगत है।।१९।।

दोहरा

पुनि वरनौं उपचार करि ज्ञेय ज्ञान संबंध।
ग्रहन तजन जिन्हि कै नहीं सपरसादि रसगंध।।

सवैया इकतीसा

सुद्धनय सौं सु जेन जाइ परतत्व गहैं नहीं परतत्त्व के प्रमान परिहरे हैं।
आपहू तैं आप जाकैं विमल सुदिष्टि जागी जहा ग्येय रूप से न परिनाम करे हैं।।
सरवांग देखै जानैं आपनैं प्रदेसनि सौं इच्छा विनु ज्ञेयाकार ज्ञान ही मैं धरे हैं।
प्रगट्यो निकंप जोति केवल समस्त ग्यान अैसे वीतराग आप आपु अनुसरे है।।२०।।

दोहरा

परम अतिंद्रिय ज्ञान है सबकौ जाननहार।
जाकी पुनि महिमा कहौं करि कवित्त निरधार।।

सवैया इकतीसा

रहित प्रदेस महासूछम अपरदेसी काल अनू आदि भेद जाही सौं सपरसे।
सहित प्रदेश पंच अस्तिकाइ भेदाभेद मूरतीक पुद्गल प्रमान सबै दरसे।।
सुद्धजीव आदि और दरव अमूरतीक अतीत अनागत सुभाव रहे भरसे।
अैसो है अतिंद्रिय असेष वीतराग ग्यान इंद्रिय विकार नाहीं जामैं जरे परसे।।२१।।

दोहरा

जैसे निरमल ग्यान मैं भासे तत्व समूह।
सो दिढ करि दिष्टांत सुनि सदगुरु भाषित कूह।।

सवैया इकतीसा

जैसे काहू सिलपी लिखै हैं सोच ते उर मैं बाहूबलि भरथादि गए होहि नर ते।
होनहार श्रैनिकजू आदि तिरथंकर जे धरे वर्त्तमान काल देखे दिष्टि भर ते।।
जैसे ग्यान गुन मैं समस्त परजाय भासी होइ कैं विनासी आगैं हौंहिगे समर ते।
अैसो है सुभाव जीव सुद्ध परिनामन कौं अतीत अनागत समै मैं एक वरते।।२२।।

दोहरा

ज्ञानी है सो आतमा ग्यानी और न कोई।
पंच दर्व ति जिन्हि के विषैं ग्यान गम्य सुन होई।।

सवैया इकतीसा

ज्ञानी सौ न और पै न और सौ सुज्ञानवंत कैं क्रिया विचित्र एक जान की।
जानी एक ठौर कौ पिछानी है सु और कौ सु और कौ अजानी है न जानै एक ठान की।।
ठान-ठान और पैन और ठान-ठान कोई रीति है पिछानिबे की वाही के प्रमान की।
ग्यानी है सुग्यानी है न ग्यानी और दूजौ कोई और के पिछानी मैं निसानी एक ग्यान की।।२३।।

दोहरा

चेतनि-चेतनि सौ सदा तन सौ तन जड रूप।
निबसैं एक निदान दो भेद कहौं चिद्रूप।।

सवैया इकतीसा

जैसे काठ मांहि बसै पावक सुभाव लियैं हाटक सुभाव लियैं निवसेउ पल मैं।
पहुप समूह मैं सुगंध को प्रमान जैसे तेलु तिली के मंझार बसै और फल मैं।
दही दूध विषैं सु तूप आपनैं स्वरूप बसै तीत रहै ज्यौं पुरैन बीच जल मैं।
जैसे चिदानंद लियैं आपनो स्वरूप सदा भिन्न है निदान वैसे देह की गहल मैं।।२४।।

दोहरा

वीतराग परिनामकौं को कवि भाखनहार।
नागेसुर रसना सहस करि-करि लह्यौ न पार।।

सवैया इकतीसा

परनति तीन परकार कही आतमा की हेय अति ही सुहेय विषै भ्रम जार मैं।
उपादेय वीतराग आतमा सुभाव कह्यौ ग्येय ग्यान सरवग्य परम विचार मैं।।
केवली की महिमा अनंत सुख विषैं तीत सुद्ध उपयोग कौ विसेष निरधार मैं।
देवीदास कही ऐसी वीतराग जू की कथा बालबोध टीका देखि प्रवचनसार मैं।।२५।।

दोहरा

वीतराग पच्चीसका पढै गुनैं रस पोख।
परमारथ परचै सु नर पावै अविचल मोख।।

(१०)उपदेश पच्चीसी[१]

दोहरा

समैं पाइ सदगुरु करै भविजन देखि अवाज।
मगन भऔ इहि देह सौं तेरो होत अकाज।।१।।

---

१. रचना काल- संवतु १८१६ जेठ वदी १२ लिखितं ललितपुर मज्झे सुहस्त।

देह पराजी तू नहीं सुख उपराजा भूप।
आजा गुरु उपदेश मैं आजीय ज्ञान स्वरूप।।२।।

नानी की तूं मानि है कहाँ खोलि तुझ कान।
नाना करमन तूं करै करता पुद्गल आन।।३।।

काकी मानि कही करी का कारन तूं पाइ।
या काया के हेत तैं सरवसु दयो गमाइ।।४।।

माता वसु मद पापु रे साता करम उदोत।
या अपूत तन के विषै मगन मानि सुख होत।।५।।

मोह भ्रमा मार्‌यौ तुझै कीनै घपू निदान।
जाकी तूं मामी पियैं मूरिख भयो सुजान।।६।।

आ फूफास्यौ बाल जिम रोवै चहै न माइ।
ज्यौं तुम पर परनति पगे निज सुसक्ति विसराइ।।७।।

मौसी राख्यौ है मनों जिन आगम के हेत।
मौसा हिव तूं हो रह्यौ गहै चतुर्गति खेत।।८।।

मगन होऊ सुनि सरससुर सो रससुर तुझ नांहि।
निरखु दसा सुचि सो नहीं पुनि वरनादिक मांहि।।९।।

सारे जग जंजाल में सारी अपनी रीति।
खोइ फकत भौंदू भयो करि दुरजन सौं प्रीति।।१०।।

भौजिय तूं बहु विधि धरी भाइ उर दुर दुरनीति।
मोह बहिनि करि कै जर्‌यौ गति-गति भयो फदीत।।११।।

जीजीवन के काज तू मरनु न चाहत सोइ।
जीजागा तूं जाइ गौ राखन हार न कोइ।।१२।।

नारी मैं निज गुन विषै परम पदारथ खोजि।
तुम सुभतीजे करम के उदै रहे अति वोजि।।१३।।

नाती नौ पुनि गुन सु तुम लखे एक चित होइ।
नातिनि कौ व्यौहार अपि समझयौ भेद न कोइ।।१४।।

या समधी प्रगटी नहीं पुनि कबहु तुम पास।
समधिन कीनी सुमति की तजि दुरमति की आस।।१५।।

समधेला सुख जगत के निज सुख रत्त समान।
या निहचे करि कै सु तुम कीनी परख न जान।।१६।।

न तापछ यह जगत मैं न तापछ तुम हंस।
न तापछ तुम आपनी जाति पाति कुल वंस।।१७।।

न तारैं माता पिता न तारैं कुल गोत।
तारैं निज करतूति वह तारैं हृदै उदोत।।१८।।

जा तन सौं तू रचि रह्यौ जात न तेरी सोइ।
जा तन जा तन कौ सुपिनि घरी एक सुनि होइ।।१९।।

भवन धरै जे जिय सुखी भवन धरै दुख वास।
भवन तजै भौ गति भजै भवन सुभव न पास।।२०।।

जोवन भूले बाउरे जोवन के रस रंग।
जोवन कौ असमर्थ पुनि जोवनहार अभंग।।२१।।

तुम जोगन परदर्व है तुम जोगन गुन ज्ञान।
तुम जोगन तैं हौ जुदे तुम स्वंयोग परवान।।२२।।

सुमति धरौ उर वीर हौ बूड़ै भव संसार।
सुमति धरौ परगट हियै उतरौ भवदधि पार।।२३।।

मन जाकौ निज ठौर है परसि आतमाराम।
कहि साधौ जाकैं नहीं धंधों आठों जाम।।२४।।

जन जानत नव नय नही नयन हीन जिन बैन।
लीन चीन विन तीन गुन ग्यान हीन सुन जैन।।२५।।

(११) जोग-पच्चीसी

दोहा

सिवदेवी नंदन नमौ पाप निकंदनहार।
चित्रबंध छप्पय कवित्त कहौ सु जिन उर धार।।

छप्पय (अंतला पथ)

विनसीक कह छोडि अथिर कह जानि बिरच्चे।
कवन सेज दलमली कवन व्रत धारक सच्चे।।

सिव सनमुख कह गह्यौ ध्यान किहि परसु धरेपिन।
कहा रहित तन तासु देखि जग कह्यौ कहा जिन।।

को करत सेव जब जीति तिनि चारि घातिया कर्म ठग।
श्रीनेमिनाथ रागादि हनि भोजनादि मन रोधि खग।।१।।

पुनि नेमिनाथस्तुति

दोहरा

दो दो अछिर जोरि कैं जह तैं बांचौ मित्त।
बांचत एक कवित्त मैं अरतालीस कवित्त।।

चौवीसा

तजि राजमती गिरनार गये वर जोग धरे व्रत आन हियैं।
भजि काज जती सिर भार लए धर सोग हरे प्रत जान जियैं।।
रजि लाज हती खिर डार दए परभोग करे नृत ग्यान लियैं।
अजिता जगती तरि पार भए सर रोग टरे व्रत ध्यान दियैं।।२।।

दोहरा (चन्द्रमा बन्ध)

विमल न रवि-सम हेत वि तु तमह विनासी ठौर।
ज्यौ श्रीपारसुनाथ तजि संसौ हरै न और।।

गीतिका (मडरबन्ध)-

सरद गरम त ठठुर तन रितु और जल गज बरस।
सरव जग लज रहे तह मनु थंवि परवसनरस।।
सरन सवर पवित्र पारिसु गहक नुति हम सरस।
सरस मह तन करसु नव दम कमठ तम रग दरस।।३।।

दोहरा

वर्द्धमान सिवपद लह्यौ वध करि भव गति भर्म।
पापै कस आपै गह्यौ दह्यौ छोभ वसु कर्म।।

छप्पय (अन्तर लपिका)

कहा धर्यौ तिन्हि ध्यान अखै कह लियो ध्यान धरि।
वैंत थंभ सम कहा तज्यौ को मित्र कवन अरि।।
कीनी कवन विलोकि दया मत कौनु प्रकर से।
कह सौं तजे ममत्व कवन कहिये सो सासे।।
तसु नाम अंक नव आदि तै अंत अंक सौं अर्थ पिन
तीर्थंकर मन तैं अंत मै वर्द्धमान दी जैत जिन।।४।।

दोहरा

तीर्थंकर बंदौ प्रगट वर्त्तमान जिहि ठौर।
सेवक लह तसु पंथ तसु क्रम-क्रम सौं सिव पौर।।

गीतिका (मडरबन्ध)

न मत सुरज न हर्षि तसु पद सदा उलटि कुगमन।
न मग कुटिल उदास जग जुत कृपा सरवसु रमन।।
न मर सुवरस पाइ अनुपम प्रान वधु रुचि दमन।
न मद चिरु ध्रुव नहीं सुख-दुख मोह न जरसु तमन।।५।।

दोहरा

मोह तिमिर विनसत भयो स्वपर विवेखी भोर।
जाग्यौ जब जानै गए जनम जरादि कठोर।।

कवित्त (पर्वतबन्ध)

मैं न जगे रे परे जम के बस तारन हार लखेनन मैं।
आदि न अंत सुसंत पुरातम सुद्ध स्वरूप दसागन मैं।।
मर्द न मोह सुछंद अनूप बिना करामात बसै तन मैं।
मैं न जरे मन आतमराम मरा मत आन मरे जन मैं।।६।।

दोहा (धनकबन्ध)

जनम मरन वन माहि भ्रमत सुहित रहित सुविसाल।
रे जिय अंत मिल्यौ नहीं समकित बिनु चिरकाल।।

छप्पय (कमलबन्ध)

अंग[१] लगावत राख रहत नित मौन धारि मुख।
संग भार सब नाश करत तप सहत घोर दुख।।
धरत भांति बहु भेष बडावत जटा सीस नख।
वन मैं रहत अदेख असन त्यागैं सुभाष पख।।
इत्यादि कष्ट सहत सुपुरिष मास अवर बीतैं बरख।
सो जैन नैन बिनु झूठ दिस रहित जेह निज पर परख।।७।।

सोरठा

निज पर परख विहीन तन मन धन के लालची।
सद्गुरु देखि प्रवीन कहै वचन उपदेस पुनि।।

गतागत छंद

रे धन दान बिना रुक लाभु भुला करुना बिनु दान धरे।
रे मन वाध वली गन जासु सुजान गली वध वान मरे।।

---

१. यह पद बुद्धिबाउनी (दे. पद्य संख्या ४१) में भी उपलब्ध है।

रे तन दीन सले करमास समार कलेस नदी न तरे।
रे जन हीन मुधा वसि मार रमा सिवधामु नहीं न जरे।।८।।

दोहरा

पद एकादस वरन कौं दुगुन करत तुकबंध।
उलटि पुलटि नटषे लसौ केलि गतागत छंद।।

गतागत छन्द

रे मह मो पुरिहीन कुवंसु सु वंकु नही रिपु मोह मरे।
रे मद राग षदो गम धामु मुधा मग दोष गुरा दम रे।।
रे महिमा छिन मास निहार रहा निस मान छिमाहि मरे।
रे मथ मैं यहि देवियदास सदाय विदेहिय मैं थम रे।।९।।

जथार्थमुनि वर्णन— दोहरा

भैया तिनि मनु थंम के खोज्यौ खोजु लगाइ।
जे यह भव संसार में तारन तरन सहाइ।।

गतागत छंद

[२]तीरथ गंग विहीनर साप पसार नही विग गंथ रती।
तीपथ सादत संघ अदोष षदो अघ संत दसाथ पती।।
तीमग मैं वसि कै सिंधुरेसु सुरेधुसिं कै सिव मैं गमती।
तीजग जोनि तजी नवरासि सिरावन जी तनि जोग जती।।१०।।

दोहरा

मन वच काया सौं नहीं सिद्ध होत सिव काज।
बरनैं सदा स्वजोग मैं जे बरनौं मुनिराज।।

गतागत छंद

माजत जे लखि जोति गहीर रही गति जो खिलजे तज मा।
मानत खेल सुधी तन जासु सु जानत धीसु लखे तन मा।।
माहर जीव पसार सु नीमु मुनीसु रसा पव जी रह मा।
मारग जो सुख मोह रचैं न नचै रह मोख सुजोग रमा।।११।।

दोहरा

दरसन ग्यान चारित्र निज मन वच तन परजोग।
सुधी सुगुन आचरत नित विमुख सदा परभोग।।

---

२. यह पद्य बुद्धिबाउनी (पद्य संख्या ८) में भी उपलब्ध है।

गतागत छंद

वैस तजी गजराज तरी कु कुरीति जरा जग जीत सबै।
बै जसु भौन अनूप असार रसा अपनू अनभौ सु जबै।।
बैठन जोग जथा कवि भास सभा विकथा जग जो नठबै।
वै भग जोनि मुखी सुख सेवि विसेख सुखी मुनि जोग भवै।।१२।।

दोहरा

मन वच तन पर द्रव्य सौं कियो बहुत व्योपार।
पराधीनता करि पर्यौ टोटौ विविध प्रकार।।

सवैया इकतीसा

अरे हंसराइ अैसी कहा तोहि सूझी परी पुंजी लै पराई बंजु कीनौं महा खोटो है।
खोटो बंजु कियै तौकौं कैसे कै प्रसिद्धि होइ नफा मूर थैं जहाँ सिवाहि व्याजु चोटो है।।
बेहुरौ सौं बंध्यौ पराधीन हो जगत्र मांहि देह कोठरी मै तूं अनादि कौ अगौटौ है।
मेरी कही मांनु खोजु आपनौ प्रताप आप तेरी एक समै की कमाई कौ न टोटो है।।१३।।

दोहा

दया दान पूजा पुजी विषय कषाय निदान।
ए दोउ सिवपंथ मैं वरनैं एक प्रमान।।

सवैया इकतीसा

दया दान पूजा सील पुंजी सौं अजानपनैं जे तौ हंस तू अनंतकाल मैं कमाइगौ।
तेरी वेविवेख की कमाई सो नर है हाथ भेदग्यान बिना एक समैं मैं गमाइगौं।
अलख अखंडित स्वरूप सुद्ध चिदानंद जाके बंज माहि एक समैं जौ रमाइगो।
मेरी कही मानुं यामैं और की न और एक समैं की कमाई तूं अनंतकाल खाइगौ।।१४।।

दोहरा

सोइ अंछर प्रष्न के उत्तमै सुसमात।
सिष्य सुगुरु पूछै कहै वर विवेख की बात।।

छप्पइ

को कवि वरनैं मूढ को परमधर्म विछोही।
कोपरहित उपगारवंत देखों जग टोही।।
कोप करै दुख फंद बंध काया जग कारन।
काया जग मैं झूठ काजु आतम जग तारन।।
का मरम दुष्ट देखौ प्रगट काम हंत करता सुवल।
यह प्रष्न ही उत्तर वचन अर्थ भेद करि कै सलल।।१५।।

दोहरा

मूल कवित्त अरिल्ल के बसत चौपही संग।
दोहा अरु पुनि सोरठा पंच प्रकार अभंग।।

श्रीगुरु उपदेश व्यवहारी।

प्रीतम पुन्य समान न और सुमित्र है कोइ समीप बखानैं।
या जग में सुखदाइक ठौर पवित्र है पुन्य प्रधान सयानैं।।
पाप कलेस सदा नहैं धीर कुदान मैं गर्भित है दुख ठानैं।
इष्ट लगै करु ताहि सुवीर प्रमान मैं दोइ कहै कवितानैं।।१६।।

निश्चय गुरोपदेश दोहा

दया दान पूजा सुफल पुन्य पाप फल भोग।
भेद ज्ञान परगट बिना कर्म बंध को जोग।।

छप्पय

दया दान पूजा सु पुन्य कारन भवि जानौं।
पुन्य कर्म संजोग संत साता पहिचानौं।।
सुभ साता तह विषय भोग परनति जग मांही।
विषय भोग तह पाप बंध दुविधा कछु नांही।।
फल पापकर्म दुर्गति गमन दुरगति दुखदाइक अमित।
इहि विधि विलोकि निज दिष्टि सौं पाप पुन्य इक षेत नित।।१७।।

दोहरा

कोऊ कहै वितर्क सौं भलौ पुन्य ते पाप।
जासु उदै दुख मैं भजे पंच परमपद जाप।।

छप्पय

पाप कर्म के उदै जीव बहु विधि दुख पावत।
दुख मैटन के काज पंच परमेस्वर ध्यावत।।
पंच परमगुरु जाप माहि सुभ कर्म विराजत।
सुभ करमनि को उदौ होत दुरगति दुख भाजत।।
दुख नसत होत सुखवंत जिय कुगति गमन तिन्हि दल मलौ।
कहि पुन्य कर्म तै जगत महि पाप कर्म इहि विधि भलौ।।१८।।

दोहा

कोई जन ऐसी कहै भलौ पाप तें पुन्य।
उपजे विसय-कसाय करि विघन धर्म करि सुन्य।।

तेईसा

पुन्य के जोग सौं भोग मिलै पुनि भोग तौ पाप कौ पुंज भिया रे।
पाप कीनी तिसौंरी तिलटी गति नीच परै मरि कैं सु जिया रे।।
त्याजिवो जोग उभै करनी निज पंथ तजैं इनिकौ रसिया रे।
कर्म तौ एक स्वरूप सबै रचि कै सु भलो पनु कौन लिया रे।।१९।।

दोहा

पाप पुन्य परनमन मैं नहीं भलप्पनु कोइ।
सुद्धपयोग दसा जगै सहज भलाई होइ।।

सुद्धोपयोगी वर्णन **छप्पय**

पाप पुन्य परिनमन हीन रागादि निवारक।
सहित सुद्ध उपयोग जोग निश्चय सुविचारक।।
मंडित ध्यान अभंग संग सरवंग विहंडित।
मनमथ मद अंकूर चूरि इंद्रिय मन दंडित।।
करुना समस्त जुत प्रगट तह समै-समै प्रतिगुन मरम।
जे धर्मवंत सु महंत पुनि लहत इष्ट पदवी धरम।।२०।।

दोहा

बिनु उपदेस जगत्र मैं धोखें परे सुजंत।
तिन्हैं ज्ञान दातार तें वरनौ गुर गुनवंत।।

अछिरचेतनी **तेईसा**

देत सुदान दुखी तिनि देखि कषायनि कौं चय दोष नसाया
सील लियो सुख को सब मूल मथे खलु कामबलि कसि काया
मौन रचें धुव ध्यान सचैं वर साधि सुनौं निवरे पुनि माया।
मानु मले मद नाषि लियो पद मोख लखे धनु नैन खुलाया।।२१

दोहरा

तीर्थंकर चौबीस पद लेखो ध्यान समाय।
चेतो पंद्रह अंक मैं को इक अंक सुभाय।।

गुरूपदेस **तेईसा**

अछिर कौ कह चेतत मूरिख आंछर मैं कह ग्यान धरे हैं।
ग्यान धरे जिहि मैं तिहि चेतु सु अछिर कौन प्रमान परे हैं।।
अछिर तौ चतुराइनि मैं चतुराइनि तैं कह काम सरे हैं।
सो त्रगुनातम आतम नित्य महासुखकंद अनंद भरे हैं।।२२।।

दोहा

परमानन्दमई सदा आतम अंग-अभंग।
द्रव्य द्रष्टि करि देखिये विमल रूप सरवंग।।

तेईसा

देखनहार सु देखु सुधी जग जाननहार सु जान भिया रे।
बाहिय केर समै रसि तूं वह तौ अपनैं रस कौ रसिया रे।।
चेतनि अंक निसंक सदा निकलंक पदारथ नाम जिया रे।
अंतर नांहि बसै तन बीच नगीच दिपै निज खोजु हिया रे।२३।।

दोहा

हिये मांझ खोजै कहां सम्यकदिष्टि विहीन।
सात प्रकति घाते बिना सम्यक लहै न तीन।।

कवित्त तेईसा

मूल मिथ्यात मिथ्यात समै अरु मिश्र मिथ्यात जहा लगु चौंची।
ए प्रकते दुखदाइनि तीनि सु सम्यक के परिनामनि लौंची।।
आतम की अनुभूति जगी जब आनि सुबुद्धि सखी सु पहौंची।
तीनि गई अरु तीनि के थोक की चारि कषाइ भली विधि दौंची।।२४।।

दोहरा

सात प्रकृति कौ बलु घटै उपजै सम्यक भाव।
यही सात मरदे बिना निरफल कोटि उपाव।।

तेईसा

सम्यकदिष्टि जगे बिनु जीव नहीं अपनौ पर पोरिष बूझै।
सम्यकदिष्टि जगे बिनु जीव उभै निहचै व्यवहार न सूझै।।
सम्यकदिष्टि जगे बिनु जीव सही निजु कैं सिवपंथ न सूझै।
सो समदिष्टि जगै स्वयमेव किधौं गुर कौ उपदेश समूझै।।२५।।

दोहा

क्रिया सुभासुभ आचरत बंध सुभासुभ होइ।
सुद्ध स्वरूप जगे बिना सिवपद लहै न कोई।।

(१२) जीवचतुर्भेदादि बत्तीसी[१]

दोहरा

वंदौं मन वच काइकैं चरन नाभिनयनंद।
जीव चतुरभेदादि करि कहौं चोपही बंद।।१।।

---

१. रचना काल-वि. सं. १८१० अश्विनमास कृष्ण पंचमी भौमवार।

चौपही

सत्ता प्रथम कह्यौ जिन देव भाख्यौ भूत दूसरौ भेव।
प्रान तीसरौ भनैं सुजंत चौथे जीव नाम विवरंत।।२।।

मूल नाम ये वरनैं चारि तिनके भेद कहौं विस्तार।
प्रथवी जल पावक अरु पौन चारि भेद ये सत्ता तौंन।।३।।

अन सुनु भूत भेद दूसरौ जामै वनसपती सब धरौ।
विकलत्रिक चतुरिंद्रिय जे जीव तिनि कौं संग्या प्रान सदीव।।४।।

पंचेंद्री पूरौ जो होइ जासौं जीव कहौ सब कोइ।
अब सुनु जाके वध की कथा जुदी-जुदी वरनौं सब वथा।।५।।

जह सत्ता असंख्य को घात भूत जीव तह एक समात।
असंख्यात तरु काई घतैं सो वध इक दो इंद्री हतैं।।६।।

दो इंद्री इक लाख सतायु ते इंद्री इक घातैं पायु।
ते इंद्री वध करै हजार जहाँ एक चउरिंद्रिय मार।।७।।

चौरिंद्रिय सौ घातै कोइ वध इक पंचेंद्री सम होइ।
पंचेंद्री के वध कौ पाप वरनौं सुनौं सुभविजन आप।।८।।

हेम सुदरसन मेरु समान अरु पुनि कोटि रतन परधान।
एती दर्व करै जौ पुन्य एक जीव घातत सब सुन्य।।९।।

करै सु वध नर मन वच काइ जाकौ पाप कह्यौ समुझाइ।
अब कुछु कहौं समझ की दौर जामैं समझि परै पुनि और।।१०।।

प्रथवीकाइ तासु दो जूम इक कठोर इक कोमल भूम।
थिति कठोर छिति काइ सरीस उत्तिम सहस वरस बावीस।।११।।

कोमल भूमि काइ थिति कही द्वादश सहस बरस सब सही।
पुनि जल काइ जीव की आउ वरष हजार सात गति जाउ।।१२।।

अगिनिकाइ थिति दिन तीनि सो बुध जन-मन लेउ नवीनि।
पवन काइ थिति वरनन करौं वरष हजार तीनि गनि धरौं।।१३।।

वनसपती काइ थिति जोइ वरष हजार भनी दस सोइ।
अब वरनौं विकलत्रक जीव आउ काउ कौं भेद सदीव।।१४।।

जाकैं तन अरु मुखु जानियैं सो जिय दोइंद्री मानियैं।
तन मुख अरु पुनि नासावंत सो तेइंद्री जानौ संत।।१५।।

तन मुख नाक धरैं सो नैन सो भाख्यौ चौरिंद्री जैन।
संख आदि दोइंद्री गात जलचर गोंचरुनी क्रम जात।।१६।।

द्वादस वरष आउ उतकिष्ट तिन्हि की जिनवर कही सुदिष्ट।
बारह जोजन दीरघ देह कही संख की उत्तिम एह।।१७।।

कानखजूरादिक जिय ठौर चिंटी जुवा खटकीरा और।
ए सब जिय तेइंद्री रास तिन्ह की आउ दिना उनचास।।१८।।

तीनि कोस उतकिष्ट सरीर तन परवान विषै रस धीर।
अलि विच्छू पतंग टिडि माखि ए जिय चुरिंद्रिय जि भाखि।।१९।।

उत्तिम तासु आउ षटु मास चारि कोस दीरध तनु तास।
यह विकलत्रक जिय की बात वरनी जिन आगम विख्यात।।२०।।

पंचेंद्री सनमूरछ मच्छ जाकी कथा कहौं परतच्छ।
सहस एक जोजन तन धीर पूरव कोटि वरष थिति वीर।।२१।।

संभूरमन दीप के मांहि यामैं कछू विकलता नांहि।
यह उतकिष्ट आव उतपन्य अंतमहूरति कही जघन्य।।२२।।

तनु वरन्यौ उतकिष्ट उतंग मद्धिम लघु नानाविधि अंग।
गर्भज अरु पुनि जो तिरजंच जाकी बात कहौं पुनि रंच।।२३।।

तिन्हि मैं समना अमना होत स्त्री पुरिष नपुंसक सोत।
समना नर नारकी सुदेव जिन आगम में भाषी एव।।२४।।

तीनि लिंग पुनि वरनौं भेद स्त्री पुरिष नपुंसक वेद।
नरक सुतीनि वेद संयुक्त यह परतच्छ बात जिन उक्त।।२५।।

स्त्री पुरिष देवगति मांहि नरक विषैं जे जानौ नांहि।
वेद नपुंसक नरक मंझार नर तिरजंच त्रिविधि परकार।।२६।।

पंचेंद्री संनमूरछ कहे एकेंद्री विकलत्रक लहे।
अरु हुंडक संस्थान सदीव ए जग माहि नपुंसक जीव।।२७।।

अस्त्री पुरिष जहा परवीन भोगभूमि वरतैं तह तीन।
प्रथवी जल अरु अगिनि समीर इतर निगोद नित्य पुनि धीर।।२८।।

ये सूछम षटु विधि जिय लेउ तिन्हि मैं मिलै नारकी देउ।
चरम सरीरी उत्तिम लोग अरु पुनि कहे भूमि वा भोग।।२९।।

ये सब उदय मरन करि मरैं बाकी जिय उदीरना भरैं।
यह संसार दसा वरनई जथा सक्ति भाषा करि दई।।३०।।

जीव दरव की कथा अनन्त जाकौ कहत न आवे अंत।
इहि कारन सु चौपही भनी सुनत दया उपजै उर धनी।।३१।।

दया-धर्म तैं उपजै ग्यान होइ जीव जग मैं परधान।
जातैं दयो सुपथ दरसाइ भव्य जीव कैं चित्त समाइ।।३२।।

जथा जोग चरचा सरदही जाकी बांधि करी चौपही।
पडत सुनत उपजै आनंद देवीदास कहैं मति मंद।।३३।।

दोहरा

सत अष्टादस दस अधिक संवतु अस्वनि मास।
कृष्ण पंचमी भौम दिन पहु विरदंत प्रकास।।३४।।

(१३) विवेक बत्तीसी[१]

दोहरा

दोष अठारह करि रहित सहित सुगुन छयालीस।
बंदौ ते अरिहंत धरि बार-बार करि सीस।।१।।

सुरस दुरस सारस पुरस धीरसमरस निवास।
परस दरस पारस सरस पोरस सुजस विलास।।२।।

विमल[२] न रवि सम हेत वितु तमह विनासी ठौर।
ज्यौं श्री पारसनाथ तजि संसौ हरै न और ।।३।।

वर्द्धमान[३] सिवपद लह्यौ वध करि भव गति कर्म।
पापै कसि आपै गह्यौ दह्यौ छोभ वसुकर्म।।४।।

भविजन भज जप नाम जिन यह सो निधि है जैन।
भज-भज ना जिय सोधि जै बिनु जप मन हनि हैन।।५।।

करुना दोइ प्रकार है अंतरंग बहिरंग।
ता करि सहित सुधर्म मैं बरतत बुध सब रंग।।६।।

धर्म रीति धरि दोष दहि भीत भाग मद खोइ।
कर्म जीति करि मोख लहि वीतराग पद होइ।।७।।

य जी सुपन कर नर सुहै सुर नरकन पसु जीय।
यही नजर सुधि समर है रम सधि सुर जन हीय।।८।।

---

१. रचनाकाल-संवत् १८१४ भादौ सुदी १३। सनउ।।
२. यह दोहा जोग पच्चीसी के क्रमांक ३ में भी आया है।
३. यहदोहा जोगपच्चीसी के क्रमांक ४ में भी आया है।

मन[१] जाकौ निज ठौर है परसि आतमाराम।
कहि साधौ जाकै नहीं धंधौ आठौं जाम।।९।।

जिनवर इक सम ध्यान वसु तसु आरति भै मैन।
जब इस ध्यावत आतमैं नरक मनस सुर भैन।।१०।।

सबै सु परनर सुरति सौं तिर सुर नर पसु बैस।
समै भनत इक तन गुनैं गुनत कि इत नभ मैस।।११।।

दुविध विरोध विनासनी स्यादवाद तसु अंक।
सो निवसौ हमरे ह्रदैं जिनवानी निकलंक।।१२।।

जन[२] जानत नव नय नही नयनहीन जिन बैन।
लीन चीन बिन तीन गुन ग्यान हीन सुन जैन।।१३।।

भज वन तम जग दावि गन अति धूर सहै बैन।
भव तजि दाग अधू सवै जिन मग बिनु तरि है न।।१४।।

काया चेतनि कै नहीं काया चेतन भेक।
काया चेतनि तैं जुदी काया चेतन एक।।१५।।

नई नव सरस वर दसा दरव सरस वन ईन
न हीन गुर पद चिर भनी भर चिद पर गुन हीन।१६।।

मैन नैन तन कान धुनि घ्रान वैन मन हैन।
ग्यान प्रान गन जान पन लीनं तीन गुन अैन।।१७।।

दरसन ग्यान चारित्र तप मंडित सिवपुर पंथ।
बंदौ मन वच काइ कैं ते गुर श्रीनिरगंथ।।१८।।

नमौं जित नव सिव पुत ज्यौ. तपु वसि वन तजि भौंन।
नमौं चरन गुरवर तपी तरवर गुन रच मौन।।१९।।

दुरित हरन नर हरत मन नमत चरन गुनवंत।
विगत करन नरक सु गमन न मग कुटिल सुमहंत।।२०।।

सुधी निपुन गुरवरनऊं नरवर युन पुनि धीसु।
सुखी सरन अरि कस करैं कस करि अनरस खीसु।।२१।।

तजी विभव न सरन गहत तकि सुर सिव रस नीत।
तनी सरवसि रसु कित तह गन रस नव भवि जीत।।२२।।

१. यह पद्य उपदेशपच्चीसी में भी आया है। देखिए उसकी पद सं. २/१०/२४
२. यह पद्य भी उपर्युक्त प्रकरण में आया हैं। देखिए २/१०/२५

देव धर्म गुर ग्रंथ ये चारौं रत्न अमोल।
परखि लैहिं भवि जौहरी अंतर कैं द्रग खोल।।२३।।

व्रत तप संजम आदि दै चउ विधि दान सपूत।
चार रत्न इम परख बिनु निरफल सब करतूति।।२४।।

जनम मरन वन महि भ्रमत सुहित रहित सुविसाल।
रे जिय अंत मिल्यौ नहीं समकित बिनु चिरकाल।।२५।।

अरति हरति कीरति रमति सारति कुगति विलाति।
जगति सुमति सूरति सुअति भागति कुमति जमाति।।२६।।

बृत तपादि करनी सहित चारि रत्न सरधान।
यह समकित व्यवहार भवि फल दाइक परधान।।२७।।

तजि कुधर्म तजि कैं कुगुरु तजि कुदेव दुरभेष।
भैया भवि जो चहत हौ सिव स्वर्गादि विसेष।।२८।।

सात विष्न कौ त्याग करि तजि मद अष्ट प्रकार।
एक बार की मानियौं कहिवत बार हजार।।२९।।

इहि प्रकार परनति प्रकट सम्यक दरसन मूल।
उपजै तासु परंपरा निहचल मारग थूल।।३०।।

जह निहचल परनति जगी भगी सकल विपरीति।
पगी आप सौं आप जब निरभय निरमल रीति।।३१।।

स्वपर हेत उद्दिम कियो देवियदास विगोइ।
भव्य पुरिस अवधारियो यामैं कष्ट न कोइ।।३२।।

चित्रवंध सब दोहरा वर विवेख की बात।
भाषा परगट समझियो सुद्धीवंत जे तात।।३३।।

(१४) दरसन छत्तीसी

छप्पय

आदि जिनेश्वर आदि अंत महावीर बखानौं।
जिन्हि के जुग चरनारविंद नित प्रति उर आनौं।।

परगट जिन दरसन सुपंथ ठानौ सुखकारन।
ज्ञानावरनादिक सुअष्ट दुरबंध निवारन।।

तसु पढ़त सुनत अहलाद अति परमारथ पथ कौं विदित।
समुझैं सुं संत गुनवंत अति भाषा करि वरनौं कवित।।१।।

सवैया इकतीसा

धरम कौ मूल जामैं भूल कहूँ एक नाहि दंसन सुनाम ताहि भगवान भाख्यौ है।
गनधर रच्यौ अैसो गुन कौ निधान भारी जाकैं कान भए सोइ सुनि सुनि चाख्यौ है।
श्रैनिकजू आदि जीव संत सब सुचि मानी समझि-समझि ताहि घर मांहि राख्यौ है।
दरसन सु हीन बाल वंदिये सु तीनिकाल कारज न होत जिनवानी मांहि नाख्यौ है।।२।।

छप्पय

दरसन करिकै हीन-हीन सोहै जग मांही।
दरसन करिकैं हीन जासु अव्वय पद नांही।।
जो चरित्र करि हीन होइ जौ दरसन धारी।
क्रम-क्रम सेती तौन पुरिष पावै सिवनारी।।
भवि देखौ यह संसार महि बिनु दरसन जे नर रहें।
सो संत पुरिष यह जानिकैं चल सबऊ तिन्हि सौं कहें।।३।।

छप्पय

सम्यक रत्त विहीन करैं जन जौ बहु कथना।
जानैं बहुत पुरान भेद नाना विधि मथना।।
दरसन ग्यान चारित्र तपै आराध्यौ नांही।
ज्यौं हूं भ्रमै अनादि भ्रम्यौं त्यौं हूं जग मांही।।
भवि देखौ यह संसार महि बिनु दरसन जे नर रहैं।
सो संत पुरिष यह जानि कैं चल सबऊ तिन्हि सौं कहैं।।४।।

छप्पय

सम्यक बिनु जो पुरिष धरत बहु विधि प्रकार जप।
सहस भाँति अति कष्ट उग्र अपि करत परम तप।।
सहस कोटि वर्षन प्रमान साधें सुकाल घट।
बोध बीज सम्यक स्वरूप प्रगट्यौ न जासु घट।।
भवि देखौ यह संसार महि बिनु दरसन जे नर रहैं।
सो संत पुरिष यह जानि कैं चल सबउ तिन्हि सौं कहैं।।५।।

तेईसा

सम्यक दर्सन सम्यकज्ञान जगे जिन्हि के घट मैं गुन दोइ।
जा सुहु दैं बलवीरज व्रद्धि सम्रद्धि सु तौ प्रगटै पुनि सोइ।।
जे नर पुन्य प्रधान जहा मल पाप अनू न रहै छिन कोइ।
कौन अचिर्जु तिन्हैं वर ज्ञान समै भरि भीतर मैं पुनि होइ।।६।।

तोटक छंद

समदंसन नीर प्रमान कह्यौ तिन्हि कैं घट जासु प्रवाह बह्यौ।
बधु वालुव कर्म अनादि खगे तसु फूटत नैंकु न वारु लगै।।७।।

सवैया तेईसा

जे नर सम्यक दंसन हीन तिन्हैं अति दुल्लभ ज्ञान कला है।
ग्यान कला बिनु जे नर हैं तिन्हि सौं कवहूँ न चरित्र पला है।
जे बिनु चारित हैं जग मैं तिन्हि कौं न सुकारत होत भला है।।
सम्यकतादि बिना करतूति करी तिन्हि आतम राग छला है।।८।।

छप्पय

धर्मवंत जो संत सील संजुत व्रत भारी।
करन दमी संजमी नियम उत्तिम गुन धारी।।
जोग दमी जोगी जगत्र वेदी तप चारी।
समदरसी परसी सुतत्व भ्रम भीत प्रहारी।।
परवीन सकल करतूति महि कहत जासु दूषन सुजन।
मरि-मरि सु परत नर नरकगति फिरि-फिर पावत भगन तन।।९।।

चौपही

जैसे तरवर विनस्यौ मूल जह न खंद साखा फल फूल।
जैसे बिनु दरसन नर कोइ धर्म मूल बिनु मुक्ति न होइ।।१०।।

अरिल्ल

जैसे तरवर मूल पेड साखा सुदल।
तिन्हि प्रति पुनि परिवार विराजत फूल फल।।
जैसें समदरसन सुमूल सम्यक्त गुन।
सम्यक सिवतरु मूल मुक्ति मारग सु पुन।।११।।

कुंडरिया

दरसन करिकैं हीन हैं धरैं जती कौ नांउ।
दरसन धारी सौं कहैं परौ हमारे पांउ।।
परौ हमारे पांउ तजै निजु मारग ठौरा।
जे नर मर कर हौंहि निपट लूला अरु बौरा।।
कबहू फुरै न ज्ञान कष्ट सहिवैं बहु वरसन।
तिन्हि कौं देवीदास कठिन हूवौ समदसरन।।१२।।

सवैया इकतीसा

एकै औसे कुगुरु कौं नमैं आपु अकलिसौ एकै नमैं जानि एकै लज्या सात आठ के।
एकै नर नमत बडाई नाम करम कौं एकै भय मानि भरे सरम उचाट के।।
तिन्हि कौं न बोध आइ पाप करैं हर्ष पाइ दया कौं कठोर मिथ्या मद मोह माट के।
कहत संतोष जेते जन ऐसी क्रिया करें धोबी कैसे कूकरा न घर के न घाट के।।१३।।

तेईसा

अंतर बाहिर जदो परकार परिग्रह त्यागि प्रमान करे हैं।
भंजत भोगस्व जोग विचारत संजिम भावहु दै सुधरे हैं।।
निर्मल सुद्धपयोग दसा करि कैं दुर कूर कुभाव हरे हैं।
सम्यकवान सु हैं परधान जथारथ जे मुनि जानि परे हैं।।१४।।

सम्यक भाव जगैं उर अंतर ग्यान कला उपजै अतिभारी।
ग्यान कला उपजै सब आनि भये सुपदारथ प्रापति कारी।
प्रातिति होत पदारथ की सुपदारथ साधि दसा निरवारी।
जो सु दसानि नवारत ही सु भए परमारथ कारज कारी।।१५।।

अरिल्ल

श्रेयाश्रेय विचार करत अवधरत मन।
छेदन हार कुसील सील संजुक्त जन।।
सीलवंत जग माहि लहत अदभुत सुफल।
मुक्तिपुरी कौ राज बहुरि पावत अटल।।१६।।

गीतिका छंद-पलिगवंध

नर वचन जिनवर परम औषधि मोहद्वार उदगरन।
नरगति इक सुख दान विषय उपाधि व्याधि सुहरन।।
नर सै अभव्य ह्वै सुअमृत तुल्य सब सुख करन।
नर है सु पीवत रोग दुद्धर जरा-जनमन-मरन।।१७।।

चौवीसा

पहिलौ लिंग जानि इक दरसन जिन स्वरूप मुद्रावत भारी।
लिंग अवर दूसरौ सरावग दरसन एकादस प्रतिमाधारी।।
दरसन *लिंग तीसरौ सोहै सहित अर्जिका कै व्रत नारी।*
दरसन *विषैं रहित पुनि चौथौ लिंग उक्ति जिन ग्रंथ उतारी।।१८।।*

छप्पय

चेतनि पुदगल धर्म दर्व कहिए अधर्म पुनि।
काल दरव नभ षष्ट सप्त परकार तत्व सुनि।।
जीवाजीव आश्रव सु बंध संवर सु निर्जरन।
मोख पाप अरु पुण्य एह नव पद प्रमान भन।।
षट् दर्व काल करि कैं रहित गंच अस्तिकाया सु इय।
सरदहन जासु घटयहु अटल भवि सम्यकदिष्टी सु जिय।।१९।।

चर्चरी छन्द

जीव आदि दै सु तत्व सर्द है भाई।
जानि सो दिष्टि वीतराग जू बताई।।
एक बेबहार एक धू प्रभा गूझै।
होत ही सुदिष्टि जीव कौ स्वरूप सूझै।।२०।।

मरहठा छन्द

श्रीजिनवर बानी उक्त बखानी सुनौ सुद्ध गुनवंत।
यहु सम्यकदरसन परम सपरसन कीजै हृदै तुरंत।।
रतनत्रय मंडित परम अखंडित हूजे गुननि प्रधान।
जग मैं गुन भारी सब सुखकारी पहिली सिव सोपान।।२१।।

गीतिका छंद

तप चरन व्रत संजिम क्रिया सब सक्ति माफिक कीजिये।
बेसक्ति की करनी सुकरि सरदहन उर धरि लीजिये।।
सो परम साखि सुनौं भविक जन कथित श्रीभगवंत जू।
सरदहन जासु हृदै सु नर वर समकिती सो संत जू।।२२।।

बेसरी छन्द

दरसन ज्ञान चरन परिपूरे मंडित विनय परम तप सूरे।
गौतमादि गनधर गुन भारी जे नर वंदनीक सहकारी।।२३।।

सवैया इकतीसा

जाके उर सहज स्वरूप ज्ञान भान जग्यौ मोह अंधकार के समस्त ठौर नसे हैं।
वीतरागभाव धारि कें असुद्धता विदारि के सुद्धता सुतीति आप सौं सु आप रसे हैं।
तिन्हि की प्रतिज्ञा जे न मानैं महामूढ प्रानी देखत तिन्हैं सु अहंकार माहि धसे हैं।
तेई बंचि आपनो स्वरूप मिथ्याचारी जीव बसै सदा लोक मैं कुबुद्धि पास पसे हैं।।२४।।

पद्धडी छंद

जे पुरिष सुरासुर वंदनीक संजुक्त सील संजिम सु ठीक।
तिन्हि देखत जे नर करत क्रोध दुल्लभ तिनिकौं सम्यक्त बोध।।२५।।

दोहरा

संजिम स्वगुन सम्हारि बिनु राग न दिगंबर भेस।
तप संजुक्त जिनुक्त भनि वंदनीक सुन लेस।।२६।।

साकिनी

बंदौं परम तपस्या पूरन सीलवंत गुन भारी।
बंदौं ब्रह्मचर्ज गुन मंडित मुक्ति गमन सहकारी।।
तपसी सीलवंत जो प्रानी परम सुद्ध उपयोगी।
जो प्रनीत नर बंदनीक वर ठीक परम रस भोगी।।२७।।

नाराच छंद

न बंदिए सरीर बंदिये नहीं कुलीनता।
न बंदिए सुजाति जातिवंत की प्रवीनता।।
न बंदिए असंजमी मुनि सुदोष धाम हैं।
न बंदिए सराउगै नहीं सु आप ठाम हैं।।२८।।

कवित्त

चौंसठि चंवर सहित पुनि अतिसय अरु चौंतीस विराजै।
प्रतीहार्ज विधि अष्ट चतुष्टय जे अनंत छवि छाजैं।।
रहित अठारह दोस निरंतर बहु जीवनि हितकारी।
जो भगवंत कर्म छय लच्छन कौं निमित्त अतिभारी।।२९।।

दोहा

ग्यान दरस तप चरन गुन संजिम सहित सुजंत।
मुक्ति हेतु यहु चारि विधि कह्यौ भाषि भगवंत।।३०।।

कवित्त छंद

सदगुरु कहैं भव्य जीवनि सौं तुम कहु एक ज्ञान गुनसार।
परगट होत ग्यान उर उपजत अरु पुनि गुन सम्यक्त अपार।।
सो सम्यक प्रकार करि आवत चरन हरन दुर्गति-दुखरार।
आवत चरन नरन भव छावत पावत जब समद्र भव पार।।३१।।

अरिल्ल

प्रगट्यौ सम्यकज्ञान प्रगट सम्यक दरस।
प्रगट्यौ तप सम्यक्त चरन प्रगट्यौ सरस।।
चारि जोग सम एक जहा सोहै धरम।
निसंदेह सो सिद्ध जीव कहिए परम।।३२।।

तेईसा

सुद्ध अनूप अखंडित सार हदै तिन्हि के समदिष्टि प्रकासी।
सो वह दिष्टि महा उतकिष्ट सुमंगल की करता अविनासी।
सेवइ ताइ सुरासुर राइ धरै उर ध्याइ बिना इह रासी।
सो महिमा बरनी सुत संत सुछंद कवित्त माहि जरा सी।।३३।।

गीतिका

जग माहि सुकृत उदोत करि भवि जिय सु नरगति आवही।
पुनि ऊँच गोत मिलै जहां कुल परम उत्तिम पावहीं।।
जह जगै समकित भाव निरमल दिष्टि सो सासी दसा।
निरभै सुछंद भयो जिया[1] जब जाइ सिवपुर कौं धसा।।३४।।

रोडक

जब जिनि करत विहार सहस वसु लच्छन मंडित।
जुत अतिसय चउतीस अखिल गुन सहित अखंडित।।
सो प्रतिमा थामर विसेष जिन आगम मांही।
अचल मान थावर तथापि सो जंगम नांही।।३५।।

छप्पय

द्वादस विधि तप जुक्त मुक्त विधि बल सु कर्म किय।
मन वच तन बल आदि प्रान परसंग छोड़ि जिय।।
जे ततछनि निर्वान लहत उतकिष्ट सर्व सुख।
जन्म जरा अरु मरन आदि खय करि सुदोस दुख।।
केवल प्रबोध दरसन उदित अचल अनंत प्रताप गन।
क्रम कमल जासु वंदित भविक लहत सुख स्वर्गति सुधन।।३६।।

दोहरा

कुंदकुंद मुनिराज कृत दरसन पाहुड देख।
कीनैं तासु परंपरा भाषा छंद विसेख।।३७।।

---

१. मूल प्रति में "भिया"

(१५) तीन मूढता अरतीसी.

दोहरा

महावीर गंभीर गुन वंदौं त्रिविधि प्रकार।
देवशास्त्र गुरु मूढ कौं करौं प्रगट निरधार।।१।।

भाव द्रव्य जग महि प्रगट, पुनि परोक्ष परतक्ष।
लोक क्षेत्र अरु काल सठ लखौ सप्त विधि दक्ष।।२।।

सात-सात विधि तीन हूँ एक बीस एकत्र।
सुनौ संत वरनौ सु पुनि निज मारग हन सत्र।।३।।

चौपही छंद

सर्व देव जेते जग मांही जामैं और भेद कछु नांही।
इक चित होई सुवंदन हारौ सो सुर भाव मूढ निरधारौ।।४।।

देव सहित आभरन सु मांनै सेवा कहो प्रतीति उर आनैं।
मन वच काइ करै तसु पूजा द्रव्य देव मूरखि सो दूजा।।५।।

पूजै कुल सब देवनि केरा उर अंतर विकलपी घनेरा।
रहै मगन जाके रस भींजौ सो परोक्ष सुर मूरिख तीजौ।।६।।

हरि हरादि पूजै नित देवा जानै मानिन मैं स्वयमेवा।
यहु परिनमन ह्रदै तसु आवै सो प्रतक्ष सुर मूढ कहावै।।७।।

वंडिनि-मुंडिनि के रस याग्यौ भक्ति छेत्र पालादिक लाग्यौ।
धन सुतादि त्रिय कारन डोलै पूजै प्रगट अवांई बोलै।।८।।

इहि प्रकार जाकौ मनु दौरै मगन आपु उपदेसत औरै।
सुनौ संत रुचिवंत कहानी लोक देव मूरिख सो प्रानी।।९।।

जिनमंदिर अथवा घर होई जिनप्रति छांडि अपूजक सोई।
तीरथ जाई बिनैकरि भारी छेत्र देव सठ मारगधारी।।१०।।

छांडि काल बेरा सुदि पावै सरतैं आपु दिवालै आवै।
पूजा भक्ति करयौ तिहि चहिये कालदेव मूरिख सों कहिये।।११।।

दोहरा

सात भाँति परगट कहे देव मूड के भेद।
अब वरनौं गुरुमूढ तुम सुनौ सुधी तजि खेद।।१२।।

चौपही छंद

बाहिज व्रती हिदै मिथ्याती ताहि मांनि गुर कहै सघाती।
इहि प्रकार परनति जह लीजे भाव मूढ गुरु नर सु कही जै।।१३।।

सम्यक हीन-हीन व्रत ठीकौ बाहिज-आभ्यंतर अति फीकौ।
ताकौं मांनि होहि गुरु चेला सो नर द्रव्य मूढ गुरु मेला।।१४।।

गुरजन मानत तेसु प्रतग्या मानैं क्यौं न जासु हम अग्या।
इहि परिनमन सहित सुनु ग्याता सो परोछ गुर मूढ विख्याता।।१५।।

स्वेत पीत पट पहिरन हारौ जोरत दाम परिग्रह भारौ।
चेला इहि प्रकार गुरकेरा सो प्रतच्छ गुर मूढ नबैरा।।१६।।

लोक रौंस सौं कुगुरु कुसेवै करि उपदेश आपु पुनि सेवै।
यह करनी संयुक्त विसेखौ सो गुरुलोक मूढ उतपेखौ।।१७।।

करै विहार अहार वसेरा जा गुर उर विकलप बहुतेरा।
समाधान कारन यह जागा कालु गमावत यह सुख लागा।।१८।।

यह परनति संयुक्त सुहेरौ जासौं कहै सुहै गुरु मेरौ।
सज्जन निज सुदष्टि करि देखौ छेत्र सुगुर मूरिष करि लेखौ।।१९।।

जो गुरकाल प्रजादा छांडै षटु आवास क्रिया पुनि मांडै।
सरतैं आपु असन व्यौहारी नगन दिगंबर मुद्राधारी।।२०।।

जाकौ सुगुर मानि संतोषै नहीं विचारि सकै गुन दोषै।
सहित जैन द्रग जे परखैया काल मूढ गुर लखौ सु भैया।।२१।।

दोहरा

देव मूढ गुर मूढ कौ कह्यौ भेषि विरतंत।
अब वरनौ श्रुत मूढ कौ सुनौं भेद गुनवंत।।२२।।

चौपही छंद

गुनस्थान द्वादसै बतायो सुकल ध्यान कौ दूजौ पायो।
अवीचार एकत्व वितर्की भावसूत्र परनति तह सर्की।।२३।

अव सुनि भाव मूढ श्रुतज्ञानी वरनौं जिहि विधि ग्रंथ बखानी।
श्रुत सिद्धांत पढै बहुतेरा निर्मल तासु जगै न सबेरा।।२४।।

प्रगट आदि अष्टम गुण ठाना एकादस परजंत बखाना।
बालक तरुन सुनौं भवि बूढा यहु विरतंत[1] भाव सुत मूढा।।२५।।

---

१. मूल प्रति में "विरदंत" पाठ है।

एकादसम अंग कौ पाठी अंतर मिथ्या दिष्टि सुठाठी।
जदपि सप्त तत्वारथ भासै नव पादारथ भेद प्रकासै।।२६।।

षटु सुदरव पंचासति काया उतपादादि[1] त्रिगुन तिन्हि पाया।
हेय उपादे तिन्है न सुझै द्रव्य सूत्र मूरिष सु समूझै।।२७।।

करनी करिन के सिव सौंही वेदनहार सुभासुभ यौंही।
प्रगट चराचर ग्रंथनि घोकौ सो परोक्ष श्रुत मूढ विलोकौ।।२८।।

पढै आपु औरनि सुपढावै परख रहित कछु भेद न पावै।
बाहिज कथन कथत बहुतेरौ सो प्रतच्छ श्रुत मूढ वसेरौ।।२९।।

वंस वृद्धि धन काज निदाना सुनै सुहरिवंसादि पुराना।
औरनि कौं उपदेस करंता लोक सूत्र मूरिख सो जमंता।।३०।।

सप्तधातु जागा जिहि फैली अंतराइ संयुक्त सुमैली।
जिहि अस्थान ग्रंथ आरंभै करैं अजान लोग लखि डंभै।।३१।।

अस्त्री वेद नपुंसक दौनौं तिन्हि कै बीच पड़ै मति रौनौं।
मुरिख तिन्हैं सुनावै बातैं छेत्र मूढ श्रुत कह्यौं सुखातैं।।३२।।

पढै सूत्र तजि काल प्रजादा जह उपजै परतक्ष प्रमादा।
इहि प्रमान जो श्रुत आचरता काल मूढश्रुत मति कौ धरता।।३३।।

ये इकईस[2] भाव तिन्हि पोखै जे नर जैन पंथ मैं दोखै।
देवसास्त्रगुरु मूरिख तीन्हौं तिन्हि सम्यक्त भाव ग्रसिलीनौं।।३४।।

यहु परिनमन गयो तिन्हिकेरा सम्यक महल विषै त्रसु डेरा।
तिन्हि तैं और न परम विवेखी तिन्हि जिन नीति प्रगट करि देखी।।३५।।

दोहरा

सुनत महासुख ऊपजै जामैं रंच न गूढ।
भाषा करि परगट कहें देवधर्म गुरु मूढ।।३६।।

ग्रंथ उक्ति देखी प्रगट कही भाखि जिहि ठौर।
कान मात पद अरथ घटि धरि लीजौ बुध और।।३७।।

ग्रंथ अरथ छवि छंद की मूरति कला न पास।
सैली बिनु मैली भई गति मति देवियदास।।३८।।

---

१. मूलप्रति में "उपदादिदि"
२. इक्कीस

(१६) बुद्धि बाउनी[1]

छप्पै

बंदौ जिनवर भूत भविष्यत वर्त्तमान वल।
बंदौ रहित सुसिद्ध दर्व नौभाव कर्ममल।।
बंदौ ते आचरत पंच-आचार परमगुर।
बंदौ ते उवझाई धरत उर हरत मोह जुर।।
वसु बीस मूलगुनगन सहित बंदौ साधु-समूह नित।
सज्जन सुपंथ मूरिख कुमग भाषा करि वरनौं कवित।।१।।

दोहरा

देह-खेह की कोथरी महादुख अंकूरि।
जे यह सौं विरचै रचैं सुख-दुख भुगतैं भूरि।।

सवैया तेईसा

खेह कौ कंद महादुख फंद भ्रमै जग मैं जन याके सनेही।
घातौ है कर्म उपाधि विषै रस भोग विनस्वर कारन ये ही।।
चेतनि सिद्ध स्वरूप सदा जब कर्म उपाधि घटै घट तेही।
सज्जन पोषत सुद्ध दसा सठ पोषत या अपनी करि देही।।२।।

दोहरा

मूरिख मिथ्यादिष्टि सौं सज्जन सम्यक नैन।
गुर उपदेस कहैं गहौ यहु निज मारग अैन।।

तेईसा

सेवहु एक सदा अरिहंत सुधी निरगंथ व्रतीगुर मानौं।
धर्म धरौ उर मांहि दया जुत श्री जिनभाषित ग्रंथ वखानौं।।
मोख-दसा न जगी जबलौं तबलौं कछु और की और न जानौं।
सम्यकभाव जगै वर मोख कहै गुर यो उपदेस पिछानौं।।३।।

दोहरा

नहीं अबै अरिहंत पुनि नहीं सुगुर निरगंथ।
कहै सिष्य किहि भांति सौं गहिये सरधापंथ।।

गुरु-उत्तर

तेईसा

आलस छोडि निरालस हो जिन सासन कौ भविभ्यास करौ रे।
दुर्जन कौ परसंग तजौ गुनवंतनि कौ सतसंग धरौ रे।।

---

१. रचना काल-सं. १८१२ चैत्तसुदी परमा गुरुवार कैलगमा ग्राम दुगोडह मज्झे।

देव सुदेव सही गुरु सो गुरु धर्म सुधर्म अराध खरौ रे।
औरव नाउ नही जग ताल मैं पंचम काल कौ भौर पर्‌यौ रे।।४।।

दोहरा

फिरि बहुर्‌यौं बौलै सुगुरु कहै बात समुझाइ।
भैया पंचम काल कौं डरु करि मति कचियाइ।।

सवैया तेईसा

पंचम काल तौ काल सही कछु पंचम काल न जीव कौ लच्छन।
औसर पाइ जगै जब ज्ञान सुचेतनि तौ चिरकाल वि जच्छन।।
उत्तिम काल मिलैं जड दर्व सु तौ पुनि चेतन हो तसु दच्छन।
सम्यक दिष्टि नहीं जब लौं तब लौं जिय कौं अनभौ सुप्रतच्छन।।५।।

दोहरा

सेव कही अरिहंत की गुरु उपदेस मझार।
सो कैसे अरिहंत पुनि पूछत सिष्य विचार।।

कवित्त तुक्कसकौ

नास करे जिनि चारि हैं कर्म अनंत चतुष्टय प्रापति केवल।
जोग धरे उर सार हैं धर्म सु संत पुनीत महामति केवल।।
भोग डरे भव जार है भर्म समंत सदा सुख भावत केवल।
लोक तरे यहु पार हैं पर्म सु अंत करे जग पावत केवल।।६।।

दोहरा

अब निरगंथ कहौं जती परम सुद्ध पद लीन।
आचारज उवझाइ पुनि साध परम गुर तीन।।

कवित्त तुक्कसकौ

दंसन ज्ञान चरित्र सु लीन सुवीरजवंत तपै धुअ आरज।
है परधान पवित्र प्रवीन सु ते गुरु संत जपै होइ कारज।।
सो अरि जानत मित्र सु वीन लहैं भव अंत सु है भव तारज।
ध्यावत ध्यान विचित्र सु छीन दया सब जंतनि पै सु अचारज।।७।।

दोहरा

निर्विकार निर्भय निपुन महा परम सुख कंद।
निर्विकल्प निरमल सुगुरु वरनौं परमानंद।।

कवित्त गतागत

[1]माजत जे लखि जोति गहीर रही गति जोखि लजे तज मा।
मानत खेल सुधी तन जासु सु जानत धीसु लखे तन मा।।
मा हर जीव पसार सु नीमु मुनीसु रसा पव जी रह मा।
मारग जो सुख मोह रचै न नचै रह मोख सुजोग रमा।।८।।

दोहरा गतागत

सुधी निपुन गुरुवर नऊं नरवरु गुन पुनि धीसु।
सुखी सरन अरि कस करैं कस करि अनरस खीसु।।

कवित्त गतागत

मास रहैं वन चार अपीत तपी अरचान बहैं रसमा।
माछर भाव तजे सवहैं स सहैं वस जे तव-भार छमा।।
मार हनैं जित तेह नमौं सु सुमौं नह ते तजि नैंह रमा।
मानत जे तप आनि धरे त तरे धनि आप तजे तनमा।।९।।

दोहरा कटारबंध

[2]दुरित हरन नर हरत मन नमत चरन गुनवंत।
विगत करन नरक सु गमन न मग कुटिल सुमहंत।।

छप्पय कमलबंध

मंडित परम स्वजोग रहे समकित समूह पग।
विमुख रहत परभोग जानि करि कैं असार जग।।
अंतरंग बहिरंग दया तिन्हि कैं प्रकार ढिग।
दो प्रकार कहि संग रहित मरजात सहित दिग।
इव साधु चरन कमल नखजुग नमित सुरासुर पति सु खग।
चित्त तासु परम अविचल अडुग सम सुजानि सुमेर नग।।१०।।

दोहा तुकगुपत

[3]तजी विभव न सरन गहत तकि सुर सिव रस नीत।
तनी सरवसि रसु कित तह गन रस नव भवि जीत।।

---

१. यह पद जोग पच्चीसी में भी उपलब्ध है। दे. क्रम सं. २/११/११
२. यह दोहा विवेक-बत्तीसी में भी उपलब्ध है। दे. क्रम सं. २/१३/२०
३. यह दोहा विवेक-बत्तीसी में भी उपलब्ध है। दे. क्रम सं. २/१३/२२

कवित्त गतागत

[1]तीरथ गंग विही नर साप पसारन ही विग गंथ रती।
तीपथ सादत संघ अदोष षदो अघ संत दसाथ पती।।
तीमग मैं वसि कैं सिधरेसु सुरे धसि कैं सिव मैं गमती।
तीजग जोनि तजी नव रासि सिरावन जी तनि जोग जती।।११।।

दोहरा

सिष्य ब्रह्म पूछै सु फिरि सदगुरु कहै बहोरि।
एकादस मैं अंक तैं आदि अंत सौं जोरि।।

प्रश्न-उत्तर

तेईसा

देत कहा बुध की पदवी सिव की असथान करैं मुनिरान।
कौनु हरै तम को नृप इंद्रिनि कौ अरु कौन घिनावन जान।।
तारन कौन कहा खरचैं नर देखि कपूत डरैं कह आन।
जाइ धरैं गुरु का वन मांहि सदा जब भाम तजै धरि ध्यान।।१२।।

दोहरा

बानी जिनवर देव की सप्तभंगमयसार।
तिन्हि के घट प्रगटी सु ते बरनौं परम उदार।।

सवैया इकतीसा

जाके घट वसै जिनवानी सो पुनीत प्रानी जाकैं उभै भांति की दया समस्त हियै हैं।
जाकी मति पैनी भेद स्वपर प्रकासिवै कौं भिन्न-भिन्न करै छैनी को सुभाव लियै हैं।।
पर सौं ममत्व टारि कै सु धरै निज भाव परम उछाउ सुद्ध रसपान कियै है।
जाकैं भ्रम नाहीं पगे निज ज्ञान माहीं सो तौ गुन कौ अथाही सत्य ही सौं चित्त दियै है।।१३।।

दोहरा

सत्य प्रतीति दसा जगी तिन्हि के हृदै समंत।
तिन्हि की सत संगति कहौं सुख दातार अनंत।।

तेईसा

जीरन जासु कषाय विषै मुख भाखत जे कहि तत्व छऊ रे।
जे निज मारग कौ उपदेस करैं भ्रम भीति जहान अनू रे।।

---

१. यह पद जोगपच्चीसी में भी उपलब्ध है। दे. क्रम सं.-२/११/१०

सम्यकदिष्टी जगी जिन्हिकै वर जानि लख्यौ सुपदारथ धूरे।
या जग में जिन्हि संतन की सतसंगति मैं सुख सौं रहिबू रे।।१४।।

दोहरा

तिन्हि कौ उर अंतर लरम परम धरम रस रीति।
फिरि तिन्हि संतनि की कहौं संगति परम पुनीत।।

तेईसा

जे विकथा सुनिवै बहिरे परदूषन जे न कहैं कबहू रे।
पावत लेत जहा गुन खोजि सुखीक महा सु अखै निधि पूरे।
एक सदा समभाव रहै इक जानि लखै अरि मित्र हितू रे।
या जग में जिन्हि संतन की सतसंगति मैं सुख सौं रहिबू रे।।१५।।

दोहरा

बूझत सदगुरु सौं बहुरि सिष्य अवर उखलेद।
जुदौं-जुदौं करि कैं कहौं सुनो संत वसु भेद।।

तेईसा

कौन सुधी कवि को रुचिवंत कहो पुनि भव्य सु को जग मांही।
को समुझाई जती सु कहौ पुनि सम्यकवंत कहावत कांही।।
ग्याइक को सु कहा पुनि मंजन अंजन मैं समझ्यौ पुनि नाहीं।
बुझत सिष्य कहौ गुर बात हमैं अतिगूढ दिखात अथाहीं।।१६।।

दोहरा

सिष्य सुनौं उत्तर कहै गुरु उपदेसनहार।
भिन्न-भिन्न समुझाइ कैं सो पुनि अष्ट प्रकार।।

तेईसा

ग्रंथ प्रनीत कहै सु सुधी कवि सो रुचिवंत सुधर्महि बूझै।
सो भवि ताहि लगै उपदेस जती सुपरिग्रह सौं न अरूझै।।
सम्यकवंत सु है सरधा जह ग्याइक सो निज तत्व समूझै।
मंजन सोइ मजै उर अंतर अंजन सोइ निरंजन सूझै।।१७।।

दोहरा

सुमति अंगुली करि अंजै अंजन सदगुरु वैन।
मोह तिमिर फाटै जबै प्रगटै अंतर नैन।।

तेईसा

सुद्धपयोग महाजल सौं मल पाप सु पुन्य हरै करि मंजन।
राग विरोध विमोह निरंतर अंतर होत जगै जग भंजन।।
निर्मल दिष्टि जगै जब अैन लगै गुरु वैन हदै द्रग अंजन।
सो सिवरूप अनूप अमूरति सिद्ध समान लखै सु निरंजन।।१८।।

दोहरा

अनुभव सुद्ध स्वरूप को होत घटै थिति कर्म।
मिटै मोहिनी कर्म की सात प्रकति को भर्म।।

तेईसा

सिद्ध समान लखै जब आतम सात मरैं प्रकतैं गुन घातन।
सात गहैं जब लौं अपनो घरु काज सरैं जब लौं सुन वातन।।
वातन की समझै जब चौज हियैं दुरगौज मिथ्यात विलातन।
राग विरोध विमोह घटैं घटिका पुनि दो न लगैं सिव जातन।।१९।।

दोहरा

सम न होत पुनि भवन तजि सम्यकदिष्टी जीव।
जे वरनौं सिव पंथ मैं अनुभव विषैं सदीव।।

छप्पइ सर्वलघु

परम धरम धन लखत चखत न, न तन तरवर फल।
समर समय वर भजत तजत पर मन वच तन बल।।
अभय बखत भर वढत सरस पन समय-समय पल।
अगम अकथ गन चढत नसत जग भरम करम मल।।
उर सरल अमल पर पन अटल करन सकल अधरम पतन।
अपवरग सहज परसत समन परगट बल अनभव रतन।।२०।।

दोहरा

मगन सदा समरस विषैं पगन चाम सौं नांहि।
जे सदबुद्धी समरसी पुनि वरनौं जग मांहि।।

सवैया तेईसा

जे सरवज्ञ समान स्वरूप सदा निरधारि धरैं उर अंतर।
राग विरोध विमोह दसा भ्रम भोग विलास उदास निरंतर।।
देखि समान सुभासुभ कर्म विसेष मती न दवैं सु कुजंतर।
जे दिढ आतमग्यान क्रिया सिव सुख लहैं अगिले सुभवंतर।।२१।।

दोहा

सिवपद सुक्ख प्रकासिनी सुमति वधू जग मांहि।
अब जाकी महिमा कहौं मूरिष कै घट नांहि।।

सवैया तेईसा

सा चिय सुंदरि सील सती सम सीतल संतनि के मन मानी।
मंगल की करनी हरनी अघकीरति जासु जगत्र वषानी।।
संतनि की परची न रची परब्रह्म स्वरूप लखावन स्यानी।
ज्ञानसुता वरनी गुनवंतिनि चेतनि नाइक की पटरानी।।२२।।

दोहा

दरसन ज्ञान चारित्र मय चेतनि परम प्रधान।
और पदारथ जगत महि जे सरवंग अजान।।

दर्शनमहातम

छप्पइ

अतुल सुख दातार सर्व मंगल तरु वीरज।
भविजन तिन्हि कौं पोत सिंधु तारन भवधीरज।।
विघन वृक्ष तसु हरन महातीछन कुठारमय।
तीरथ दान प्रमान पुन्य परधान हरन भय।।
इम सुख सुधा द्रग पिवत घट होत सरल वर मोख मग।
जसु इहि प्रकार वसु जाम भनि समदंसन जयवंत जग।।२३।।

दोहा

सदबुद्धी तिन्हि कै ह्रदै भेद ज्ञान भरि पूरि।
वरनौं ते सुकवित्त मैं अल्प भेद गुन मूरि।।

सवैया इकतीसा

अघ अंधकार हरिवे कौं हंस रूप मोख कमला प्रकासिवे कौं कमल प्रमान हैं।
मदन भुजंग रोकिवे कौं मंत्र अवगाढ चित्त नाग रोकिवे कौं केहरी भयान हैं।।
टरत कुविघ्न जैसें हरत समीर घन विस्व तत्व लखिवे कौं दीपक समान हैं।
विषै मीन रोकिवे कौं होत महाजार अैसे ज्ञानकौं अराधै सोइ पुरिष महान हैं।।२४।।

दोहा

कालु पाइ तिन्हिकै जग्यो वर विवेष अंकूर।
जिन्हिके घट वरतै सदा चारि भावना भूर।।

छप्पय

जिया जोनि जग मांहि सर्व देखत सु मित्र सम।
तिन्हिकौं करत प्रमोद आपतैं गुन गरिष्ट गम।।
दुखित वान दुरबल बिलोकि करुना धरंत मन।
आराधै न विरोध ते सु दुरजन विलोकि तन।।
जग मांहि जेह जैंनी पुरिष चारि भावना मन धरत।
पूरन प्रताप लखि आप बल परम भाव परगट करत।।२५।।

दोहा

चरन वृक्ष करिकैं जहां करैं संत विश्राम।
भव दुख तपन बुझाइ तह लहत परम सुख धाम।।

सवैया इकतीसा

व्रत मूल संजिम सकंध वंध्यौ जम नीयम उभै जलसींच सील साखा वृद्धि भयो है।
समिति सुभार चढ्यौ बढ्यौ गुप्ति परिवार पहुप सुगंधी गुन तप पत्र छयो है।।
मुक्ति फलदाई जाकै दया छाह छाई भअै भव तप ताई भव्य जाइ ठौर लयो है।
गयो अघतेज भयो सुगुन प्रकास अैसो चरन सुवृक्ष ताहि देवीदास नयो है।।२६।।

दोहरा

समिता निज चारित्र गुन धर्म एक रसरंग।
इनि तीन्हौं की एकता कहौं सुनो सरवंग।।

छप्पै

धर्म सोइ चारित्र धर्म समिता रस मंडित।
धर्म सुद्ध परिनाम धर्म परभाव विहंडित।।
धर्म क्षमादिक मूल धर्म संसार निरासक।
धर्मसार जग मांहि धर्म अरि कर्म विनासक।।
जयवंत धर्म धन धुअ सबल तीनि लोक महि पुनि परम।
प्रनमौं सु धर्म कर जोरि जुग होहु धर्म रक्षक सु मम।।२७।।

दोहा

धर्म अनेक प्रकार है अरु पुनि एक प्रकार।
स्यादवाद वेदी पुरिष करैं धर्म निरधार।।

छप्पय

धर्म महातम धर्म सर्व सुख खानि धर्म धन जन हित कारन।
धर्म विवुध ता चिन्ह धर्म सिव स्वर्ग सिधारन।।

दया मूल ध्रुव धर्म-धर्म सम है न मित्र पुनि।
धर्मवंत तह रिद्धि-सिद्धि प्रापति अनेक गुनि।।
भ्रात सु और जगमांहि प्रिय लख्यौ नहीं वर धर्म सम।
प्रनमौं सुधर्म कर जोरि जुग होहु धर्म रक्षक सु मम।।२८।।

दोहा

धर्म हीन वरनौ सु नर यह संसार मंझार।
जे मूरिष मिथ्यामती पसु सम नर अवतार।।

छप्पय

ज्यौं जुवतिय बिनु कंत रैनु बिन चंद जोतिभर।
ज्यौं सरतोइ न होइ लच्छ जिम हु न सून घर।।
ज्यौं गजराज प्रवीन हीन दंतनि सु न सोहत।
मुकताहल बिनु पानि ताहि गुनवंत न गोहत।।
जिम सैना नरपति हीन कहि परम लता बिन पहुप हुव।
जिम या नर भव निरफल भईय जिनि जन कै नहिं धर्म ध्रुव।।२९।।

दोहरा

एक कवित्त विषै कहौं अर्थ दोइ सुनु संत।
मूरिष अरु मति मंद कौ जुदै-जुदौ विरतंत।।

सवैया इकतीसा

परम दसा मैं रहैं भरम न भोग गहैं, जे नर मलीन उर गुनहीन नर हैं।
करम दमंत समरस मैं मगन, सदा मारग न राचैं दुरबुद्धि उर धरहैं।।
सो समन माहि जाकै राग हैं न दोष, भाव जाकौं सुख लेस नांहि नांहि लोक तरहैं।
कहै देवीदास तन मानै निज मारग मैं राचे संत, कुधी जे न जानत सु परहैं।।३०।।

दोहा

सुगुरु कहै सज्जन सुनौं दुरबुद्धिनि की दौर।
गहि कुपंथ विपरीति मग कहत और की और।।

तेईसा

मारग छोड़ि कुमारग होत नहीं तिन्हिकैं द्रग दिष्टि पुलासी।
सुंदरि सील सुबुद्धि सखी तजि सेवत पापि दुर्मति दासी।।
आतम सुद्ध दसा न सम्हारत मानत झूठ क्रिया करि सासी।
या भव नग्र विषै नर जे सठ अम्रत छांड़ि पियैं विष आसी।।३१।।

दोहा

संपति ग्रेह सरीर मैं मगन महामद मस्त।
मूरिख मरमु न जानहीं निज स्वरूप परवस्त।।

तेईसा

कर्मनि कौ न विचारत स्वांगु मदे मनु मोह मिथ्यात मैं हूले।
रोवत देखि अनिष्ट पदारथ इष्ट पदारथ देखत पूले।।
संपति ग्रेह सरीर विषैं ममिता रस के वस होकरि झूले।
या जग माहि महा विपरीति अचेतनि के संग चेतनि भूले।।३२।।

दोहरा

विषै भोग के लालची अंतर हृदै मलीन।
वरनौं ते बहिरातमा करम रोग अधीन।।

तेईसा

भेष धरैं न मुनीश्वर कौ सुविवेख न रंचहि ये महि आनैं।
जोरत दाम कहावत नाम जती विपरीति महा अति ठानैं।।
अंबर छोडि दिगंवर होत सु अंमर फेरि ग्रहैं तजि आनैं।
जे सठ आपु करैं सठ औरनि जे सठ लोग तिन्हैं गुर मानैं।।३३।।

दोहरा

महाव्रती सु न अनुव्रती सम्यकती सु न कोइ।
कहिए दुरलिंगी पुरिष अंतरदिष्टि न होइ।।

तेईसा

भेष धरै मुनिराज पटंतर आसन मारि महाव्रत ठानैं।
मंत्र महासुनि कैं वसु भेव करावत सेव महासुख मानैं।।
सो व्रत छाडि परिग्रह जोरि भला जन नैंकु हिए महि आनैं।
वंचत लोगनि भोगनि हेत परे भवसागर मैं सु अयानैं।।३४।।

दोहरा

लीन विषैं रस भोग सौं दीन भए विललात।
मिथ्यामती असंजमी कहौं अधम उतपात।।

सर्वगुरु

सवैया

सासी सूधी जानैं नांही लाग्यौ झूठी काया माहीं पापारंभी डंभी आपा माया ता मैं हूल्यो है।
देखैं ते बेरूपी पोटी रोवे सोवै राजी होवे नौंनी नीकी मीठी साता सोभा देखैं फूल्यौ है।।

रागी दोषी मोही क्रोधी मानी माया लोभी हिंसारूपी चिंता चारी भारी झूला झूल्यौ है।
जैनी कैसी मुद्रा धारें दैनी देतौं जीतै हारै ऐसो मिथ्यावादी सो वेदादी होकै भूल्यो है।।३५।।

दोहरा

गुन विस्तारैं आपनै प्रगट करैं परदोष।
पराधीन बहिरात्मा जे वरनौ निरमोष।।

कुडरिया

सम्यकती के चिह्न जे जानत नांहीं रंच।
रागदोष परनमन जुत क्रोधादिक परपंच।।
क्रोधादिक परपंच सुद्ध करतूति न जानैं।
पुन्य कर्म उतपत्य सत्य सिवमारग मानैं।।
जैसै बालक महुरि मानि गौरा की चिकती ।
तैसें कहै अजनि मान हम हैं सम्यिकत्ती।।३६।।

दोहरा

पुदगलादि परवस्तु सौं रागदोष अरु मोह।
कहौं सुक्रिया कलेस सौं करत मुक्ति की टोह।।

मूढक्रिया

तेईसा

मोह महामल कौं न मले अरु राग विरोध हरे न हरामी।
कर्मनि के खय कारन हेत करैं तन दंड जरावत चामी।।
मारन चाहत हैं सु भुजंग लियै लठ कूटत ऊपर वामी।
मंद कषाय विषै न करे नर चाहत मूढ भयो शिवगामी।।३७।।

दोहरा

पराधीन परजोग सौं अरु कषाय संयुक्त।
हौं न कहत सठ कष्ट सहि अष्ट कर्म तैं मुक्त।।

तेईसा

इंद्रिय पंच न रंच करी वस वंछत सुख भयो परधामी।
ध्यान धरै व्रत मौन जपादिक सौं सिव की थिति वाधत लामी।।
आगम-वेद-पुरान कहैं जड हंस न अंस लख्यौ सुख दामी।
मंद कषाय विषै न करै नर चाहत मूढ भयो सिवगामी।।३८।।

दोहरा

कहौं बात दिष्टांत करि सुनौ चतुर मनु लाइ।
जे अभव्य तिनिके हृदै जिनवानी न समाइ।।

तेईसा

अंम्रत जौ उपजै अहि के मुख पाहन भूमि सरोज फुलैहै।
पच्छिम की दिसि भान उअै जिय घात तजौ सुरलोकनि जैहै।
वासर भान लखैं अरु आवहु भांतिनि पात करीलनि छैहै।
जौ जिनसासन भाषित रीति अभव्यनि कै घट मैं सरदैहै।।३९।।

दोहरा

सुनौं सुयहु दिष्टांत अव कहौं दूसरी बार।
ज्यौं अभव्य उपदेसु गुरु पाठे पर जलधार।।

तेईसा

जौ तुरंगै सिर सींग लगै फिरि कै सरिता उलटौ जलु बैहै।
सिंघिनि दूधु रहै मृतुका घट सींचत ही घृत आग बुझै है।।
पाहन पोत तरै जल सागर जा करि केहरि कौ मृगु गैहै।
जौ जिनसासन भाषित रीति अभव्यनि के घट मैं सरदैहै।।४०।।

दोहरा

जैन नैन बिनु जे करत मूरिख व्रथा उपाई।
जैसे भूलैं गैल के चल्यौ अकारथ जाइ।।

छप्पय कमलवंध

अंग[१]लगावत राख रहत नित मौन धारि मुख।
संग भार सबनाष करत तप सहत घोर दुख।।
धरत भांति बहुभेष बढावत जटा सीस नख।
वन मैं रहत अदेख असन त्यागैं सुमास पख।।
इत्यादि कष्ट सहत सुपुरिष मास अवर बीतैं बरख।
सो जैन नैन बिनु झूठ दिष रहित जेह निज पर परख।।४१।।

दोहा

जैन धर्म संसार मैं परम सुख दातार।
वरनौं जासु प्रसाद भवि उतरत भवदधि पार।।

छप्पै

इय भव अरु परलोक जैन जगमांहि सहाइक।
जैन कर्म क्रत रोक जैन नाना सुख दाइक।।

---

१. यह पद जोग पच्चीसी में भी उपलब्ध है। जिसकी क्रम संख्या २/११/७ है।

जैन दुरित तम अरक जैन मिथ्यात विनासक।
जैन हरन दुख नरक जैन सब तत्व प्रकाशक।।
जयवंत जैन जग महि भविक जासु बिना कारज न इक।
सो जैन बैन बिनु सिवरमिक भाव नहीं उपजै समिक।।४२।।

दोहरा

वर्त्तमान वर्ते नहीं सोसु करै बेसर्म।
बंध असाता कर्म कौ करै चहै सुभकर्म।।

इकतीसा

जैसे कोइ रोग मांहि असन गरिष्ट करै रोग के विनास कौ विचार चित्त रहै है।
जैसे घृत धारा करि सींचत है पावक मैं पावक सो घृत सौं बुझाइ दैन कहै है।।
जैसें कालकूट तासु भक्षन करै है मूढता पै जीवितव्यता बिना विवेख गहैं है।
जैसें जगवासी जीव जोग दैकै आठों जाम करत असाता बंध साताकर्म चहै है।।४३।।

दोहरा

भाग्य बिना रे मुगध नर संपति चढ़ै न हात।
जैसें चात्रक मुख विषै बूंद परै खिरि जात।।

सवैया इकतीसा

जैसे चन्द्रमा कौ प्रतिबिंब दीसे पानी माहि वाकौं हातु घालिकैं सु कैसें कोई पाइ है।
जैसे कोई जनम कौ बौरा जन बोलै नांहि कहो राग रीति सौं सु कैसे गीत गाइ है।।
जैसे चछुहीन नर चलै आप अकलि सौं औरनि कौं कहौ कैसें मारग बताइ है।
जैसे मूढ प्रानी जिनवानी मैं विचार देखु उदै तौ आसाता कर्म साता कैसे आइ है।।४४।।

दोहा

मूढ मती तिनि कौं नहीं लगै परम उपदेश।
सुनौं भव्य दिष्टांत यहु कहू प्रगट करि लेस।।

तेईसा

ज्यौं मुकताहल माल बना करि कैं कपि चंचल के उर लावौ।
भोजन पान चहू रस थान सु ज्यौं खरु के मुख मैं भुगतावौ।।
अंधन पास करे जिम नृत्य सु ज्यौं बहिरे जन के ढ़िग गावौ।
ज्यौं जग मांहि कहै मति मान सु मूरिख लोगनि कौ समुझावौ।।४५।।

दोहा

अंकुस उपदेसु न लगै करि मदमंत समान।
सुनौ संत कुमती पुरिष वरनौं परम अजान।।

सवैया तेईसा

दान दया सु नहीं जिन्हि कैं न पयास मतो इन बोध बड़ाई।
ध्यान नहीं न प्रमान व्रतादिक साधिक मोख नहीं बुधताई।।
जोग जगै न लगै उपदेश पलैन क्रिया न कर्यौ तपयाई।
या करतूति मिलै न जहाँ जिन्हि के घट कूर कुदुर्मति आई।।४६।।

दोहा

दुरमति के परसाद तैं भटक्यौ जीव अनंत।
अब जाकी निरधारना करौ सुनौ गुनवंत।।

सवैया बत्तीसा

पियैं सुरा सु पानसी कियैं कुरा कुमान सी दियैं दुरादुध्यान सी लियैं कुग्यान भारि है।
उडैलनी अऊतसी छडैल छीद छूति सी भडैलभीति भूतसी कलेस को भडारि है।।
वढावनी कुकाम की रढावनी कुवाम की पढावनी कुधाम की कुभाव दैन हारि है।
चलै कुरीति अबंध की करावनी कुबंध की जगत्र की जुठैल सो कुबुद्धि कूर नारि है।।४७।।

दोहा

देखौ यह मति दोखिनी करत भजन में भंग।
पराधीन बहिरातमा याही कैं परसंग।।

सवैया इकतीसा

सुग्यान भान कौं घटा जगत्र जीव कौं नटा करैं घुटान कौं बटा कुगैल सो बतावई।
सुसील सौं करैं षटा विषै सवाद कौं चटा सुमान सै करैं सटा अरैल आपदामई।।
पयूष कौं करैं कटा चढी कुपंथ के अटा दियैं सुपंथ कौ टटा फिरैं कुवेसुवा भई।
लखैं कुबुद्धि की लटा सुचित्त संत कौ फटा धरैं सु एक ई हटा झटा कि दुर्गतिं गई।।४८।।

दोहा

जाके घट यह पापिनी धरै सुनर बहु भेस।
जा दुरमति की वारता सुनौ सुधी पुनि लेस।।

सवैया बतीसा

वखाननी कुवाद की कुवात बेसवाद की कुगैल है अदाद की विषाद चित्त मैं भरै।
छकीय मोह फांद की सुपंद्रहू प्रमाद की अपातता अनाद की मलीन आतमैं करै।।

अरी परै सुसाद की विगारि कीच काद की मदोर अष्टमाद की सुभाव संत कौ हरै।
जनी हरामजाद की नकी मनौं कुलाद की परै सु ताहि खाद की कुबुद्धि गात मैं धरै।।४९।।

दोहा

संतनि तजि मति दोखिनी अति दुखदाइनि जानि।
सुनौं भव्य यह की कथा कहलौं कहौं वखानि।।

तेईसा

संतनि के मन में उतरी जिसकी अपकीरति ग्रंथनि गाई।
दूतिय दुर्गति तैं नियरी परपोखिनि दोखिनि है दुखदाई।।
इंद्रिनि की पति राखन है प्रगटी विषयारस तैं गुरताई।
औगन मंडित निंदित पंडित या दुरबुद्धि कुनारि कहाई।।५०।।

दोहरा

कुमती पुरिष जगत्र महि धरत स्वांग बहुरूप।
काम अंध दुरबंध पुनि बरनौं जंत स्वरूप।।

छप्पय

काम अंध सो पुरिष सत्य करि सकै न कारज।
काम अंध सो पुरिष तासु परिनाम न आरज।।
काम अंध तह क्रपा मिलै इक रंच न कोई।
काम अंध तैं अधम नहीं जग मैं पुनि सोई।
गति नीच महादुख भोगवत सो सब काम कलंक फल।
सो कामानल करि छिनकमहि दहत सील तरुवर सबल।।५१।।

दोहा

सीता षोडस मैं स्वरग पहुँची सुमति समेत।
राउनादि नरकैं गए दुरमति कै हित हेत।।

सवैया चौवीसा सर्वतोमुख

हियारस काम बह्यौ रुख सोर हरी परनार गई मति तास।
पियातसु राम रह्यौ मुख मोर घरी घर यार भई पति पास।।
सिया जसुधाम लह्यौ सुख कोर धरी भरथार मई सति आस।
जिया वसु जाम सह्यौ दुख घोर करी करतार ठई गति तास।।५२।।

दोहरा

बुद्धि बाउनी की कहौं सुनौं विवस्था संत।
कवि अपनी मति मंदता वरनै करि दिष्टंत।।

सवैया इकतीसा

जैसे काहू जौंहरी नै हारि के विचार बिना मौती एक-एक दो अथोक जोरि धरे हैं।
समैं पाइ एक-एक मौती कौ समूह देखि पंगति लगाइ एक सूत माझ बरे हैं।।
जैसें ये कवित्त मित्र कहे ते अपंगति सौं बुद्धि सौं लगाइ फेरि पंगति मैं धरे हैं।
जातैं धरे नाम बुद्धिबाउनी अनूप याकौ बुद्धिवंत मूरिख प्रतच्छ जानि परै हैं।।५३।।

दोहरा

सभा बिना गुन जन बिना बिन जन गुना विभास।
सदायवीदे मैं गजत जग मैं देवियदास।

तेईसा

सवतु साल अठारह सैं पुनि द्वादस और धरौ अधिकारे।
चैतसुदी परिमा गुरुवार कवित्त जबै इकठे करि धारे।।
गंगह रूप गुपाल कहे कमलापति सीख सिखापन वारे।
कैलगमा पुनि ग्राम दुगोडह के सबही वसवासनहारे।।५४।।

दोहा

दुरित मूल मिथ्यात मग दुरमति होत निकंद।
बुद्धि बाउनी के सुनत उपजत परमानंद।।

---

३. पुराणेतिहास, भूगोल, राजनीति एवं शरीर-लक्षण-साहित्य खण्ड

(१) जिनांतराउली

दोहा

पंच परमगुरु कौं नमौ मन वच सीस नवाई।
जिन अंतर पंगति कहौं भिन्न-भिन्न समुझाई।।१।।

चौपही

तीजौ काल जानि भवि सोई सागर कोडाकोडी दोई।
दूजौ कोडाकोडी तीन पहिलो कह्यो चारि परवीन।।२।।

पुनि पहिलौ दूजौ तीसरौ आवत जात दुगुन करि धरौ।
भोगभूमि निघटी षटु तेह उत्ति मद्धि जघन्य सु जेह।।३।।

कोडाकोडि गए दश आठि बंध्यौकाल चौथे कौ ठाठ।
सो पुनि कोडाकोडी एक जाकौ वरनन कहौ विसेक।।४।।

जुगला धर्म गयो जब बादि उपजे प्रथम जिनेश्वर आदि।
कोडाकोडि आधि जलरास बीतैं अजित गए सिव पास।।५।।

तीसलाख पुनि सागर कोडि संभव मुक्ति गए तिहिं छोडि।
पुनि दसलाख कोडि सरलए अभिनंदन जिनवर सिव गए।।६।।

सागर गए कोडि नव लाख सिज्झे सुमति कर्म वसु नाष।
नवै हजार कोडि सरजात मुकति गए पदमप्रभ तात।।७।।

कोडी नव सहश्र पुनि ताल बातैं तजि सुपार्श्व जग जाल।
नवसै कोडि गए सर और चंदप्रभ पहुँचे सिव ठौर।।८।।

नवै कोडि सागर जब नसे जिनश्री पुष्पदंत सिव वसे।
पुनि नव कोडि ताल बीतियो सीतल नाथ अखै पद लियो।।९।।

सौ सागर छाछटि पुनि लच्छ अरु छब्बीस हजार प्रतच्छ।
ये वरसै घटि सागर कोडि गए श्रियंश मुक्ति जग छोडि।।१०।।

अरु पुनि चौवन सागर अंत सिज्झे वासुपूज भगवंत।
बहुरि वितीते सागर तीस विमलनाथ त्रिभुवन गुन धीस।।११।

तिन्हि तैं नव सागर के बीच धोई जिन अनंत जग कीच।
पाउ पल्य घटि सागर चार धर्मनाथ उतरे भव पार।।१२।।

आधिपल्य घटि सागर तीन सांतिनाथ करि कर्मनि छीन।
आधि पल्य को अन्तर परे कुंथुनाथ सिवपुर विस्तरे।।१३।।

वर्ष हजार कोडि इक हीन पाउ पल्य महि करौ प्रवीन।
एतौ जब अंतर परि गयो अरहनाथ कौ केवल भयौ।।१४।।

सहसकोडि वर्षै पूरियो मल्यनाथ निर्भै पद लियो।
चौवन लाख वरष परवान बीतत मुनिसोव्रत सिवनाथ।।१५।।

पुनि षटु लाख वर्ष गत होत नमि जिनेसउर परम उदोत।
पाँच लाख वर्षै करि हीन नेमिनाथ अव्वय पद लीनं।।१६।।

पौने चौराशी सुहजार बीतै वर्ष पार्श्व जिन पार।
वरष दोइसै अधिक पचास महावीर पहुँचै सिव पास।।१७।।

बाकी वरष तीनि वसु मास वासर रहे पंच दस तास।
कोडाकोडि कछु घटि ताल पूरन भयो चतुर्थम काल।।१८।।

वरषै वियालीस हजार बाक़ी बची अवर जे आर।
तिन्हि के मद्धिकाल दो एव पंचम छ्यौ कह्यौ जिनदेव।।१९।।

जह तैं थके मुक्ति पद सोई हौनहार विपरीत सु होई।
काल सर्पिनी हुंडाछली बासठि बरस रहे केवली।।२०।।

रह्यौ एक सें वर्ष निदान वर वरिष्ठ मनपर्जयज्ञान।
तेरासी वरषै सत एक काल पंचमौ गऔ सु टेक।।२१।।

दस पूरब धारी मुनि कहे पुनि एते अंतैर महि रहे।
धारी पुनि एकादस अंग वसु मुनिराज सुधी सरवंग।।२२।।

वरतैं वरष दोई सै बीस ते वंदौ चिरकाल मुनीस।
पुनि निमित्तज्ञानी मुनिचार एक अंग के धारन हार।।२३।।

वरष एकुसै दस अरु आठ वर्तमान वतैं जिन पाठ।
तिन्हि बहुभांति प्रकासे ग्रंथ आगम अध्यातम निज पंथ।।२४।।

छैसे तेरासी पुनि वर्श रहे अवर मुनि वरगुन सर्स।
जहं तैं सरगंथी अवलाध दखिन दिसा रहै पुनि साध।।२५।।

दिन-दिन पुनि विपरीत कुभिंग जती व्रती करि थपै कुलिंग।
पहिरैं वसन भोग विधि चहैं तिन्हि सौं मुगध मुनीश्वर कहैं।।२६।।

साडे सात कोडि सरगंथ जैहें नर्क कही जिन पंथ।
अरु तिन्हि के परमोदनहार ते पुनि जैहें नर्क मझार।।२७।।

सरधावंत रूची नर कहे कहूं-कहूं जो विरले रहे।
तिन्हि के उर वरन्यौं समकित छटैं काल पुनि महा विछित्त।।२८।।

जाकै कहनहार भगवान को कविता करि सकै बखान।
अलप बुद्धि करकैं कवि कही सुद्ध सोध की जै बुध सही।।२९।।

दोहरा

अंतर जिन चौबीस कौ जथा सक्ति मति हीन।
ग्रंथसार सिद्धांत लखि भाषा परगट कीन।।३०।।

देवी सेवी सर्व जिन खेवी दश विधि धूप।
लेवी सुरपद जाइ कैं जेवी परम अनूप।।३१।।

(२) मारीच भवांतराउली-

बंदौ पद अरिहंत सिद्ध गुन उर धरौं।
आचारज उवझाइ साधु वंदन करौं।।

बंदौ श्रुतु सिद्धांत संत सुरमति लहौं।
भवअंतर मारीच कुंअर भाषा कहौं।।

भाषा समुझै भविकजन सुनत अति सुख पावहीं।
संसार भोग उदास कारन यहु चरित्र सुगावहीं।।

अति सुगम अरथ सुढार सज्जन परम शब्द सुहावनौ।
कवि अल्पमति करि कहत सो पुनि अल्प मन समुझावनौ।।१।।

नाभि नृपतिं सुत प्रथम आदिजिनवर लहूँ।
तिन्हि के सुत भरथेस खंड षटुपति कहूँ।।

भरथेस सुत पुनि मारीच बखानियैं।
तिन्हि तजि ग्रहवस वास महाव्रत ठानियैं।।

ठानियै महाव्रत कष्ट दुद्धर सहत अति दिन दिन घनैं।
तेरह प्रकार धरैं सुपुनि चारित्र सो कहत न बनैं।।

षट्‌ काल साधत धरि सुधीरज एकचित संजिम धनी।
दिढ काय जोग भए सु मुनि को कहि सकै उपमा घनी।।२।।

इहविधि संजिम सहित काल कछु बीतियो।
जह पुनि आदिजिनेस कर्म बल जीतियो।।

चारघातिया कर्म कलंकु जबै गयो।
केवळ दरसन ज्ञान चरन परमट भयो।।

परगट भयो बल ज्ञान दरसन सुद्ध परनति परनए।
जह आनि तुरत कुबेर सुरवर समवसरन रचत भए।।

सो सकल विधि पूरन मनोहर प्रगट जिम आगम कही।
तिहि मद्धि श्री जिनवर विराजत आदिनाथ प्रभू सही।।३।।

षट्‌ रितु के फल फूल जहाँ फूले फरे।
ले भरथेश्वर अग्र सुवनमाली धरे।।

भरथेश्वर वनमालिय सौ पुनि बूझिकैं।
कीनौ अति अहलाद सुबात समूझिकैं।।

सुसमूझि भरथेश्वर कही सबसौं बहुरि समुझाइकैं।
पहुँच्यौ ततच्छ जिनेस तिन्हि कौ समवसरन सु आइकैं।।

भरथेस अति आनंद सौं जब समवसरन विषैं चले।
उतसाह करि अति मन विचारत आजु जनम सफल फले।।४।।

पहुँचे जह जिनराज जाइ दरसन कियो।
जनम-जनम क्रत पाप गए हर्षत हियो।।

जै-जै सबद करत पुनि अति आनंद भरे।
सकल मनोरथ काज आजु पूरन परे।।

पूरन परे सब काज जब जिनवर सुमुखु पुनि देखियो।
बैठत सुनर कोठा विषै नर जनम वर करि लेखियो।।

जह उठत ओंकार रूपी धुनि जिनेस निरक्षरी।
सो स्यादवाद मई जिनेश्वर वानि सब संसैहरी।।५।।

भरथेश्वर तह प्रस्न बहुत पूछी खरी।
सो सब गनधर देव बताइ प्रगट करी।।

हम कुल पुनि तीर्थंकर दूजै होइगौ।
सो प्रभु देउ बताइ तौ संसौ खोइगौ।

खाइगौ संसौ सुनहु भरथेस्वर सुगनधरजू कही।
तपु करत ये मारीच तीथंकर सु पुनि हूहै सही।।
सुनि जब कुंवर मारीच जिनवर वचन टेक हियैं रही।
मन मांहि गर्भु कियो सुसव संजिम उतारि धरयौ तही।।६।।
कारन कौन सु अव हम दुद्धर तपु करैं।
जिनवर भाषित सो अब क्यों न हियैं धरैं।।
गनधर देव कही भरथेश्वर सौ यही।
तीर्थंकर पदवी सु कहा हौंने रही।।
हौंने रही न सु बात भाषी यह विचार सुव्रतु तजे।
ग्रह भोग फेरि ग्रहौ सकल ब्रतु तजत नैकु नहीं लजे।।
मन वचन तन करि विषय रस सरवंग सुख करि भोगयो।
तप करि सुत्रास सह्यौ अकारथ दिनु सु पुनि निरफल भयौ।।७।।
विषय भोग पुनि कौंनु कहै सुबखानि कैं।
जे भुगते मारीच कुंवर हितु जानिकैं।।
क्रतकारित अनुमोदमानि जे अघ करे।
जाकौ फल पुनि पाइ निगोद विषै परे।।
सुपरे निगोद विषै महा अति विषम दुद्धर दुखसहे।
सागर सुएक रहे जहाँ सुन जात पुनि मो पर कहे।।
तह परम अति सुछम अपावन तन सु साधारन धरे।
तह मरन एक समै विषै बहु बार अष्टादस करे।।८।।
बहुविधि दुख भुगते अति घोर निगोद के।
उपराजे क्रत कारित पुनि अनुमोद के।।
कीनी जह करनी सु बहुत परपंच की।
धरि अंतिम परजाइ सिंध तिरजंच की।।
तिरजंचगति अति दुख कारन सिंह पुनि परनति लटी।
वनचर सु अरि न बचै जहाँ चहुँ ओर पसु पंगति घटी।।
पुनि परम चारून मुनि तपीस्वर सुद्ध वह वन मैं रहैं।
सुख कंद समरसवंतता उपदेस भवि देखत कहैं।।९।।
मुनिवर देखत सिंघ सु भक्षन कौं गयो।
भव्य देखि मुनिराज सु संबोधित भयो।।

सुनहु सिंध तुम बात जीव उत्तिम कहे।
भव अंतर सुनि लेउ एक छिन हो खड़े।।

छिन हो खडि यहु वचन सुनि करि सिंध मन वच काइ कैं।
कर जोरि जगु पाइनि पर्ख्यौ प्रभु दुख कह्यौ समुझाइकैं।।

मुनि कहत सुनि भविजंत हो अति सावधान पनैं सुखी।
वरनौं भवांतर भिन्न-भिन्न सुअवधिज्ञान प्रगट मुखी।।१०।।

प्रथम रिषभि जिनराज भए उत्तिममती।
तिन्हि कैं सुत उपजे सु भरथ षट्खंडपती।।

भरथेश्वर सुत बहुरि कुंवर मारीच जु।
तिनि तजि ग्रह दुखदाइ सकल भव सोच जू।।

ग्रह सोच तजि दिढधरि महाव्रत पुनि सु तप युत वन बसैं।
मन-मदन वान कषाय-विषय विकार जीति सु तन कसैं।।

जह आदिनाथ जिनेस पहुँचौ समवसरन सु आइकैं।
तह समवसरन विषै गए भरथेस अति सुख पाइकैं।।११।।

भरथेस्वर गनधर तिन्हि सौं पूछत यहौ।
हम कुल पुनि को होइ सु तीर्थंकर कहौ।।

गनधर देव कही सुभरथ पुनि बूझियो।
तीर्थंकर मारीच होंहि सु समूझियो।।

सु समूझि पुनि मारीच सुनि करि महागर्भु हियैं धर्ख्यौ।
अतिसार संजिम सरसु मुनिव्रत छिनक महि सव परिहर्ख्यौ।।

सव राज काज कियो जथारथ बहुरि मन वच काइ कैं।
भाखी सु श्रीजिनराज सबहू है सु औसरु पाइकैं।।१२।।

इह विधि संजिम त्याग अहूं चित मैं धरी।
पूरन करि पर जाइ निगोद विथा भरी।।

सो पुनि इतर निगोद विषै दुख देखियो।
विषय-भोग फल जानि सुसंत विसेखियो।।

सु विसेखियो सब पाप कौ फल छिनक सुखइ झांक कौं।
वह तैं सु फिरि निकसत भए मारग विषै तरु आंक कौं।।

तह वरष साठि हजार बीती मरत पुनि उपजत जिया।
वह थिति सुपूरन होत पुनि अवतार छीप विषै लिया।।१३।।

असिय हजार वरष तह दुख करि पूरियो।
निंबू तरवर तुरत जाइ अंकूरियो।।
बीस हजार वरष निंबू परनति रही।
निंबू तजि परजाइ केवरे की गही।।
गहि केवरौ परजाइ थावर गति जहाँ संकट सह्यौ।
दस सहस घटि एक लाख वरष दुखित दुर परनति रह्यौ।।
फ़िरि आव अंत भऔं सु पुनि उपजे कनक तरवर विषैं।
तह पांच कोडि निदान वरषनि दुख सहे लेखैं लिखैं।।१४।।
तीस लाख वरषनि चंदन द्रुम मैं बसे।
छिनक घ्रान सुखमानि महादुखमैं फंसे।।
तीस कोडि वरषनि सुधरे तन मच्छ कौ।
सौ दुख कौनु कहै सुविषैं फल अच्छ कौ।।
फल अच्छ कौ सुख छिनक कारन फल सु गनिका गति धरी।
अवतार साठि करोर धरि अति निंद मति पूरन करी।।
अवतार पांच करोर फिरि पसिया भए निरदै पनैं।
बहु जीव घात करे जहाँ सुन जात पुनि मो पर भनैं।।१५।।
आगामी परजाय छोडि गज तनु लियो।
बीस कोडि अवतार धरे मरि जियो।।
तजि गजि गति पुनि देह धरि खर जोनि मैं।
साठि कोडि अवतार मिलै मरि हौंनि मैं।।
मरि हौंनि बार अनंत करि फिरि जनम कूकर कौ मिल्यौ।
तह तीस कोडि प्रमान वर्षनि मास मल निस दिन गिल्यौ।।
अवतार साठि सुलाख पुनि जग मैं नपुंसक के जनैं।
दुख की सम्हारि नहीं जहाँ अति घोर दुरकर्मनि तनैं।।१६।।
बीस कोडि अवतार धरे त्रिय के भिया।
साधारन तन विषय वंत जन कौं प्रिया।।
संपूरन करि आउकर्म धोबी भए।
दस सहस्र घटि एक लाख जनम नठए।।
जनमनठए एक लाख फिरि मरि धरि सरीर तुरंग कौ।
वसुकोडि भव भुगती जहाँ फल विषय परानति संग कौ।।

तजि तन बहुरि नृप होइ साठि सुलाख भव गनती गनै।
तह पात्र दान दियो सुफल करि भोग भूमि विषैं जनै।।१७।।

असिय लाख परजाइ धरी सुख थोक मैं।
जहं तैं मरि उपजे सु बहुरि सुरलोक मैं।।

असिय लाख पुनि जन्म स्वर्ग गति मैं दुखी।
मूरिष जग जग मांहि कहैं तिनि सौं सुखी।।

तिन्हि सौं सुखी सु कहैं अजानैं सुर विषय भुगतत मरे।
भव तीस-कोडि लगार इक मंजार तनु मरि-मरि धरे।।

मंजार तनु तजि साठि लाख सुबार गर्भ विषैं खिरे।
सो दुख कौनु कहै जहाँ अति भांति-भाँतिन कै पिरे।।१८।।

और भवांतर बहुत सकै को गाइकैं।
अवधि विषैं प्रगटैं सुकहे समुझाइ कैं।।

तब तुम यह परजाइ धरी पुनि सिंघ की।
तासु कथा अति नीच वढ़ावन भिंग की।।

अति भिंग की करता कथा सब सिंध सौं मुनिवर कही।
सो सुनत सिंघ खडौ भयो कर जोरि जुग सिरु नावही।।

पुनि कहत सिंघ महामुनीस्वर सौं सुदेरन आनियैं।
हम कौं सु अब ततकाल दीजै सो सिखापनु जानियैं।।१९।।

तुम प्रभु तारन तरन सुधारन काज हौ।
तुम सरनागत संत गरीबनबाज हौ।।

तुम गुरदीनदयाल महाजसु लीजिए।
मोह दुखित अति देखि सु बात कहीजिए।।

सु कहीजिए उपदेस स्वामी मन वचन तन करि गहौं।
तुम वचन की सुप्रतीति करि उरधारि सु निज मारग लहौं।।

यह कहत सिंघ उदास अति सनमुख भयो मुनिराज सौं।
हम सौं कहौ अवसीख सो हम लहि सकैं निजकाज सौं।।२०।।

जब मुनिवर उपदेस कहत सुनु भवि जिया।
उर अंतर अवधार हर्ष करिकैं हिया।।

सूखौ त्रन तुम चरहु हरित छोड़ौ सदा।
नीर पियो जह धार गिरै अति भदभदा।।

अति भदभदा जह पियो पानी सकल अनछान्यौ तजौ।
सब जीव आपु समान के लखि परम निरमल पद भजौ।।

तुम आउ पुनि इक मास बाकी सुपन सोवत सी रही।
यह सीख धरि उर मांहि तजि करि सकल भ्रम कीजौ कही।।२१।।

श्रावक व्रतु जग मांहि सुख कौं करै।
श्रावग व्रत सु प्रसाद जीव भवोदधि तरै।।

श्रावग व्रत तुम जोग सु दिढ करि लीजिये।
इहि विधि भव दुख वासु जुलांजुलि दीजिये।।

दीजिये भव-भव दुख जुलांजुलि और व्रतु तुम्ह कौं नही।
यहु वचन सुनि करि सिंघ पुनि बैठौ रह्यौ वहीं कौ वहीं।।

संन्यास धरि इक मास कौ दिन-दिन दया प्रगटै हियैं।
सौ सकल जीवनि पर क्रपा जुत सुधा समिता रस पियै।।२२।।

तन पर चढि बहुजीव वमीठे लगि रहे।
लेत करौटा नाँहि मही संकट सहे।।

इह विधि संजिम पालि महातनु सोढिकै।
पुनि पहुँचे सुरलोक सिंघ तन छोडिकैं।।

छोडिकैं तनु जब सिंघ कौ सुरलोक सुर पदवी लही।
तब अवधि आपु विचारि करि कहि कौन पुन्य उदै यही।।

मुनिवर वचन उर धरि त्रविध करि दिढ परम अनुव्रत गह्यौ।
पूरब सु पुन्य उदोत करियहु आनि पुनि सुर पद लह्यौ।।२३।।

फिरि मुनिवर के पास आनि अस्तुति करी।
प्रभु तुम्हरौ उपदेशु पाइ सुरगति धरी।।

प्रभु तुम दीनदयाल अनाथनि के धनी।
तुम दरसन जग मांहि विपति टारन घनी।।

टारन विपति भविजंत तिन्हिके तरन तारन हार हौ।
महिमा अनंत सु को कहै तुम्ह तीनि लोक सिंगार हौ।।

इहि भांति थुति करिकैं सु फिनि सुर आपु लोक विषै गए।
तहं सुख विलास-विनोद अति-अति भाँति भाँतिन के भए।।२४।।

अति उत्तिम पद पाइ सुखी सब संत मैं।
आनि भए पुनि वर्धमान जिन अंत मैं।।

गर्भ जन्म तप ग्यान सु ध्यान दिढाइकैं।
पायो पद निरवान सुकर्म नसाइकैं।।

सु नसाइकैं बसु कर्म कल्यानक सुपंच विराजही।
जग जाल तजि अनुभूति सजि निज मिले स्वारथ साजही।

जह भूख प्यास न त्रास राग न दोष मोह न जानियै।
जह रोग सोग वियोग विस्मय खेद स्वेद न मानियै।।२५।।

जनम धरन तह मरन जरादिक दुख नहीं।
मन वच तन पर जोग रहे जहँके तहीं।

सम्यक दरसन ग्यान आदि वसु गुन लहे।
सिद्ध सहित पुनि तेन जात मो पर कहे।।

मो पर कहे किम जाहि जे गुन आदि अंत न जा सकौ।
कौ करि सकै निरधार मुनिगन सुद्ध ज्ञान प्रकासकौ।।

श्रीवर्द्धमान जिनेस सिद्ध स्वरूप नित प्रति ध्याइए।
कर जोरि देवियदास तिनिकौं सदा सीसु नवाइये।।२६।।

(३) लछनाउली छप्पय

आदि जिनेश्वर वृषभ अजित गजराज विराजत।
संभवनाथ तुरंग कपी अभिनंदन छाजत।।

चकहा सुमति जिनेश पद्म पदमप्रभ सोहै।
जिनसुपास सतियो चंद्र चंद्रप्रभ मोहै।।

कहि पुष्पदन्त लच्छन मगर सीतल श्रीजिन वृच्छधर।
गैंडा श्रियंस सोभित प्रगट वांसपूज महिषा सुवर।।१।।

लच्छन विमल वराह सहित सेई अनन्त जिन।
धर्मनाथ पद वज्र सांति जिन म्रग विलोकि पिन।।

छेरौ कुंथ जिनेस अरह जिनराज मीन भनि।
मल्यणाथ तह कलस मुनिसोव्रत सु कच्छ गनि।।

नमि कमल जुक्त जिनराज कहि नेमिनाथ पग संख हुव।
अहि पार्स्वनाथ जिन सिंघ पुनि वर्द्धमान जिनदेव जुव।।२।।

(४) चक्रवर्त्ती विभूति वर्णन

सहस बत्तीस सासते देस धन कन कंचन भरे विसेस।
विपुल वाडि बेढे चहुंवोर ते सब गांव छानवै कोर।।१।।

कोट-कोट दरवाजे चार असे पुर सब बीस हजार।
जिन कौ लगै पांच सौ गांव ते अटंव चठ सहस सुठांव।।२।।

पर्वत और नदी के पेट सोला सहस कहे ते खेट।
कर्वट नाम सहस चौबीस केवल गिरवर बैठे दीस।।३।।

पट्टन अडतालीस हजार रतन जहां उपजे अतिसार।
एक लाख द्रोनामुख वीर सहस घाट सागर के तीर।।४।।

गिर ऊपर संवाहन जान चौदह सहस मनोहर थान।
अट्ठाईस हजार असेस दुर्ग जहाँ रिपु को न प्रवेस।।५।।

उपसमुद्र के मध्य महान अंतदीप छप्पन परवान।
रत्नाकर छबीस हजार बहुविधि सागर वस्त भंडार।।६।।

रतन कुच्छि सुंदर सात सै रतनधरा थानक जह लसै।
ए पुर सू वस राजै खरे जैन धाम धर्मी जन भरे।।७।।

वर गयंदु चौरासी लाख इतने ही रथ आगम सार।
तेज तुरंग अठारा कोर जे वट चलैं पवन तैं जोर।।८।।

पुनि चौरासी कोट प्रवान पायक संग महाबलवान।
सहस छानवै बनिता सह गेहु तिनकौ अब वरनन सुन लेहु।।९।।

आरजखंड बसै नरहंस तिनकी कन्या सहस बत्तीस।
इतनै ही अति रूप रसाल विद्याधर पुत्री गुनमाल।।१०।।

पुनि मलेछ भूपन की जान राजकुमारी तावत मान।
नाटक गन बत्तीस हजार चक्री नृप कौ सुखदातार।।११।।

आदि सरीर आदि संठान पुव्वकथिति तन लच्छिन जान।
वहुविधि विजन सहित मनोग हेमवरन तन सहज निरोग।।१२।।

छहों खंड भूपत बलरास तिनसौ अधिक देह बल जास।
सहस बत्तीस चरन तल रमै मुकुट बंध राजा नित नमै।।१३।।

भूप मलेछ छोड़ अभिराम सहस अठारह मानै आन।
पुनि गनबद्ध बखानै देव सोला सहस करै नृप सेव।।१४।।

कोट थाल कंचन निरमान एक कोड हल सहित किसान।
नाना वरन गजकुल भरे तीन कोट ब्रज आगम धरे।।१५।।

दोहरा

अब नौ निध के नाम गुन सुनौ जथारथ रूप।
जैनी बिन जानैं नहीं जिनकौ सहज सरूप।।१६।।

चौपई

प्रथम कालनिधि सुभ अकार सो अनेक पुस्तक दातार।
महाकाल निधि दूजी कही याकी महिमा सुनियौ सही।।१७।।

असि मसि आदिक साधन जोग सामग्री सब देइ मनोग।
तीजी निधि नैसर्प महान नाना विधि भाजन की खान।।१८।।

पांडुक नाम चतुरथी होय सव रस धान समर्थ सोय।।
पदम पंचमी सुक्रत णेत वांछित रतन निरंतर देत।।१९।।

मानव नाम छटी निधि जेह आयुध जात जनम भुव तेह।
सत्तम सुभग पिंगला नाम बहुभूषन आपै अभिराम।।२०।।

संख निधान आठमी गनी सब वाजित्र भूमका धनी।
सर्व रतन नौमी निधि सार सो नित सर्व रतन भंडार।।२१।।

दोहरा

ए नौ निधि चक्रेस के सकटाकृति संठान।
आठ चक्र संजुगत सुभ चौखंडी सब जान।।२२।।

जोजन आठ उत्तंग अति नव जोजन विस्तार।
बारह मिति दीरघ सकल वसै गगन निरधार।।२३।।

एक एक के सहस मिति रखवाले जखदेव।
ए निधि णर वै पुन्यसौं सुखदाइक सुयमेव।।२४।।

चौदह रत्न वर्णन

प्रथम सुदर्शन चक्र समथ्य छहौ खंड साधन समरथ्य।
चंडवेग दिढि दंड दुतीय जिसबल खुलै गुफा गिरि कीय।।२५।।

चर्म्मरतन सो त्रतिय निवेद महावज्रमय नीर अभेद।
चतुरथ चूडामनि मनि रैन अंधकार नासेक सुख दैन।।२६।।

पंचम रतन काकिनी जान चिंतामनि जाकौ अभिधान।
इन दौनौं थै गुफा मंझार ससि सूरज लिखिये निरधार।।२७।।

सूरजप्रभ श्रुभ छत्र महान सो अति जगमगाइ ज्यौं भान।
सौनन्दक असि अधिक प्रचंड जरै देखि बैरी बलवंड।।२८।।

पुनि अजोध सेनापति सूर जो दिगविजै करै बलभूर।
बुधिसागर प्रोहित परवीन बुधि निधान विद्यागुण लीन।।२९।।

थापित भद्रमुख नाम महंत सिलपकला कोविद गुनवंत।
काम वृष्टि ग्रहपति विख्यात सब ग्रह काज करै दिन रात।।३०।।

ब्याल विजैगिरि अति अभिराम तुरंगतेज पवनंजय नाम।
बनिता नाम सुभद्रा कही चूरै वज्रपान सौं सही।।३१।।

महादेह बल धारै सोइ जा पटतर तिय और न कोय।
मुख्य रतन ये चौदह जान और रतन कौ कौन प्रमान।।३२।।

दोहरा

राज अंग चौदा रतन विविधि भांति सुखकार।
जिनकी सुर सेवा करै पुन्य तरोवर डार।।३३।।

चक्रि छत्र असि दंडए उपजै आवध थान।
चर्म्म काकिनी मन रतन श्रीग्रह उतपति जान।।३४।।

गज तुरंग तिय तीन ए रूपाचल पै होय।
चार रतन बाकी विमल निजपुर लहै उदोत।।३५।।

अन्य वैभव- **चौपई**

मुख्य संपदा कौ विरतंत आगै और सुनौ मतिवंत।
सिंघवाहिनी सेज मनोग सिंघारूढ चक्क वै जोग।।३६।।

आम्मनतुंग अनुत्तर नाम मानक जटित जाल अभिराम।
अनुपमानामा चमर अनूप गंगा तरल तरंग सरूप।।३७।।

विद्युति दुति मनकुंडल जोट छिपै ओर दुति जिनकी वोट।
कमच अभेद-अभेद महान जामैं भिदै न बैरी बान।।३८।।

विषमोचिनी पादुका दोइ परपद सौं विष मुंचै सोइ।।
अजितंजय रथ महारवन्न जल पै थलवत करै गवन्न।।३९।।

वज्रकोड चक्रीधर चाप जाहि चढावै नरपति आप।
बान अमोघ जबै कर लेत रन मैं सदा विजैवर देत।।४०।।

विकट वज्र तुंडा अभिधान सत्रु खंड निसकती जान।
सिंघाटक वरछी विकराल रतनडंड लागी रिपुकाल।।४१।।

लोहवाहिनी तीखन छुरी जिस चमकैं चपला दुति दुरी।
ए सब वस्त जात भूमांहि, चक्री छूटि और घर नांहि।।४२।।

दोहरा

मनोवेग नामा कनय ग्रंथन कहौं विख्यात।
खेट भूतमुख नाम है दोनों आयुध जान।।४३।।

चौपई

आनंद भेरी दसदोई बारह जोजन लौं धुनि होई।
बज्रघोष फुनि जिनकौं नाम बारह पटह नृपति कैं धाम।।४४।।

वर गंभीरावर्त्त गरीस सोभत रूप संख चौबीस।
नाना वरन् धुजा रमनीय अठतालीस कोट मिति कीय।।४५।।

इत्यादिक बहु वस्तु अपार वरनन करत न लहिये पार।
महल तनी रचना असमान जिनमत कही सु लीजौ जान।।४६।।

दोहरा

चक्री नृप की संपदा कहै कहा लैं कोई।
पुन्यबेल पूरववई फली सांथिनी सोइ।।४७।।

चौपई

अब सुनि आठ जात के भूप जिनकौं जिनमत कहौ सरूप।
कोटि गांव को अधिपति होइ राजा नाम कहावै सोइ।।४८।।

नवै पांच सौ राजा जाहि अधिराजा नृप कहिये ताहि।
सहसराय जिस माने आन महाराज राजा वह जान।।४९।।

दोय सहस नृप नवै असेस मंडलीक वह अध नरेस।
चार सहस जिस पूजे पाइ सोइ मंडलीक नर राइ।।५०।।

आठ सहस भूपन कौ ईस मंडलीक सो महा महीस।
सोला सहस नवै भूपाल सो अधचक्री पुन्य विसाल।।५१।।

सहस बत्तीस आन जिस वहै ताहि सकल चक्री बुध कहै।
सो यह चक्रवर्त्ति की निधी जिनमत मैं सुभाषी विधी।।५२।।

४. शास्त्रीय संगीत-बद्ध-पद-साहित्य खण्ड

क. राग-रागिनी-पद

(१) राग केदारौ

गुर निरगंथ हमारे वसत उर गुर निरगंथ हमारे।
प्रजली ध्यान अगिनि तिन्हि के घट विकट मदन बनजारे।।१।। वसत॰

तजि चौबीस प्रकार परिग्रह पंच महाव्रत धारे।
पंच समिति जुत तीनि सल्य चुत त्रस थावर रखवारे।।२।। वसत॰

सुद्धपयोग भोग परिपूरन अधरम चूरनहारे।
रतनत्रय मंडित तप संजिम सहित दिगंबर भारे।।३।। वसत॰

भूख त्रसादिक सहत परीसह तीनि भुवन उजियारे।
मन वच काइ निरोधि सोधि तिनि सब भव-भ्रम तजि डारे।।४।। वसत॰

स्वपर दया सुख सिंधु गुनाकर सील धुरंधर प्यारे।
देवियदास गह्यौ तिन्हि कौं पथ तिन्हि, तिन्हि तैं सवतारे।।५।।

वसत उर गुर निरगंथ हमारे।।

(२) राग सोरठ

तिन्हि निज पर गुन चीन्हौं रे भाई तिन्हि निज पर गुन चीन्हौं रे।।टेक।।

चेतनि अंक जीवनि जल छन जड सु अचेतनि रीन्हौ रे।
भाई तिन्हि निज पर गुन चीन्हौं रे।।१।।

दरसन ज्ञान चरन जिन्हि के घट प्रगट भये गुन तीन्हौरे।
जाननहार हतौ सोई जान्यौ लखनहार लखि लीन्हौं रे।।२।।भाई तिन्हि.

ग्राहक जोग वस्तु[१] ग्राहज करि त्याग जो गत जि दीन्हौ रे।
धर नैंकी सुधारना धरि पुनि करनै काजु सुकीन्हौ रे।।३।।भाई तिन्हि.

सब रागादि विभाव परिनमन समय-समय प्रति खीन्हौं रे।
देवीयदास भयो सिव सनमुख सौ तजि संग उछीन्हौं रे।।४।।

तिन्हि निज पर गुन चीन्हौं रे भाई तिन्हि निज पर गुन चीन्हौ रे।।

---

(१) मूल प्रति - "वस्त"

(३) राग कनरी

जिनवर वचन हमारे मन माना।
जा परसाद मिटै विकलप, सव निज परतत्व पिछाना।जिनवर०।१।।
हरन विरोध उभै नय निरमल स्यादवाद सुठिकाना।।
अटल अनादि अनंत अनोपम उपजावन गुन ज्ञाना।जिनवर०।२।।
औषधि-परम प्रधान सुपीवत विषय विकार वमाना।।
अंम्रत जरा मरनादिक हरन व्याधि सुखदाना।जिनवर०।३।।
प्रापति बिनु तसु जीव जगत मैं भटक्यो होइ दिवाना।
जा सम और रसाइनि नांही तिल-तिल करि जग छाना।जिनवर०।४।।
जाके प्रगट भऔ उर अंतर सुगम पंथ निरवाना।
देवीयदास कहत हम बैठै करि उर तसु सरधाना।जिनवर०।५।।

(४) गौरी

निज निरमल रसु चाखा जब हम निज निरमल रसु चाखा।
करनै की सु कछू अब मोकौं और नहीं अभिलाखा।।१।।जब०
सूझि परे परजोग आदि परमन सु अवर तन भाखा।
दरसन ज्ञान चरण समकित जुत मूल मुकतितरु आखा।।२।।जब०
राग दोष मोहादि परिनमन हेय रूप करि नासा।
सुधिर सुद्ध उपयोग उपादे परम धरम उर राखा।।३।।जब०
मन की दौर अनादि निधन इम जैसै अथिर पताखा।
सो जिहाज पंछी समकीनी थिर जिम दरपन ताखा।।४।।जब०
जाननहार हतौ सोई जान्यौ देखनहार सुद्याखा।
देवियदास कहत सु समै इक होइ चुक्यौ सब साखा।।५।।जब०

(५) राग-विरावर

क्यों भूलतु मन वाउरे छिन होतु न सूधौ।
मोहि विषै रसिया करे वसु भांति विरुधौ।।१।।क्यों भूलत०
रागादिक तैरें बडौ जगमांहि उसीला।
जाके बल करिकै सु तूं भुगतै बहु कीला।।२।। क्यों भूलत०
पंच सखी पुनि *लौंडिया सत्ताइस तेरैं।*
तै उनिकौं पुनि स्वामि या हमकौं किम घेरैं।।३।। क्यो भूलत०
मदन भूप बैरी सबै जग जीवनि कैरौ।
तैं जिसकी सरवर करै होइ ढीठु न ठेरौ।।४।। क्यों भूलत०

सब तेरे सातर घटै निज पदह जागैं।
देवियदास कहैं कहूँ न बचै पुनि भागैं।।५।। क्यों भूलत॰

(६) राग मलार-

इह विधि सौं दिन भरिये जगतमहि इह विधि सौं दिन भरिये
जीवन परम तथा वस दीरघ तुरत अवैकिन मरिये ।।१।। जगत॰

हिंसारंभ सकल विधि परिहरि झूठ बचनु न उचरिये।
तजि परनारि प्रमान परिगृह तसकरता उदगरिये ।।२।। जगत॰

विकथावाद विषैं होई मौंनी सात विसन परिहरिये।
देखि समस्त-कुलिंगिय कूटक हर्ष्य-विषाद न करिये ।।३।। जगत॰

साधि सुपंथ निवारि कुसंगति सत संगति अनुसरिये।
कीजे नित अभ्यास जिनागम जिन-अस्तुति उर धरिये ।।४।। जगत॰

धरि जिनवजन प्रतीति दसाउर भोग-भुजंगम डरिये।
देवियदास कहत क्रम-क्रम करि भवदधि पार उतरिये ।।४।। जगत॰

(७) राग विरावर

वसत काल के गाल में जग जीवनि सूगौ।
देखि सहज समुझै नहीं अथवत दिन ऊगौ ।।१।। वसत॰

छिन-छिन प्रति तन छवि घटै दिनु आवत नेरौ।
जनम-मरन लखि और कौ चेतत न सबेरौ ।।२।। वसत॰

धन कारन डोलत फिरै जोवन तन भूलौ।
छिन संतोष धरै ईधन जिम चूलौ ।।३।। वसत॰

विसयारस कौ लालची गुर आनि न झेलै।
कर्म कलंदर बस परयौ मरकट सम खेलै ।।४।। वसत॰

तिन्हि निज गुन सातर गह्यौ उर अंतर जागे।
देवियदास सुकाल के वसतैं बचि भागे ।।५।। वसत॰

(८) राग नट

देर[1] करौ मति देर करौ जिनवर सुमिरत मति देर करौ।
आखर फिरि पीछैं पछितैहौ आनि धरै जब काल गरौ।।१।।जिनवर॰

जा परसाद मिटे दुरगति दुख असुभ करमन रहै झगरौ।
रमनि सदा सुर नरगति मांही दिन-दिन प्रति अति सुख अगरौ।।२।। जिनवर॰

---

१. मूल प्रति में 'ढेर' शब्द है।

सहज सुबुद्धि जगै जिसही छिन जास समैं दुरमति रगरौ।
तिन्हि के चित सरधा जिनमत की जिन्हि कौं जसु जग मैं वगरौ।।३।। जिनवर.
व्रत तप दान शील नियमादिक जाकौ मूल यहै सगरौ।
देवियदास कहत जिसही मैं क्रम-क्रम सौं सिवपुर डगरौ।४।। जिनवर.

(९) राग नट

नियति लटी हो नियति लटी हम देखी जग जीवनि की नियति लटी।
सुमति सखी सरवंग विसरि करि घर डारैं दुरमति नकटी ।।१।। हम.
राज कथा तसकर त्रिय भोजन निस वासर मुख उरह ठटी।
क्रोध-कलित निज प्रति सुमान भय लोभ लगनि अंतर कपटी।।२।। हम.
सपरस लीन गंध रसना रूख वरन स्वरूप रमन प्रगटी।
श्रवन सबद सुनि पर-परनति पुनि निद्रा जुत असनेह हटी।।३।। हम.
वसत प्रमाद पुरांजुग-जुग के छांडि सबै निज बल सुभटी।
टुक सुख काज इलाज करत बहु निज गुरू राजि परतीति घटी।।४।। हम.
गुर उपदेस विषै सुन आवत तिनि तैं भवि परनति उचटी।
देवियदास कहत जिम सींचत बेलि नहीं पलहति उखटी।।५।। हम.

(१०) राग नट

निगोद परै हो निगोद परै जिय इहि परिनमन निगोद परै।
मन वच काइ तीनि जोगनि करि कुटिल होइ करतूति करै।।१।। टेक.
जाति लाभ कुल तप बल विद्या प्रभुता छवि वसु मद धरै।
सपरस रसन घ्रान द्रग स्रवतनि पंच विषय सेवत न डरै।।२।। टेक.
राज चोर त्रिय असन चतुरविधि निस वासर विकथा उचरै।
दूत मास-मद रचि गनिका रस आखेटी परनारि हरै।।३।। टेक.
तसकर होइ [१]हरै पर संपति सात विसन सेवत सुमरै।
क्रोध मान माया छल छुद्रम चारि कसाई नहीं विसरै।।४।। टेक.
गहि एकांत विनय विपरीतहि संसय सहित अजान लरै।
ए छत्रीस प्रकति भाषा करि ग्रंथउकत देवीदास धरै।।५।। टेक.

(११) राग सोरठ

धरत गति तिरजंच जे मरि धरत गति तिरजंच।
और की निद्रा सदा मद आपनी परसंच। टेक।।१।।

१.. मूल प्रति में "रहै" शब्द है।

थपत मिथ्यामत रचत पर जियनि कौं दुख अंच।
सोचवंत अकाल केली हित न चित इक कंच।।२।। टेक

हृदैं तसु कापोत लेस्या दुर विचार किरंच।
सीलहन जनि ध्यान आरति दया उर सुन रंच।।३।। टेक

धातु न जु रसु गंध सुद्ध असुद्ध देत खिमंच।
तौल माप सु देत घटि बडि लेत मोलिनि वंच।।४।। टेक

भरत झठी साख कुवचन सहित जुत परपंच।
क्रिया चोर कुधर्म उपदेसन कुधी उक तंच ।।५।। टेक

(१२) राग जैजैवंती

ऐसो निरमल देव मेरे मन भायो है।
गुन कौन अंत जाके गन-फनपति थाके।
रसना सहस करि पास नांहि पायो है।।१।। भाई ऐसो.

घातिया करम चारि आठ दस दोष टारि।
सकत सम्हारि भव भ्रमनु नसायो है।।२।। भाई ऐसो.

परम अतिंद्री ज्ञान प्रगटयौ सहज आन।
अति सुख दान परधान पद पायो है।।३।। भाई ऐसो.

राग दोष मोह मल खोइ कैं भए सबल।
देवीदास ताहि वार-वार सिर नायो है।।४।। भाई ऐसो.

(१३) राग जैजैवंती

सेवैं परकामिनी जे जन ध्रक-ध्रक हैं।टेक।।
सुमतिन घट माहीं सुभ करतूति नांही।
करनी असुभ दुरगति मैं ढरक हैं।।१।। सेवैं.

विघन करत भारी कुल कौं लगावैं गारी
टुक सुख हेत मूढ परत भरक हैं।।२।। सेवैं.

सुरग मुकति दोई तिन्हि कौं कठिन सोई।
सुगम सहज गति नियरी नरक हैं।।३।। सेवैं.

सील सुरतरू खोवैं विष को विरख वोवैं।
जाके दुख के सु नर कौन विवर कहैं।।४।। सेवैं.

(१४)राग रामकली

देखि कैं स्वरूप परमातमा मैं रचिये।
धरि निज गुन ध्यान रुचि परतीति आन

करि सधान भवगति मैं न नचिये।।१।। टेक
जाही के लखत मोख हरत सकल दोष परम संतोष।
धरि भ्रम मैं न पचिए।।२।। टेक
ताही की परख बिनु वाडत करम रिनु कीजैं जौ उपाई।
कोटि काल सौ न बचिये।।३।। टेक
या मै न कठिन कोई सहज प्रगट होई।
अैसो देव तजि देवी और सौं न लचिये।।४।। टेक

(१५) राग भैरों

नाभिनंदन चरन सेवहु नाभिनंदन चरन।
तीनि लोक मंझार सांचे देव तारन तरन।।१।। नाभिनंदन॰
धनिक सैतन पांच सोभित विमल कंचन वरन।
कामदेव सु कोटि लाजत कोटि रवि छवि हरन।।२।। नाभिनंदन॰
काम क्रोध सुलोभ भागे आपु तिन्हि के डरन।
सहज दोष टरे अठारह आदि जनमनमरन।।३।। नाभिनंदन॰
भक्तिवंत सु पुरिष तिन्हि के संत अंतहकरन।
ऊँच गति कुल गोत उत्तिम लहत उत्तिम वरन ।।४।।नाभिनंदन॰
मानि करि भव भय सुभविजन आनिले तसु सरन।
देत देवियदास पानी मुक्ति तरवर जरन।।५।। नाभिनंदन॰

(१६) राग रामकली

भगति महि जितु देत प्रभ तेरी भगति महि चितु देत।
मूढता सुविसारि छिन महि होत संत सुचेत।।१।। टेक
जगत माँहि सु भव्य प्रानी तीनि जोग समेत।
पढत मुख कर सीस नावत मनु सुफल करि लेत।।२।।टेक
तरन-तारन जानि जिनवर आपनौ हित हेत।
पुन्य अति उपजत सुदरसत असुभ करमनि रेत।।३।। टेक
मोह रिपु कौ होत सनमुख रोपि करि रन खेत।
बांधि मुख तसु करत कारौ धरत पंथ सुपेत।।४।। टेक
लखत तुम दुति बंधत माथैं मुकतिपुर कौ नेतु।
देवियदास सु होत प्रानी परम आनंद केत।।५।। टेक

(१७) राग विरावर

ये लछिन मुनिराज के लखिकै परगाहो।
पंचमकाल विषै अवै दखिनि दिसि पाहो।।१।। ये लछिन०

कालु पाइ कबहू जहाँ भोजन कौ आवैं।
पंच घरा फेरि लेत हौ निरदूषन पावैं।।२।। ये लछिन०

ठाढैं लघु इक बार कैं भुगतैं थिर नाँही।
विष अंम्रत सम एक सौ तिन्हि के व्रत मांही।।३।। ये लछिन०

अंतर वाहिज कौ नहीं परिगह विधि दोऊ।
तिन्हि के गुन परखैं नहीं समकित बिनु कोऊ।।४।। ये लछिन०

निरमल पर-परनति बिना आतमरस रंगी।
ऊजरपुर कानन बसैं मुद्रा धरि नंगी।।५।। ये लछिन०

अग्रवार कौ कोटि मोहैं साइक लीजै।
जा समान परिग्रह धनी मुनिवर न कहीजै।।६।। ये लछिन०

मुनिवर मानि सु देत जे भोजन सठ काहौ।
तिन्हि कौं दुरलभ ज्ञान कौं देवीदास सुलाहौ।।७।। ये लछिन०

(१८) राग विरावर

मन वच तन करि साधु के हम ही गुन गावैं।
साधुनि तजि हमरे मनै कोई और न भावैं।।१।। मन वच०

पंच महाव्रत कौं धरैं पचइंद्री दंडैं।
पंच समिति पालैं छहआवासक मंडै।।२।। मन वच०

ठाढैं लघु इक बार कैं भोजन रुचि हीनैं।
भारौ देत सरीर कौं बिनु वसन उदीनैं।।३।। मन वच०

केस लौंच सपरैं नहीं दंतनि न प्रछालैं।
भूमि सैन गुन मूलये अट्ठाइस पालैं।।४।। मन वच०

सम्यक दरसन आदि दै तीनौं गुन भारी।
देवियदास सुचरन कौं नित धोक हमारी।।५।। मन वच०

(१९) राग भैरौ

समझि मैं जाकी आतमीक ज्ञान है।
स्वपर विवेकवंत जगत मैं सोइ संत जाकी
सुरमति पैसु और कौन स्यान है।।१।। टेक

राग दोष मोह नाहीं सहज सुदिष्टि मांही
धरम सुकल साध्यौ तिणही सुध्यान है।।२।। टेक

पाप अरु पुन्य दोउ कर्म मैं न भेद कोउ
वनिज मैं जाकी कहं विडतौन ज्यान है।।३।। टेक

सांचौ सुख मानैं निज महिमा हिए मैं आनैं।
देवीदास पद तिनहीं कौं परधान है।।४।। टेक

(२०) राग नट

मूरति देखि सुखु पायो मैं प्रभ तेरी।
एक हजार आठ गति सोभित लछिन सरस सुहायो।।१।। टेक

जनम जनम क्रत असुभ करम कौ रिनु सबतुरत चुकायो।
परमानंद भयो परिपूरित ज्ञान घटा घट छायो।।२।। टेक

अति गंभीर गुनानवाद तुम मुख करि जात न गायो।
जाके सुनत सरदहत प्रानी कर्म फँदा सुरझायो।।३।। टेक

विकलपता सुगई अब मेरी निज गुन रतन भंजायो।
जात हतौं कौडी के बदलै जब लगु परखि न आयो।।४।। टेक

परि-परिनाम कुग्राम वासु तज आतम-नगर बसायो।
देवियदास अद्यौत भाव धरि हाथ जोरि सिरु नायो।।५।। टेक

(२१) राग जैजैवंती

मेरैं तौ भगति निसदिन अैसे गुर की सुमति सौं
करिसाट खोलि घट के कपाट पाई।
तिन्हि वाट सो निराट शिवपुर की।।१।। टेक

धरम-धरा मैं पाई धरत सुधीर आई।
तपन बुझाई दुख दाइ मोह जुर की।।२।। टेक

विमूं सुभाव सोध प्रगट्यो सहज बोध।
कर निरोध निरमलताई उर की।।३।। टेक

उपमा सु दीजे काहि धरनै सुसेष ताहि।
देवीतास सुख दाहि गति नरसुर की।।४।। टेक

(२२) राग भैरो

तुम सम जिनदेव और दूसरौ न कोई।
काम क्रोध मोह राग दोष व्याधि खोई।।१।। टेक

कर्म चारि घातिया अनादि के कुजातिया।
अपार दुख दैनहार कालिमा सु धोई।।२।। टेक

अनंतग्यान केवली जरी समान जे बली।
लगै अघातिया सु तौ महा-असक्ति होई।।३।। टेक

विषैसु सर्व सिष्टि मैं धरे सु एक दिष्टि मैं।
प्रतक्ष सर्वभाव लोक वा अलोक दोइ।।४।। टेक

बनाइ नाम की सुमाल बुद्धि सौं महाविसाल
देवीदास कंठ सो नवाइं माल पोइ।।५।। टेक

(२३) राग ईमन

चलैं जात पायो सरस ग्यान हीरा।
दुख दालिद्र दुरित सुक्रत क्रत दूरि भई पर पीरा।।१।। टेक

छित वैराग्न विवेष पंथ पर वरसत समरस नीरा।
मोह धूलि वहि जात जगमझौ निरमल जोति गहीरा।।२।। टेक

अखिल अनादि अनंत अनौपमनिज-निज गुन गंभीरा।
अरस अगंध अफरस अनूतन अलख अखेद अचीरा।।३।। टेक

अरुन सुपेतन हेत हरित दुति स्याम वरन सुन पीरा।
आवत हाथ कांच सभ समझे पर पद आदि सरीरा।।४।। टेक

जासु उदोत होत सिव सनमुष छोडि चतुरगति कीरा।
देवियदास मिटी तिनही की सहज विषम भव भीरा।।५।। टेक

(२४) राग ईमन

कारज क्यौं न करै रे तूं प्रानी।
ज्यौं नर वीजु ववत तहे तैसौ जैसौ ही सु फरै रे।।१।। टेक

तन मन लाइ कुटम के कारन पर की दरव हरै रै।
विषयनि के सुख हेत हरषि करि पाप करति न डरै रे[१]।।२।। टेक

(२५) राग जैजैवंती

जन जे परनारी सेवैं तिन्हि कौ घर कहै।
सुमति न उर माहि सुभ करतूति नाहि[२]।

---

१. इसके पश्चात् पदांश उपलब्ध नहीं है।
२. *मूल प्रति में आगे की पंक्तियाँ अनुपलब्ध हैं।*

ख. पद-पंगति

(१) राग विरावर

तूं जियरे निज तत्व कौ न भयो सरधानी।
काल बहुत भटकत गए तोहि सौंझ विरानी।।१।। तूं जियरे.
मिथ्यामदि करिकैं मत्यौ गुरू सीख न मानी।
तौथैं और न दूसरौ जग मांहि अल्हानी।।२।। तूं जियरे.
जब-जब जिहि गति मैं गयो अपनी करिजानी।
उर अंतर लोचन बिना दरसी न निसानी।।३।। तूं जियरे.
पर परनति रचि ज्यौं तज्यौ पावक जुत पानी।
धाइ-धाई विषयनि लग्यौ त्रसना न बुझानी।।४।। तूं जियरे.
दर्व लिंग धरित पुकर्‌यौ करुना चित आनि।
नवग्रीवक पद पाइ कैं गति-गति फिरि ठानी ।।५।। तूं जियरे.
कुगुरु-कुदेव-कुधर्म की रस रीति सुहानी।
तिहि कारन तौ सौं कह्यौ सठ गैर ठिकानी।।६।। तूं जियरे.
देव धर्म गुरु ग्रंथ की दिढ़ता सुख दानी।
देवियदास प्रतीति सौं तिरहै जिनवानी।।७।। तूं जियरे.

(२) राग विराठर

देह देवरे मैं लखो निरमल निज देवा।
जजन-भजन बिहबार सौं कह मारत ठेवा।।१।। देह देवरे.
आप स्वरूपी आप मैं अपनौं रस लेवा।
राग दोष भ्रम भाव सौं जिहि सौं नल थेवा।।२।। देह देवरे.
जासु विषै परगट सबै ग्रंथनि कौं रेवा।
देखनहार सबै वही सब कौं गुन खेवा।।३।। देह देवरे.
क्यौं तम प्रभ कारन तजौ वनिता घर जेवा।
भूलि भरम कह करत हौं गढि मूरति सेवा।।४।। देह देवरे.
वह सेवक साहिब वही नहिं और कनेवा।
देवियदास सुदिष्टि सौं दरसे स्वयमेवा।।५।। देह देवरे.

(३) राग सारंग

जिन सुमिरन उर वीच बसत जब जिन सुमिरन उरबीच।
सुख सरवंग अभंग लहत तन जनम धरत मरि मीच।।१।। टेक

दुरमति नसति बसति सुरमति उर लहत सुगति अति नीच।
समिता सलिल भरत दिल सागर जल दालिद्र उलीच।।२।। टेक

भगत कलेस जगत जसु प्रगटत लगत न कलमल कीच।
बडत सुकृत तरवर सु सबल फल देवियदास नगीच।।३।। टेक

(४) राग सोरठ

सेव सकल सुखदाई रे जाकी सेव सकल सुखदाई रे।
सेवक घट दिन हूं दिन बाडत सुकृत[१] बेलि सवाई रे।।१।। जाकी॰

भूख तृषा तह राग दोष मल जन्म-जरा न बसाई रे।
मोह मरन तन रोग न जाकै नहिं निद्रा न कषाई रे।।२।। जाकी॰

निर्मल देव विमल कंचन सम मदन विवर्जित काई रे।
विगत अचिर्ज न स्वेद पसीजत कै सक कौन बड़ाई रे।।३।। जाकी॰

सोग अरति मर्दन मद मच्छर चिंता चुत चपलाई रे।
रहित अठारह दोस निरंतर तीनि लोक पसराई रे।।४।। जाकी॰

काल आदि भगति बिनु जाकी निजपुर राह न पाई रे।
देवियदास नमत ता प्रभ कौं बार बार सिरनाई रे।।५।। जाकी॰

(५) राग ईमन

सुगुरु मेरे मन के निकट कब आवैं।
जीव अजीव दसा निरवारन पंथ-कुपंथ बतावैं।।१।। सुगुरु॰

वेद विकार मिथ्यात महाअरि राग दोष सु नसावैं।
हास-अरति-रति-सोग-विथा हरि निरभै ध्यान दिढ़ावैं।।२।। सुगुरु॰

रहित गिला न मान माया छल लोभ लहरि सु विलावैं।
क्रोध कलंक पंक सु प्रच्छालन सहज सुथिर पद पावैं।।३।। सुगुरु॰

यहु आभ्यंतर संग चतुर्दस बाहिरयंग गसावैं।
दरसन-ग्यान-चरन-तप-संजिम सहित मुकति मुख धावैं।।४।। सुगुरु॰

तारन-तरन सरन-संतनि के ते निरगंथ कहावैं।
देवियदास करत हम तिन्हि कौं बार-बार सिर नावैं।।५।। सुगुरु॰

(६) राग ईमन

निकट कब आवैं सुगुरु मेर मन के।
जनम-जनम कृत पाप विनासत होत न बिन दरसन के।।१।। निकट॰

१. मूल प्रति "सुकृत कृत बेलि"।

कसत सरीर धीर सहि संकट वसत विकट ठवन के।
देखनहार अनिष्ट इष्ट सम कांच-खंड सुवरन के।।२।। निकट०

दीनदयाल सील सुख सागर आगर कुगति सदन के।
कोमलभाव उछाह सुरस जुत उपदेसक भविजन के।।३।। निकट०

परम प्रधान महान जौहरी निरखी अनभौं रतन के।
सुद्धपयोग भोग भर मंडन खंडमहार विघन के।।४।। निकट०

बलवीरज गुनवंत सुखाकर धर्म धुरंधर धन के।
अतिउदार जुत सार महाव्रत सुरझावन उरझन के।।५।। निकट०

सेवक सहज लहत तसु छिन मैं सुक्ख सरस सुरगन के।
धन्य-धन्य परताप मिलैं जब मुनि इहि विधि परपन के।।६।। निकट०

दुखहरता करतार महामुनि तत्व समूह कथन के।
देवियदास अटल सरधानी होत भए सु वचन के।।७।। निकट०

(७) राग सारंग

जे नर कामकलंक चकित चित जे नर काम कलंक।
तिन्हि कौं असुचि मलिनि उर अंतर ज्यौं जल गरभित पंक।।१।। चकित०

निज परनारि विचार न जानत वरतत होइ निसंक।
जे अविवेख प्रकार बजावत अति अवजस की डंक।।२।। चकित०

बहिर वदन परिनाम अनारज मन वच तन करि बंक।
दुख दालिद्र लहत नरगति महि भीख भखति होइ रंक।।३।। चकित०

त्रास अनेक सहत पसुगति धरि बाल तरुनपन झंक।
नरक कलेस लहत त्रसनादिक असन नहीं इक टंक।।४।। चकित०

भवसागर परि जे न सरदहत सुनि गुरवचन धमंक।
देवियदास विषै रस परनति भ्रष्ट भए निज अंक।।५।। चकित०

(८) राग ईमन

सरन जिन तेरे सुजस सुनि आयो।
तुम हौं तीनि लोक के नाइक सुरझावन उरझायो।।१।। सरन०

आठ करम वैरी तिनि मेरौ निज मारग विसरायो।
परम धरम धन लूटि हमारौ मोहि कुपंथ लगायो।।२।। सरन०

परवस मैं परिदेह कोठरी काल अनादि गमायो।
को कवि वरनि सकै सुवेदना सुख सपने सु न पायो।।३।। सरन०

इन्हि हमकौ बिनु कारन दीनौ दुख अपनै मन भायो।
श्री भगवंत अंत नहिं जाकौ छिन-छिन होत सवायो।।४।। सरन॰

ज्यौं इनि वैरिनि कौं तुम जीते सो मुझ क्यौं न बतायो।
सो समुझाइ कहौ अब जौं निज चाहत पंथ चलायो।।५।। सरन॰

(९) राग ईमन

सुनौं मेरी बातें अहो भवि प्रानी।।सुनों मेरी बातें।।
सकति सम्हार सो होहु निराले तन मन विकलप तातैं।।१।। अहो॰

यो तन जड पर रूप अचेतन चिनमूरति चतुरातैं।
लक्षन भेद उभै पद न्यारे भेद ज्ञान सरधातैं।।२।। अहो॰

तुम अपनी रस रीति बिसारी मोह महामद मातैं।
पुदगल की परतीति बढ़ाकरि हिलत मिलत बिनु नातैं।।३।। अहो॰

राग दोष परिनामनि के रुख विरचे ज्ञान-कला तैं।
काल अनादि गए भव भीतर विमुख रह्यौ सु सखातैं।।४।। अहो॰

सदगुरु सबद-अबद करु भाई आतमध्यान लगातैं।
देवियदास सहज जब छूटौ वसुविधि कर्म-फदातैं।।५।। अहो॰

(१०) राग धनासिरी

आतम तत्व विचारौ सुधी तुम आतम तत्व विचारौ।
वीतराग परिनामनि कौं करि विकलपता सब डारौ।।१।। सुधी॰

दरसन ज्ञान चरनमय चातुर सो निहचैं निरधारौ।
निज अनुभूति समान चिदानंद हीन अधिक न निहारौ।।२।। सुधी॰

सुर दुरगंध हरित पियरी दुति सेत अरुन पुनि कारौ।
कोमल कठिन चिकन सब पुदगल दरब पसारौ।।३।। सुधी॰

सीत उष्ण हल्कौ तन भारी कटु कोमल मधुरारौ।
तिकत कसाइल गुन सु अचेतन सो नहि रूपु तुम्हारौ।।४।। सुधी॰

आपु निकट घट मांहि विलोकहु सो सब देखन हारौ।
देवियदास होइ इहि विधि सौं जड चेतन निरवारौ।।५।।सुधी॰

(११) राग धनासिरी

अपनहु पद न सम्हारौ चेतनि अपनहु पद न सम्हारौ।
घर-घर डोलत करत फिरे तुम बिनु स्वारथ मुख कारौ।।१।। चेतनि॰

औरनि देत सिखापन सूधौ परम सरस अति भारौ।
आपुन काज निकट करि राखे दीवट तर अंधयारौ।।२।। चेतनि॰

पर-परनति गति-गति अति भूले कहिवति कुटुम हमारौ।
तिन्हि के काज उपाइ करत बहु चेतन नांहि संवारौ।।३।। चेतनि॰

तुम्हरहु पद तुमही कौं सोहत सो तुम क्यौं न विचारौ।
राग दोष मद मोह विवर्जित आठ करम तैं न्यारौ।।४।। चेतनि॰

भूलि-भूलि औरनि सु पुकारत ए प्रभ जू मोहि तारौ।
देवियदास तरौ करनी निज और न तारन हारौ।।५।। चेतनि॰

(१२) राग ईमन

खबरि किम भूले अहो मेरे भाई।
देखौ प्रगट स्वरूप आपनौ अंतरदिष्टि जगाई।।१।। खबरि॰

राग दोष मद मोह तिन्हैं तुम धाइ लगे लपट्याई।
ते तुम तै सरवंग निराले क्रूर प्रचुर दुखदाई।।२।। खबरि॰

परस्वारथ परमारथ मान्यौ गाह गही गहि आई।
मिथ्या तिमिर लग्यौ तुम्हरे दृग निज पर परखन पाई।।३।। खबरि॰

काल अनादि विषै रस गृते परम धरम विसराई।
तुम तैं और नहीं पुनि भौंदू ब्याह माझ खरि खाई।।४।। खबरि॰

लौगनि ठगत पगत पर जोगनि करत बहुत चतुराई।
वेद-पुरान कहत समुझावत कारन रूप बड़ाई।।५।। खबरि॰

तुम चतुरंगनि पुन चिनमूरति जड पुदगल परजाई।
खोज लगाइ लखौ घट अंतर खौजनहार सु ताई।।६।। खबरि॰

इह विधि सौं मन कीधु करौ कौ बार-बार समुझाई।
देवियदास कहत तुम चाहत जौ चिरकाल निकाई।।७।। खबरि॰

(१३)राग धनासिरी

तुम अपनो पद भूले चेतनि तुम अपनौ पद भूले।
विचलत ज्यौं नर माधिकता करि घर तजि लोटत धूले।।१।। चेतनि॰

नित्य निगोद अनादिउ तन तैं निकसि भए अध खूले।
चारि गतैं गढि बेढि पलिकियनि कर्म हिंडोरा झूले।।२।। चेतनि॰

ऊ भटका जसि ताव पाइ ले मारग सनमुख लूले।
निज द्रग करि निज धन न विलोकत देखि विभौ पर फूले।।३।। चेतनि॰

तुम अनुपदुति और पदारथ जे जग मैं वदसूले।
कबडी कौं बहु बार बिकानैं पात विषैं होइ मूले।।४।। चेतनि॰

एक समै अनभौ रस पीकरि छोडि भरम बघरूले।
देवियदास मिलै तुम्हरौ पद आनि तुम्हैं पग धूले।।५।। चेतनि॰

(१४) राग सारंग

आतम-अनभव सार जगत महि आतम-अनभव सार।
समर समय तन-मन सुवचन क्रत रहित सकल व्यौपार।।१।। जगत॰

जासु समै नौ दर्वभाव विधि कर्मनि सौं न लगार।
मोख स्वरूप सदा निरविकलप वर्जित मोह विकार।।२।। जगत॰

सुभ परिनामनि केवल उपजत सुक्रत सुफल दातार।
सुरनर सुख भुगतत दुख गरभित जीव अनेक प्रकार।।३।। जगत॰

उतपति दुख असुभ परिनामनि त्रिजग नरक गति धार।
सुखदुख एक विमल चितवनि मैं हेय करम बडवार।।४।। जगत॰

श्रवन कथन उवदेस चिंतवन भजन क्रियादिक आर।
देवियदास कहत इह विधि सौं कीजे स्वगुन सम्हार।।५।। जगत॰

(१५) राग सोरठ

नीच गति परिहै सुमरि नर नीच गति परि है।
मगन विषय कषाय रस जिम लौंन जल गरिहै।।१।। सुमरि॰

कुमति रचि खेलत जुवा नहि विघन कौं डरिहै।
पोषिअ छन मास भक्षन अति निरस करिहैं।।२।। सुमरि॰

खात मदिरा पानि तसु घूमत सुमत हरि है।
रमत तन गनिका सुजन जग मांहि सुदरिमरि है।।३।। सुमरि॰

करत नित आखेट सो सब जियनि कौं अरि है।
त्रास पुनि परतक्ष चोरी करत बेदरि है।।४।। सुमरि॰

मुगध नर परनारि के रस रंग अनुसरि है।
कुगति देवियदास सात सु विष्णतरु फरि है।।५।। सुमरि॰

(१६) ख्याल दादरौ

दरद भई जिनदेव तुम दरसन विनु मोकौं दरद भई। जिनदेव
दीनदयाल गरीब नवाजन या अरजी सुनि लेउ।।१।। तुम॰

देवधर्म गुर ग्रंथ न जान्यौ गहि कुकरम की टेउ।
भजत कुदेव बढ़्यौ दुख दूनौ ज्यों पावक मैं घेउ।।२।। तुम॰
बार अनंत धरे तन थावर तह बहु भांति रझेउ
फिरि उतर्‌यौ विकलत्रक मांहीं खात फिरयौ बहु ठेउ।।३।। तुम॰
नर तिरजंच नरक सुरगति सौं टूट्‌यौ नांही सनेउ।
सुख सपनैं न मिल्यौ कहुं सांच्यौ या जग मैं स्वयमेउ।।४।।तुम॰
निहचै करि भरि रूप न देख्यौ सुनि समझ्यो सुनभेउ।
देवियदास कहत सुख दीजे प्रभु चरनन की सेउ।।५।।तुम॰

(१७) दादरौ

तुरत भजौ जिनराज जौ सुख चाहत जग मैं।। तुरत भजो।।
जा सम और नहीं पुनि दूजौ देव गरीव नवाज।।१।। जौ सुखु॰
सो सरवज्ञ निवाहन हारे सरनागति की लाज।
इक-इक नाम महाहित कारन सरव सुधारन काज।।२।। जौ सुखु॰
एक समै तिन्हि की प्रति देखत जात सवै भ्रम भाज।
जे जग-धीर गंभीर जलधि के तारन-तरन जिहाज।।३।। जौ सुखु॰
मन वच काइ एक चित होकरि कुगुरु कुदेवहि त्याज।
जव घटि है यो असुभ करमनि कौ दैनों मूरि वियाज।।४।। जौ सुखु॰
जे भगवंत तजै नर तिन्हि कौं मुख भरि मिलत न नाज।
देवियदास कहत सु हमारे वसत सदा दिल माज।।५।। जौ सुखु॰

(१८)दादरौ

दिपति महाअति जोर जिनवर चरन कमल दुति।।दिपति महा।।
देखत रूप सुधी जन जाकौ लेत सवै चित चोर।।१।। जिनवर॰
कैंधो तप गजराज दई सिरभरि सैंदुर की कोर।
मोह निसाकरि दूरिभयो कैंधो निरमल ज्ञान सुभोर।।२।। जिनवर॰
कै वसु भांति करम वन दह्यौ सो पावक झकझोर।
कै निज सुक्ख तरोवर के दल उमगि उठै सिर फोर।।३।। जिनवर॰
कै निज-निज गुनरासि रतन की जाकौ विमल अहोर।
कै सिव कामिनि कौ मुख राख्यौ केसरि के रंग बोर।।४।। जिनवर॰
कै निज ध्यान भइ चपला थिर प्रभु धुनि गरजत घोर।
देवियदास निरखि अति हरषित प्रभ घन मन मोर।।५।। जिनवर॰

(१९) राग गौरी

अंतरदिष्टि जगैगौ जब तेरी अंतरदिष्टि जगैगौ।
होइ सरस दिढता दिनहूं दिन सब भ्रम भीत भगैगौ।।१।। जब तेरी॰

काल लबधि आवत सु निकट जब शत संगति उसगैगौ।
अलपकाल महिनिरविकलप होइ गुर उपदेस लगैगौ।।२।। जब तेरी॰

विषय-कषाइ सहज मुरझ्या तन थिर होइ मनु न डगैगो।
होत सुथिर मरि व्याकुलता मति की गहि मोह अनल दगैगो।।३।। जब तेरी॰

वडत विवेख सुरुख घट अंतर पर परनति न पगैगौ।
शमरथ हो करिहै निज कारज अनभव रंग रगैगो।।४।। जब तेरी॰

दरसन ज्ञान चरन सिवमारग जिहि रस रीति खगैगो।
देवियदास कहत तव लगिहै जिय तूं सुद्ध ठगैगौ।।५।। जब तेरी॰

(२०) राग गौरी

आतम रस अति मीठौ साधौ भाई आतम रस अति मीठौ।
स्यादवाद रसना विनु जाकौ मिलत न स्वाद गरीठौ।।१।। टेक.

पीवत होत सरस सुख सो पुनि बहुरि न उलटि पुलीठौ।
अचिरज रूप अनूप अपूरव जा सम औरु न ईठौ।२।। टेक.

तिन्हि उतकिष्ट-इष्ट रस चाष्यौ मिथ्यामत दै पीठौ।
तिनिकौं इंद्र-नरेंद्र आदि सुख सो सव लगत नसीठौ।।३।। टेक.

आनंद कंद सुछंद होइ करि मुगतनहार पठीठौ।
परम सुधा सु समै इक परसत जनम जरा दिन चीठौ।
देवियदास निरक्षक स्वारथ अंतर के द्रग दीठौ।।५।। टेक.

(२१) राग कानरौ

बिनु निज नैन परे जिय धोखैं।
भूलि रहे प्रतपक्षपात गहि करि अपनौ-अपनौ मत पोखैं।।१।। टेक.

एकैं सेत वरन पट पहिरत एकैं मलिन वसन तन औखैं।
एकैं सहित अरून अंमर मुख भाखत जैन जती हम चौखैं।।२।। बिनु॰

केइक ग्रंथ रचत जग वंचत नूतन रीति-प्रीति करि धोखैं।
राखत सीस ज़टा केई लुंचत केइक मूड़ मुड़ा संतोखैं।।३।। बिनु॰

केइक नगन सहित अम्रन करिके इक अंग भभूदि समोखैं।
केइक धूमपान करि पाचत झूलत खात अधोमुख झोखैं।।४।। बिनु॰

केइक पंच अगिनि पिनि बैठत कष्ट सहत तप करि तन सोखैं।
देवियदास सकल जीवनि कौं स्वपर विवेष बिना अति जोखैं।।५।। बिनु॰

(२२) राग सारंग

कीजे कौंनु हवाल अवर हम कीजे कौंनु हवाल।
मन वच काइ जपत अड़ि बैठे श्रीजिनधर गुनमाल।।१।। अवर हम॰

अवर हनहि संस्थानन सार संघनन पुनि मुनिव्रत सुनहाल।
छाइक ज्ञान न छाइक समकित दिनदिन प्रति मति चाल।।२।। अवर हम॰

चंचलता परिनामनि की अति गुर उपदेसु न ठाल।
सिवपुर पंथ थक्यौ तह सो पुनि परगट पंचम काल।।३।। अवर हम॰

वृद्धपनैं त्रसना अधर मरत तरुन सहित रुचिवाल।
सब विपरीति प्रगट तह देखौ षटु मत अति विकराल।।४।। अवर हम॰

कर परितीति धरी सरधा उर देव धरम गुर चाल।
देवियदास प्रसाद मिटैं तसु क्रम-क्रम सौं जग जाल।।५।। अवर हम॰

(२३) राग सोरठ

समकत विना न तर्‌यौ जिया समकित बिना न तर्‌यौ।
बहुकोटि जतन कर्‌यौ जिया समकित बिना न तर्‌यौ।।१।।टेक॰

जाइ वन मनु लाइ तन करि अचल ध्यान धर्‌यौ।
बीस दोइ परिसहा सहि तपत देह जर्‌यौ।।२।। जिया समकित॰

वोध लाभ भयो न कवहू मौन धरि सपर्‌यौ।
लाख क्रोर उपास करि नर कष्ट सहत मर्‌यौ।।३।। जिया समकित॰

भांति वहु विधि सास्त्र जान्यौं अरथ करत खर्‌यौ।
रहित निज आराधना चिरकाल भ्रमत फिर्‌यौ।।४।। जिया समकित॰

सार अमल अनूप अनुवय अतुल रहस भर्‌यौ।
द्वार देवी मुकति कौ समकित सु नर विसर्‌यौ।।५।। जिया समकित॰

(२४) राग सोरठ

मानु-मानु कही जिया तूं मानु-मानु कही तजि विषय राग सही।
कठिनि यह नर देह फिरि श्रावग न कुल मिलही।
बहुरि मन पछितावहू है काल वसि परही।।१।। टेक.

छोडि कुमति कुभाव परनति कुटिलता सब ही।
पांच इंद्रिनि वस विषैं रति मानि मति रचही।।२।। टेक.

फरस वस गज मीन रसना द्रग पतंग दही।
भ्रमर नासा श्रवन सुनि म्रग मरत तान गही।।३।। टेक॰

यह प्रतच्छ विचारि लखि तजु करन विकलपही।
त्यागि पर परनीति पर गुन समझु सीख यही।।४।। टेक॰

(२५) राग गौरी

जिनवानी उर धरतौ जौ तूं भाई जिनवानी उर धरतौ।
सहज होइ इंद्रादिक के सुख गति-गति दुख विसरतौ।।१।। जौ तूं॰

विषय कषाय विरचि-रचि समरस विघनकरत अभ डरतौ।
वसुमद छेदि सुवेदि परम रस सात विसन उदगरतौ।।२।। जौ तूं॰

तीनि लोक विजई छिन अंतर मदन वान दरमरतौ।
वैरिय उभय अनादि काल के राग दोष परिहरतौ।।३।। जौ तूं॰

हेय उपादि ज्ञेय ज्ञाइक गुन भेद समझि सब परतौ।
परम विवेख बडत उर अंतर परख स्वपर वर करतौ।।४।। जौ तूं॰

ब्रत तप सील साधि संजिम गुन आगम अरथ उचरतौ।
इंद्रिय मन गन रोकि करि सुविधि कर्म उछरतौ।।५।। जौ तूं॰

प्रगट समस्त विचारि परमगुन भवदधि पार उतरतौ।
देवियदास कहत जब तेरौ अजर अमरपुर धरतौ।।६।। जौ तूं॰

(२६) राग सोरठ

स्वपर गुन पहिचान रे जिय स्वपर गुन पहिचान।
सत परमपुरिष महान रे जिय।।१।। रे जिय॰

तूं सुछंद अनंद मंदिर पद अमूरतिवान।
मन वचन तन कौ पसारौ सो सकल परजान।।२।। रे जिय॰

चेतना गुन चिन्ह तेरौ प्रगट दरसन ज्ञान।
जड सपरसादिक सुमूरति पुद्गलीक दुकान।।३।।रे जिय॰

नरक नर पसु देव पदवी धरि सुभरम भुलान।
कर्म की रचना सवै तू कर्म कौ करतान।।४।। रे जिय॰

नाँहि तेरैं क्रोध मायालोभ मोह न मान।
नाँहि पुनि तेरैं चतुर्दस मार्गना गुनठान।।५।। रे जिय॰

पंच दर्व सरीर आदि सु जड अचेत अयान।
तैं समस्त सुतत्व ग्याइक सहज सुख निधान।।६।। रे जिय॰

हो अजान रह्यौ कहा करि मोह मदिरा पान।
खोजु अंतर दिष्टि सौं पद आदि अंत पुरान।।७।। रे जिय.

आपनौ निरधार कर तूं निज सरीर सुछान।
स्वाद करि अनभौ महारस परम अंम्रतषान।।८।। रे जिय.

सहज सुद्ध सुभाव तेरौ मिलै जब तोहि आन।
होइ भाग्यवली सुदेवियदास कहत निदान।।९।। रे जिय.

(२७) राग सोरठ

धरहु उर परतीत तसु गुरु धरहु उर परतीत।
वसत तिन्हि कैं चित्त निस दिन सुमति सरवसु रीत।।१।। तसु गुरु.

नगन भेस न लेस परिगह जे सु परम पुनीत।
राग-दोष न मोह तिन्हि कैं वैर-भाव न प्रीत।।२।। तसु गुरु.

भोजनादि अलाभ लाभ विषैं सु हारि न जीत।
रहित भोग सु जोग मंडित रहित नित भय भीत।।३।। तसु गुरु.

पंच विधि आचरन तिन्हि कैं विगत पर परनीत।
एक ही परवान सुख-दुख उष्णता रितु सीत।।४।। तसु गुरु.

भव्यजन उपदेश दाइक दया नाइक मीत।
करत देवियदास तिन्हि की भक्ति गावत गीत।।५।। तसु गुरु.

(२८) राग ईमन

सुजस सुनि आयो सरन जिन तेरे।
हमरे बैर परे दोइ तसकर राग दोष सुन ठेरे।।१।। सुजस.

तुम सम और न दीसत कोइ जगवासी बहुतेरे।
मो मन औरु न मानत दूजौ लीक लगाइ नवेरे।।२।। सुजस.

मोहि जात सिवमारग के रुख कर्म महारिपु घेरे।
आनि पुकार करी तुम सनमुख दूरि करौ अरि मेरे।।३।। सुजस.

यह संसार असार विषैं हम भुगते दुक्ख घनेरे।
अब तुम जानि जपौं निस वासर दोष हरौ हम केरे।।४।। सुजस.

काल अनादि चरन सरनन बिनु भव वन मांहि परे रे।
देवियदास वास भव नासन काज भए तुम्ह चेरे।।५।। सुजस.

५. विशिष्ट चित्रबन्ध-काव्य-खण्ड

१. पर्वतबन्ध कवित्त

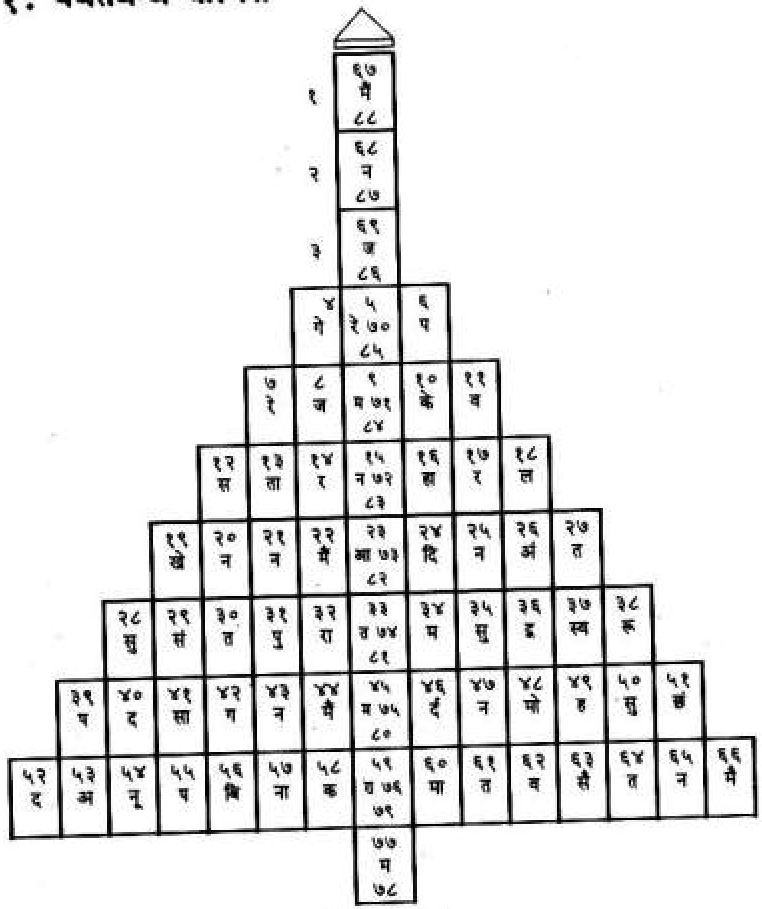

पर्वतबंध कवित्त

मैं न जगे रे परे जम के वस तारन हार लखेनन मैं।
आदि न अंत सुसंत पुरातम सुद्ध स्वरूप दसागन मैं।
मर्द न मोह सुछंद अनूप बिना करामात वसै तन मैं।
मैं न जरे मन आतमराम मरा मत आन मरे जन मैं।।
(जोगपच्चीसी.६)

(२) दोहा- चूलीबन्ध

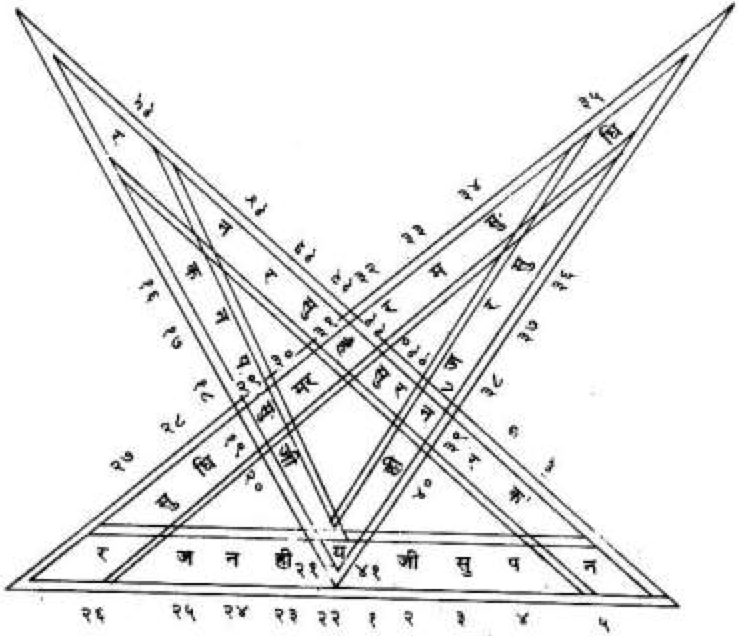

दोहा-चूलीबन्ध

य जी सुपन कर नर सुहै सुर नरकन पसु जोय।
यही नजर सुधि सुमर है रम सुधि सुर जन हीय।।

(विवेकबत्तीसी, ८)

(३) गीतिका-मडरबन्ध

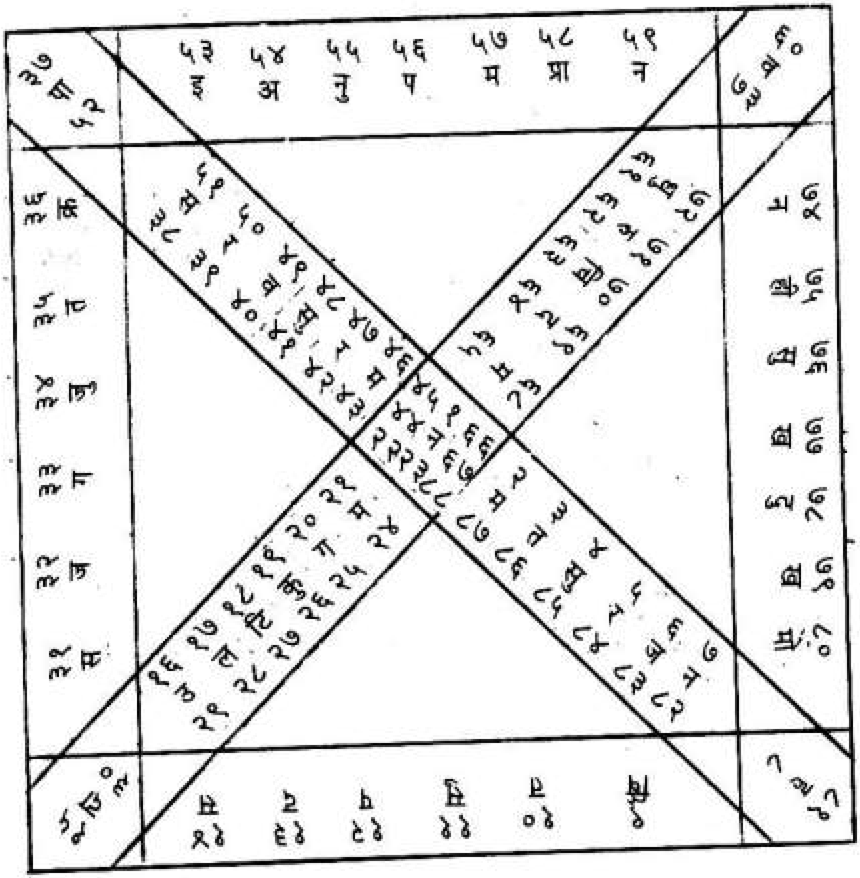

गीतिका-मडरबन्ध

नमत सुरज न हर्षि तसु पद सदा उलटि कुगमन।
न मग कुटिल उदास जग जुत क्रपा सरवसु रमन।।
न मर सुवरस पाइ अनुपम प्रान बधुरुचि दमन
न मद चिरु ध्रुव नही सुख दुख मोह न जरसु तमन।

(जोगपच्चीसी-५)

(४) दोहा-कपाटबन्ध

	१	३	५	७	९	११	१३	१५	१७
	ध	री	ध	दो	द	भी	भा	म	खो
२-१८→ २०-३६→	र्म	ति	रि	ष	हि	त	ग	द	इ
	क	जी	क	मो	ल	वी	रा	प	हो
	१९	२१	२३	२५	२७	२९	३१	३३	३५

दोहा-कपाटबंध

धर्म रीति धरि दोष दहि भीत भाग मद खोइ।
कर्म जीति करि मोष लहि वीतराग पद होइ।।

(विवेक बत्तीसी, ७)

(५) दोहा-कटारबन्ध

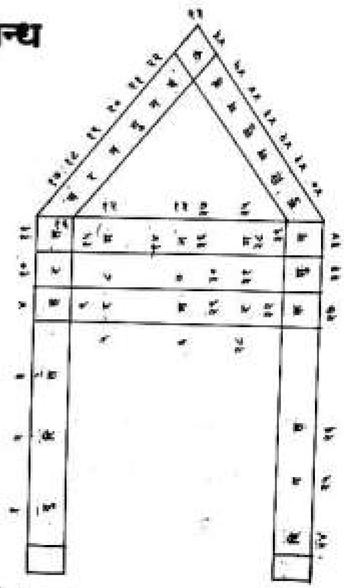

दोहा-कटारबन्ध

दुरित हरन नर हरत मन नमत चरन गुनवंत।
विगत करन नरक सुगमन न मग कुटिल सुमहंत।।

(बुद्धिबाउनी, ९)

(६) दोहरा-चन्द्रमाबन्ध

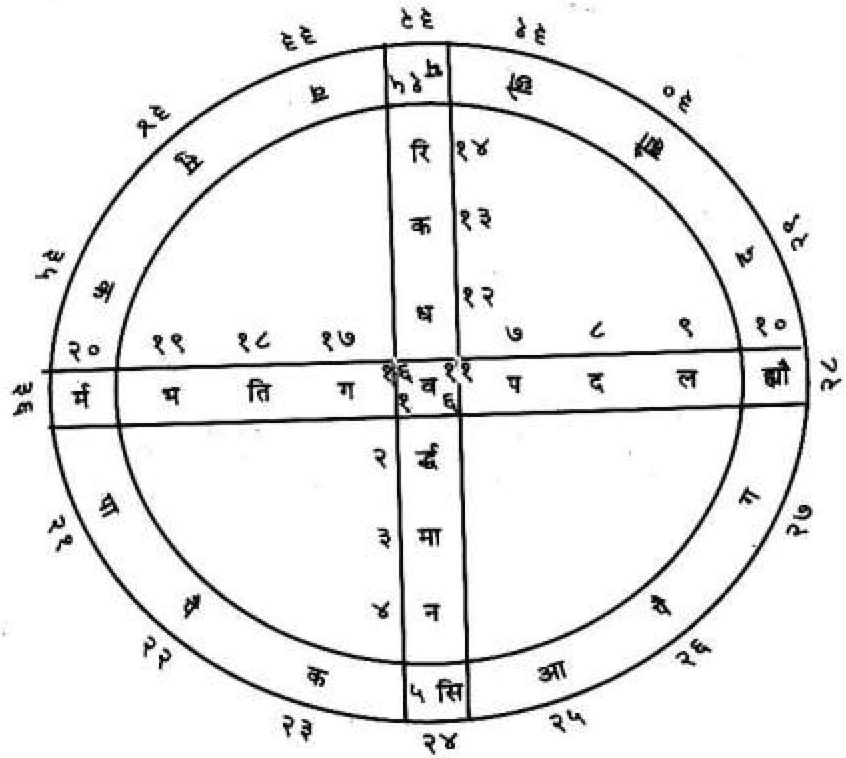

दोहरा-चन्द्रमाबन्ध

वर्द्धमान सिवपद लह्मौ वध करि भव गति भर्म।
पापै कसि आपै गह्मौ दह्मौ छोभ वसुकर्म।।
(जोग पच्चीसी, ३)

(७) दोहरा-चन्द्रमाबन्ध

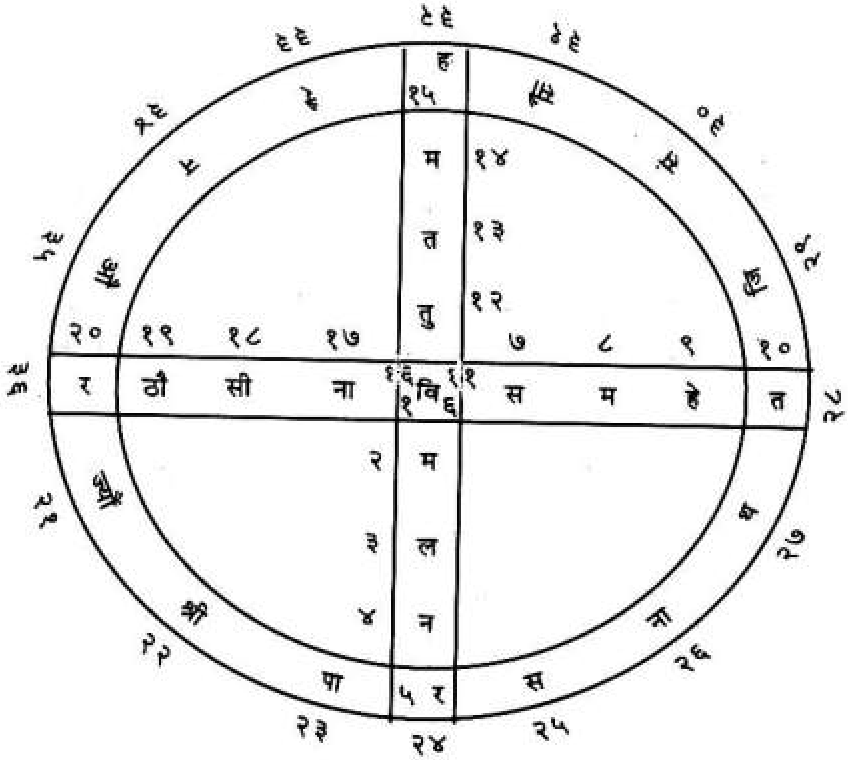

दोहरा-चन्द्रमाबन्ध

विमल न रवि सम हेत वितु तमह विनासी ठौर।
ज्यौं श्रीपारसनाथ तजि संसौ हरै न और।।
(जोगपच्चीसी-२)

(८) दोहरा-कमलबन्ध

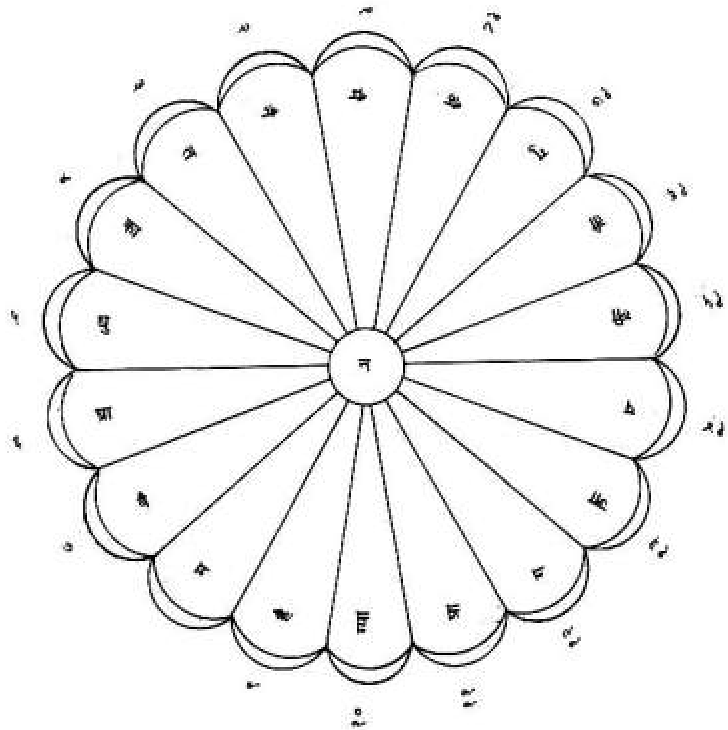

दोहरा

मैन नैन तन कान धुनि घ्रान वैन मन हैन।

ग्यान प्रान गन जान पन लीन तीन गुन अैन।।

(विवेक बत्तीसी, १७)

(९) दोहरा-कमलबन्ध

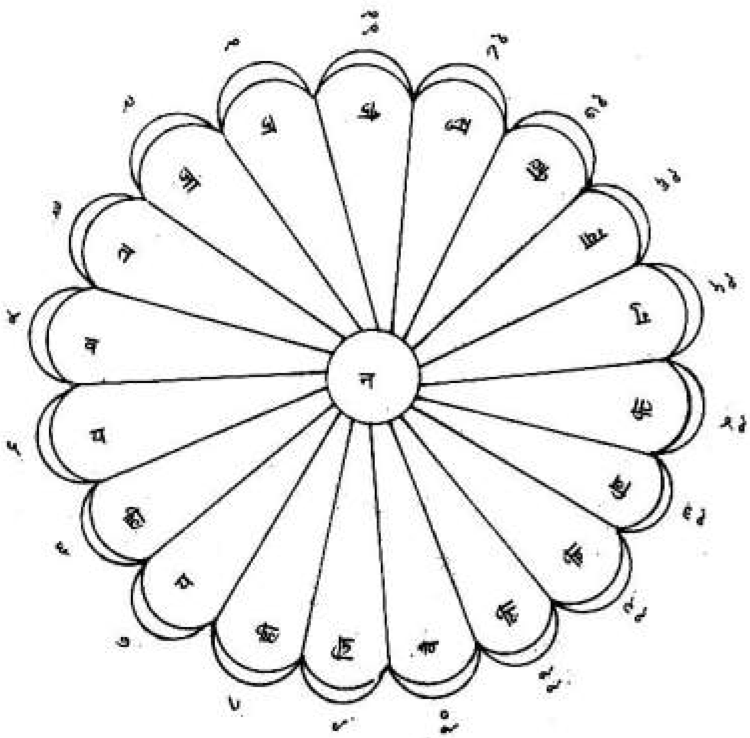

दोहरा-

जन जानत नव नय नही नयन हीन जिन वैन।
लीन चीन विन तीन गुन ग्यान हीन सुन जैन।।

(विवेकबत्तीसी, १३)

(१०)दोहरा-कमलबन्ध

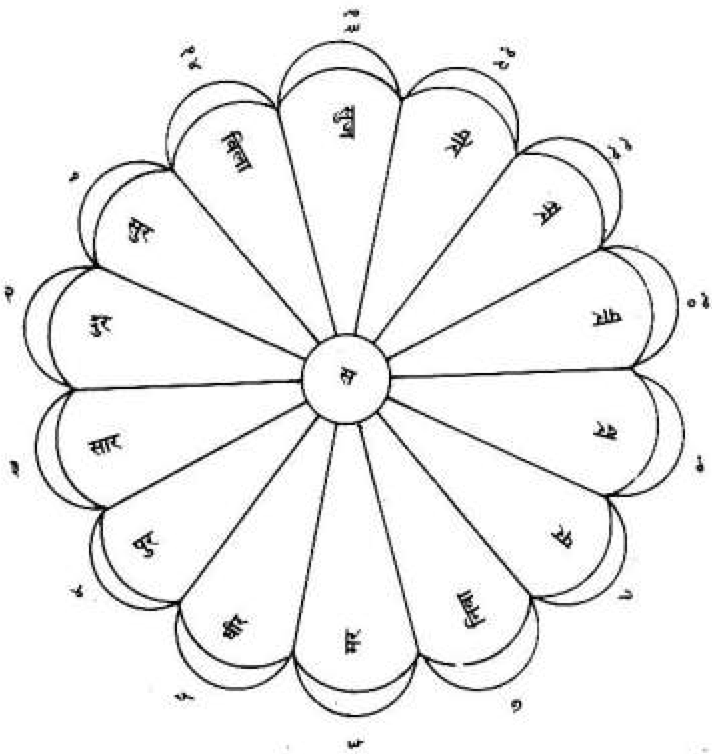

दोहरा

सुरस दुरस सारस पुरस धीरस मरस निवास।
परस दरस पारस सरस पोरस सुजस विलास।।

(विवेकबत्तीसी, २)

(११) दोहरा-कमलबन्ध

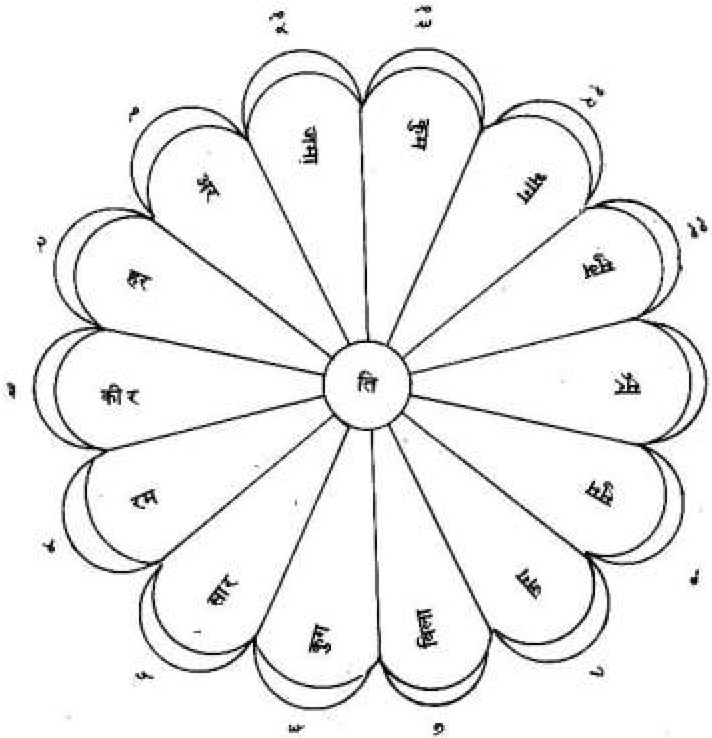

दोहरा-

अरति हरति कीरति रमति सारति कुगति विलाति।
जगति सुमति सूरति सुअति भागति कुमति जमाति।।

(विवेकबत्तीसी, २६)

(१२)दोहा-पर्वतबन्ध

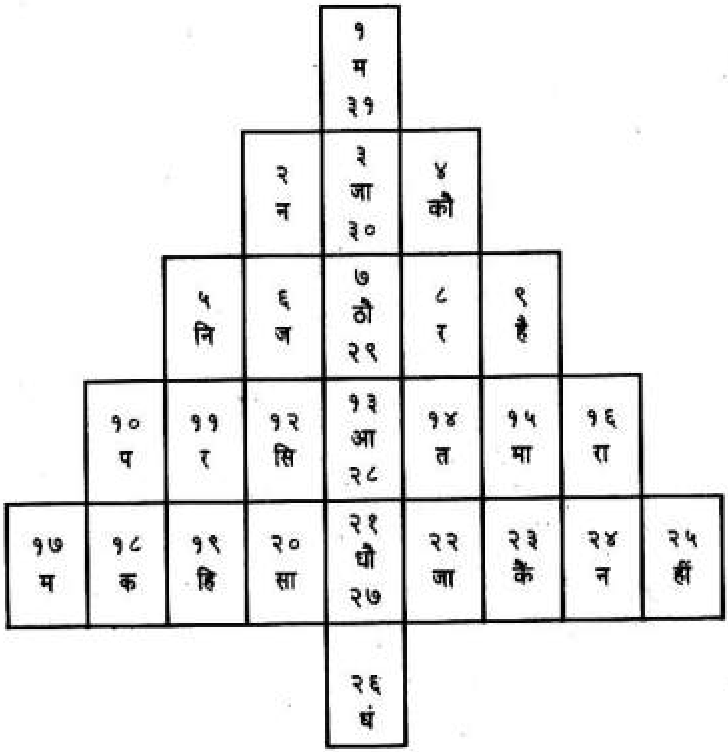

दोहा-पर्वतबन्ध

मन जाकौ निज ठौर है परसि आतमाराम।
कहि साधौ जाकैं नहीं धंधौ आठौ जाम।।

(विवेक बत्तीसी, ९)

(१३) गीतिका-मडरबन्ध

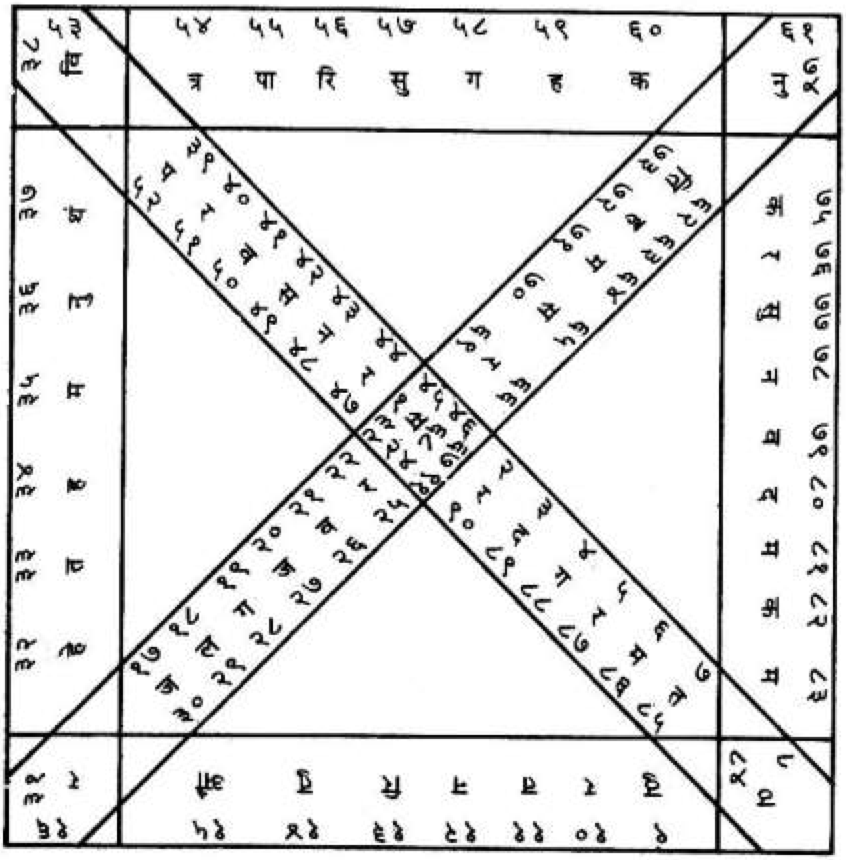

गीतिका-मडरबन्ध

सरद गरम त ठठुर तन रितु और जल गज़ वरस।
सरव जग लज रहे तह मनु थंवि पर वस नरस।।
सरन सवर पवित्र पारिसु गह कनु ति हम सरस।
सरस मह तिनु करसु नव दम कमठ तम रग दरस।।

(जोग पच्चीसी-३)

(१४) सर्वतोमुख-चौबीसा बन्ध

तजि	राज	मती	गिर	नार	गए	वर	जोग	धरे	व्रत	आन	हियैं
भजि	काज	जती	सिर	भार	लए	धर	सोग	हरे	म्रत	जान	जियैं
रजि	लाज	हती	खिर	डार	दए	पर	भोग	करे	नृत	ग्यान	लियैं
अजि	ताज	गती	तिर	पार	भए	सर	रोग	टरे	व्रत	ध्यान	दियैं

सर्वतोमुख चौबीसा बन्ध

तजि राजमती गिरनार गए वर जोगधरे व्रत आन हियैं।
भजि काज जती सिर भार लए धर सोग हरे म्रत जान जियैं।।
रजि लाज हती खिर डार दए परभोग करे नृत ग्यान लियैं।
अजिता जगती तिर पार भए सर रोग टरे व्रतध्यान दियैं।।

(जोग. प.२)

(१५) कवित्त-बन्ध में कवित्त, अरिल्ल, चौपही, दोहा एवं सोरठा

प्रीतम पुण्य समा	न	न	और	सुमित्र हैं	कोइ समीप बखानैं
या जग मैं सुखदा	इ	क	ठौर	पवित्र हैं	पुन्य प्रधान सयानैं
पाप कलेस सदा	न	है	धीर	कुदान मैं	गर्भित है दुख ठानैं
इष्ट लगै करुता	इ	सु	वीर	प्रमान मैं	दोइ कहे कवितानैं

प्रीतम पुण्य समान न और सुमित्र हैं कोइ समीप बखानैं।
या जग मैं सुखदाइक ठौर पवित्र हैं पुण्य प्रधान सयानैं।।
पाप कलेस सदा न है धीर कुदान मैं गर्भित है दुख ठानैं।
इष्ट लगै करुताहिसु वीर प्रमान मैं दोइ कहे कवितानैं।।

(जोग प., १६)

ध्यातव्य - (१) इस कवित्त में अरिल्ल, चौपही, दोहा एवं सोरठा छन्दों की योजना की जा सकती है।

(१६) सर्वतोमुख-सवैया चौबीसा बन्ध

हिया	रसु	काम	बढ्यौ	रुख	सोर	हरी	पर	नार	गई	मति	तास
पिया	तसु	राम	रह्यौ	मुख	मोर	धरी	घर	यार	भई	पति	पास
सिया	जसु	धाम	लह्यौ	सुख	कोर	धरी	भर	थार	मई	सति	आस
जिया	वसु	जाम	सह्यौ	दुख	घोर	करी	कर	तार	ठई	गति	तास

सवैया चौबीसा

हिया रसु काम बढ्यौ रुख सोर हरी परनार गई मति तास।
पिया तसु राम रह्यौ मुख मोर धरी घरयार भई पति पास।।
सिया जसु धाम लह्यौ सुख कोर धरी भरथार मई सति आस।
जिया वसु जाम सह्यौ दुख घोर करी करतार ठई गति तास।।

(बुद्धिबाउनी, ५२)

(१७) दोहा-थनिकबन्ध

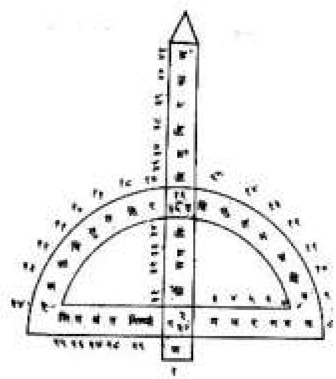

दोहा-थनिकबंध

जनम मरन वन महि भ्रमत सुहित रहित सुविसाल।
रे जिय अंत मिल्यौ नहीं समकित बिनु चिरकाल।।

(जोग पच्चीसी, ६)

(१८) दोहरा-तुकगुपत

१-११	त	जी	वि	भ	व	न	स	र	न	ग	ह	३४-४४
२-२२	त	त	कि	सु	र	सि	व	र	स	नी	त	२३-३३

तजी विभव न सरन गहत तकि सुर सिव रस नीत।
तनी सरवसि रसु कित तह गन रस नव भवि जीत।

(बुद्धि बाउनी; १०)

(१९) दोहरा-तुकगुपत बन्ध

त	जी	वि	भ	व	न	स	र	न	ग	ह
त	त	कि	सु	र	सि	व	र	स	नी	त

भवि जन भज जप नाम जिन यह सो निधि है जैन।
भज-भज ना जिय सोधि जै विन जप मन हनि हैन।।

(विवेक बत्तीसी, ५)

(२०)-दोहरा-अर्द्धतुकगुपतगतागत

त	जी	वि	भ	व	न	स	र	न	ग	ह
त	त	कि	सु	र	सि	व	र	स	नी	त

दोहरा

नई नव सरस वर दसा दरव सरस वन ईन।
नही न गुर पद चिर भनी भर चिद पर गुनहीन।।

(विवेकबत्तीसी, १६)

६. सम्बोध-प्रबोध-साहित्य-खण्ड

(१) हितोपदेश

सदगुर कहै सुनो रे भाई यह संसार असारा।
या विच भ्रमत-भ्रमत इहि चेतनि लहियो वार न पारा।।टेक
बसत निगोद काल बहु बीत्या कठिन देह त्रस धरनौ।
वे जहाँ एक उस्वास स्वास महि जन्म अठारह मरनौ।१।
एक अंगुली के असंख मैं भाग जहा तन हीनौं।
जामैं निवसत जीव रासि सम सिद्ध काल के तीनौं।।
जहतैं जीव लबधि खय उपसम केवल कढ्या अकेला।
क्रम करि एक-एक इंद्रिनि की बडनवार सौं भेला।२।
प्रथवीकाई आदि वे इंद्री आदि धरी बहु काया।
विकलत्रक परजाई भुगति करि पसु पंक्षी मैं आया।।
पसु परजाइ पाइ दुख देख्या भूख त्रषा तह भारी।
बरषाकाल घाम जाडै मैं निसदिन देह उधारी।३।
नरकमांहि जे जे दुख भुगते तिनि का नहीं ठिकाना।
नरगति माहि दुख तन मन का को करि सकै सुछाना।।
सुरगति विषैं विषै की त्रष्णा देत महा अति पीरा।
जासौं होत सबै सुर व्याकुल आकुल ह्रदौ सरीरा।४।
पुन्य पाप फल यह जग भीतर भुगती करम कमाई।
बिना विवेख यही नरगति तूं वार अनंती पाई।।
करि-करि विषयनिके रस राच्यौ क्रतकारित अनमोदै।
पुनि छत्तीस प्रकृति बंधन करि पहुचौं इतर निगोदै।५।
इतर निगोद अर्द्ध नवग्रीवक लौटे फिर्‌यौ सुघेरा।
नाना भांति सुख-दुख भुगतैं कारज सर्‌यौं न तेरा।।
देवधर्म गुरु ग्रंथ सत्य तूं सांचा पंथ न पाया।
बिन सम्यक्त जीव त भटकत बहं तिकाने आया।।६।।

जव अरिहंत देव पहिचानै निज गुर ग्रंथ समूझै।
जव तिन्हि के परसाद आपहू हेय उपादे सूझै।।
जो जिय जिनवर के सुद्रव्य गुन परजाय न जानै।
जो पुनि आप स्वरूप आपनौं नहीं आपु पहिचानै।७।
जब मुहजूद होहि मत परगट सुद्ध आतमा ध्यावै।
अपनै गुन अरिहंत देव के लखि-लखि लीकल गावै।।
आतम तत्व और पुदगल जब जुदा-जुदा करि लेखै।
आप स्वरूप आपनै दिल मै अलष अमूरति देखै।८।
जाते करनै कौ सुजोग्य है सब्दव्रम्ह की सेवा।
जाके अवधारै सु होत भवि सवै पदारथ ग्येवा।।
सबै पदारथ का स्वरूप है सब्दवृम्हके मांही।
वय उतपत्य ध्रौव्य ए तीन्हौ बिना पदारथ नांही।९।
द्रव्य अवरगुन परजाइनि कौ भेद सब्द करि कीन्हौ।
उलखे सब्द बृम्ह के सेवक भलीभांति गुन तीन्हौं।।
इहि परकारक कष्ट बिनु भाई परम ठिकाना लैनौ।
अपनौ निजु सम्हारि गुन पौरिषु कर्मनि कौ रिनु दैनौं।१०।
जे आसान भव्य जन सुनि करि यही नजरि मैं दीजौ।
एही एक मोख कौ मारगु ग्रंथनि मैं लखि लीजौ।।
यह विचार सौ राग दोष अरू मोह परिनमन डारौ।
देवियदास कहत रे भाई कर्म फंदा निरवारौ।।११।।

(२) स्वजोग-राछरौ-

कर्म उदे मिथ्यात्व भूल्यौ आत्मा भव-कानन मांही।
ज्यौं जु रमैं पय सरकरा भव-कानन मांही।।
त्यौं न रुचै जिनधर्म भूल्यौ आत्मा भव-कानन मांही।।भूल्यौ.।।१.

विमुख भयो निज धर्म तैं भव कानन मांही।।
बाँधे मुच इन कर्म भूल्यौ आत्मा भव कानन मांही।।२।।

दरसन ज्ञान चरणमई भव कानन मांही पुदगल के गुन हीन।।भूल्यौ॰
सम्यक दरसन दृग बिना भव कानन मांही स्वपर विवेख अलीन।।भूल्यौ।।३।।

पर पद के रस रंग मैं भव कानन मांही दुरमति उर अवधार।। भूल्यौ.
विसरयौ सरवसु चेतना भवकानन मांही रहित विभाव विकार।। भूल्यौ.।।४।।

परम सुपद परच्यौ नहीं भव कानन मांही समदरसन बिनु आदि।। भूल्यौ.
जप-तप सब संजिम गयो भव कानन मांही वार अनंतीवादि।।भूल्यौ.।।५।।

सम्यकग्यान बिना जिया भवकानन मांही दीनौं सुपद विसारि। भूल्यौ.
भेदा भेदि न करि सक्यौ भव कानन मांही भिन्न-भिन्न निरधारि।।भूल्यौ.।।६।।

संसय सहित विमोह मैं भवकानन मांही विभ्रम जुत बल तीन। भूल्यौ.
भ्रष्ट भयो पद आपनौ भवकानन मांही सम्यकज्ञान विहीन।।भूल्यौं.।।७।।

छांडि परमपद आपनौं भवकानन मांही पंचकरन रस राचि।भूल्यौ.
टुक सुख स्वारथ कौ फंसे भवकानन मांही भवगति गति दुख नाचि।।भूल्यौ.।।८।।

रागदोष परनति रही भवकानन मांही रचना त्रिविधि विचित्र।भूल्यौ.।।
को कवि वरनि सकै विथा भवकानन मांही भटक्यौ बिनु चारित्र।।भूल्यौ.।।९।।

एकु लखैं इकु जानि है भवकानन मांही एक विषैं विश्राम।।भूल्यौ.।।
विमल पंथ जब पगु धरै भवकानन मांही पावै शिवपुर ठाम।।भूल्यौ.।।१०।।

जीवपदारथ की दसा भवकानन मांही सुनि भवि हेत उदास।भूल्यौ.।।
सो निहचै पद पाव ही भवकानन मांही अजर अमर देवीदास।।भूल्यौ.।।
आतमा भवकानन मांही कर्म उदै मिथ्यात।।भूल्यौ.१०।।

७. अतिशय (आश्चर्य) वर्णन-खण्ड

(१) जिनवर-जन्म के दस अतिशय

दोहा

सदा स्वेद वर्जित सु वपु तीन भुवनपति ईस।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्त्तमान चौबीस।।१।।

ऊँ ह्रीं स्वेद रहित-गुण मण्डित श्री वृषभादि वीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

महादेव सब मल रहित जगनायक जगदीश।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्त्तमान चौबीस।।२।।

ऊँ ह्रीं मलरहित-गुण प्राप्त श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

क्षीरवर्ण तिनकौ रुधिर हाथ जोर जुग सीस।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्त्तमान चौबीस।।३।।

ऊँ ह्रीं क्षीरवर्णरुधिर गुण प्राप्त श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

वर संस्थान सु समचतुर हन्ता कर्म हरीस।
लै जलादि पूजौं सुजिन वर्तमान चौबीस।।४।।

ऊँ ह्रीं समचतुरस्रसंस्थानगुणप्राप्तश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

वज्रवृषभ नाराच है वर संहनन सुधीश।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्त्तमान चौबीस।।५।।

ऊँ ह्रीं वज्रवृषभनाराचसंहनन अतिशय गुण मण्डित श्री वृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

कामदेव सूरज छपत कोटि सु तन छवि दीस।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्त्तमान चौबीस।।६।।

ऊँ ह्रीं शोभनीकस्वरूप अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्त चरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

चले सहज सुगन्धता तन विषैं जु धरमीस।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्तमान चौबीस।।७।।

ऊँ ह्रीं परमसुगन्धित अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

आठ अधिक इक सौ कहे लक्षण स्वगुण सरीश।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्त्तमान चौबीस।।८।।

ऊँ ह्रीं सुलक्षण अतिशय गुण मण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

बोलत हित-मित-प्रिय वचन जामें राग न रोस।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्त्तमान चौबीस।।९।।

ऊँ ह्रीं हितमितप्रियवचन अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

बल बेमरजादी कहै देह विषै तिन कीस।
लै जलादि पूजौं सु जिन वर्त्तमान चौबीस।।१०।।

ऊँ ह्रीं अमितबलगुण अतिशयमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् स्वाहा।

सोरठा

दस अतिसय जिनराज जन्मत के परगट कहे।
पढ़त सुनत शुभ काज जिनवर पूजा के सदा।।११।।

ऊँ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु पूर्णार्घ्यम् निर्वपामिति स्वाहा।

(२) केवलज्ञान के दस अतिशय

दोहा

होहि नहीं दुर्भिक्ष जहाँ गुण जोजन सम चार।
लै जलादि पूजौं सु जिन मण्डित जिनवर सार।।१।।

ऊँ ह्रीं चारसौ योजन सुभिक्ष अतिसयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम।

, गमन सहज आकाश में कर सुघातिया छार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।२।।

ऊँ ह्रीं आकाशगमनअतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

काहू जीवन कौ जहां कोऊ घात न होय।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।३।।

ऊँ ह्रीं प्राणिघातनिवारण अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

परमदेव परमात्मा रहित सर्व आहार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।४।।

ऊँ ह्रीं सर्वआहाररहित अतिशयगुण मण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

निरउपसर्ग दसा घनी केवलज्ञान अपार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।५।।

ॐ ह्रीं उपसर्गरहित अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

चतुरानन भास्यो महा सोभित दिसा सुचार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवरसार।।६।।

ॐ ह्रीं चतुर्मुखसहित अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

प्रगट सु ईश्वरता विषैं विद्या सकल अपार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।७।।

ॐ ह्रीं सर्वजगतईश्वरतागुणअतिशयमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

परमौदारिक तन विमल छाया कौ न आकार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।८।।

ॐ ह्रीं छाया रहितं अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

प्रमाणीक सोभा सहित बढ़ै नईं नख वार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।९।।

ॐ ह्रीं नखकेशरहित अतिशय गुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।।

निद्रा कर्म गयौ विनसि पल सों पल न लगाय।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।१०।।

ॐ ह्रीं नेत्रों से पलरहित अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

सोरठा

केवलज्ञान उद्योत भयैं भए अतिसय सु दस।
वरनन कैसे होत सो हमसे मति मन्द पर।।११।।

ॐ ह्रीं केवलज्ञानकृत दसअतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।।

(३) देवकृत चौदह अतिशय

दोहा

सर्व अर्थमय मागधी ध्वनि संशय हरतार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।१।।

ॐ ह्रीं सकल अरधमागधी भाषा अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

सर्व जगत जीवनविषै मैत्री भाव उदार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।२।।

ॐ ह्रीं जीवन विषै मैत्री भाव अतिशय गुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

संपूरण रितु के जहां फूल सुफल द्रुम डार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मंडित जिनवर सार।।३।।

ॐ ह्रीं सर्वऋतु के फल-फूल अतिशयगुण मंडित श्री वृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

दर्पण सम सु दिपै धरा मणिमय परम सुढार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।४।।

ॐ ह्रीं आदर्श भूम्यातिशय गुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

उपजत परमानंद अति सब जीवन हितकार।
लै जलादि पूजों सुगुण मण्डित जिनवर सार।।५।।

ॐ ह्रीं सकल जन आनन्द उत्पादक अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

वायु वृष्टि उछित महा परिमलता पुनि सार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।६।।

ॐ ह्रीं अनुकूल मारुत अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु, अर्घ्यम्।

भूमि सोधने को चलै मारुत पुनि अधिकार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।७।।

ॐ ह्रीं योजनान्तरतृण कण्टक रज उपलभूभाग उपसमत सुगंध वायु अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

गन्धोदक वर्षा बही जहाँ पुनि मेघ कुमार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।८।।

ॐ ह्रीं मेघकुमारदेवकृत गन्धोदकवृष्टिदेवकृतातिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।।

चरण कमल तरु छिपन तसु हेम कमल असरारि।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।९।।

ॐ ह्रीं हेमकमल ऊपर संचरण अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्

सकल नाज संयुक्त कृषि सोभित महा सुढार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।१०।।

ॐ ह्रीं फलभारणनिमित्तसमस्तधान्यआतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

निमर्ल गगन दसों दिशा मलिनता सु परिहार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।११।।

ॐ ह्रीं निर्मलआकासदिगआतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

चतुर निकायी सुर करैं सुर आह्वान विचार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।१२।।

ॐ ह्रीं सुरआह्वानआतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

धर्म चक्र आगे चलै महातेज दुति धाम।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।१३।।

ॐ ह्री प्राति अग्रधर्मचक्र अतिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

अष्ट प्रकार महा सु अति मंगल सुख करतार।
लै जलादि पूजौं सुगुण मण्डित जिनवर सार।।१४।।

ॐ ह्रीं अष्ट मंगल द्रव्य प्राप्ति अतिसयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्त चरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

सोरठा

चौदह अतिशय येह देवरचित जानौ सुधी।
उपजत सुनत सुनेह देवीदास कहत सुकवि।।१५।।

ॐ ह्रीं देवकृतचौदहातिशयगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

८.चतुर्विंशतिजिन एवं अन्य पूजा-साहित्य खण्ड

१. चतुर्विंशति जिनपूजा

दोहा

श्री आदिश्वर आदि जिन अन्तिम सु महावीर।
पूजौं भवसागर सुतर होत पार गम्भीर।।१।।
ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिजिनचरणाग्रेषु पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

द्रुतविलम्वित छन्द

परम पावन नीर सु छानिकै कनक भाजन में भर आनिके।
त्रिविध जोग सु उज्ज्वल हूजिये चतुर्वींशजिनेश्वर पूजिये।।२।।
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिनचरणाग्रेषु जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

अति सुगन्ध सुचन्दन गारिये विमल भाजन मांहि सुधारिये।
त्रिविध जोग सु उज्ज्वल हूजिये चतुर्वींश जिनेश्वर पूजिये।।३।।
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिनचरणाग्रेषु संसारतापविनाशाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सरस तन्दुल उज्ज्वल धोयके मलिनता सु निरन्तर खोयके।
त्रिविध जोग सु उज्ज्वल हूजिये चतुर्वींश जिनेश्वर पूजिये।।४।।
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिनचरणाग्रेषु अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुन्दर ले भर थार में भ्रमर झूम रहे झंकार में।
त्रिविध जोग सु उज्ज्वल हूजिये चतुर्वींश जिनेश्वर पूजिये।।५।।
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिनचरणाग्रेषु कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

उक्त आगम नेवज लीजिए वसन हस्त मलीन न छीजिये।
त्रिविध जोग सु उज्ज्वल हूजिये चतुर्वींश जिनेश्वर पूजिये।।६।।
ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशातिजिनचरणाग्रेषु क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिपत दीपक रत्न जड़ाव के तिमिर हीन दशा दरसाव के।
त्रिविध जोग सु उज्ज्वल हूजिये चतुर्वीश जिनेश्वर पूजिये।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिनरचरणाग्रेषु मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर सुवास समूह सुवस्तु में करहु होम सु लै निज हस्त में।
त्रिविध जोग सु उज्ज्वल हूजिये चतुर्वीश जिनेश्वर पूजिये।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिनरचरणाग्रेषु अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जल सु चन्दन आदिक जो कही दरव लेकर अर्घ रचौं सही।
त्रिविध जोग सु उज्ज्वल हूजिये चतुर्वीश जिनेश्वर पूजिये।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिनचरणाग्रेषु अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिविम्ब पूजत त्रिविध गुणकर थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि परपति कारनै।
अपनो सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनै।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीचतुर्विंशतिजिनरचरणाग्रेषु पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार-श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो नमः)

जयमाल

दोहा

तिनकी भक्ति बिना गये भ्रमत अनन्ते काल।
तिन जिनवर चौबीस की वरणौं गुण जयमाल।।११।।

चौपाई

जय जय आदि जिनेश्वरदेवा जय जय अजित सुखी स्वयमेवा
जय जय संभव जिन सु विधाता जय जय अभिनन्दन गुन भ्राता ।।१२।।

जय जय सुमति कुबुद्धि निवारण जय जय पद्म प्रभु भवतारण
जय जय जिन सु सुपारसस्वामी जय जय चन्द्रप्रभु शिवगामी।।१३।।

जय जय पुष्पदन्त गुण पूरे जय जय जिन शीतल दुख चूरे
जय जय श्रेयांस सुख दायक जय जय वासुपूज्य जगनायक।।१४।।

जय जय विमल विमल गुण दरसी जय जय जिन अनन्त सु समरसी
जय जय धर्म धर्म-धनधारी जय जय शान्ति शान्ति-व्रतभारी।।१५।।

जय जय कुंथु कुगति-गृह आगर जय जय अरहनाथ सुखसागर
जय जय मल्लि करम-द्रुमहाथी जय जय मुनिसुव्रत शिवसाथी।।१६।।

जय जय नमि भगवत मल भंजन जय जय नेमिनाथ भवभंजन
जय जय पार्श्वनाथ परमेश्वर जय जय वर्द्धमान ज्ञानेश्वर।।१७।।

सोरठा

आदि अन्त चौवीस तीर्थंकर गुणमालिका।
वरनी कर धर शीस तिनके भक्तिप्रसादतें।।१८।।

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु जयमालार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(२) श्री आदिनाथ-जिनपूजा (१)

दोहा उन्नत धनुष पांचसै, कंचन वरण शरीर।
वृषभ चिह्न लखि पूजिये, आदिनाथ गुण-वीर।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे पुष्पांजलि क्षिपामि।

अरिल्ल छन्द

शीतल विमल गहीर समुद्र सु क्षीर कौ
भरि थारी महि धार कटोरा नीर कौ।
कारण दुःख सु जन्म जरा मृत हानि के
जासों पूजौं चरण प्रथम भगवान के ।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे जन्मजरामृत्युविनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिर चन्दन घिसकें जलसों हलौं
परम सुगन्ध महा जामें केशर मिल्यौ।
सन्मुख होय सु हरष हेत निज ज्ञान के
जासौ पूजौं चरण प्रथम भगवान के ।।३।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशाय चन्दनं निर्वपामिति स्वाहा।

परम सुगन्ध अखण्डित तन्दुल शालिके
धवल बरन सम चन्द सुपेत सुहाल के।
थारी लेकर हेत स्व-पर पहिचान के
जासों पूजौं चरण प्रथम भगवान के ।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजौं कमल सुबेल चमेली केतकी
जासु विषै वरवसत वास अति हेतकी।
कारण हेत विनाशन विरह सु वानके
जासों पूजौं चरण प्रथम भगवान के।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना रस विधि सहित व्यंजन खरे
घृत पकवर पकवान आदि मेवा धरे।
दूर करन के हेत क्षुधा-दुख दान के
जासों पूजौं चरण प्रथम भगवान के।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल जासु प्रकाश धूम वाती विना
दीपक ज्ञान स्वरूप मोह कीनौ निना
ल्यायौ मेटनकौ सु तिमिर अज्ञान के
जासौं पूजौं चरण प्रथम भगवान के।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ले दशांग वर धूप अग्नि महँ खेवहूँ
दो कर जोरि वचन मन देकर सेवहूँ।
जारन हेत करम वन अरि दुर्ध्यान के
जासों पूजौं चरण प्रथम भगवान के।।८।।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल अर बादाम सुपारी लीजिये
फल इन आदि उतार अग्र धर दीजिये।
कीजे भक्ति सुकाज प्रगट निर्वान के
जासों पूजौं चरण प्रथम भगवान के।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

नीर विमल चन्दन चांवर अर फूल लै
नेवज दीप सुधूप सरस फल थूल लै।
यह विधि अरघ संजोय सुकृत फल ठान के
जासों पूजौं चरण प्रथम भगवान के।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे अनर्घपदप्राप्तये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरखि जिन प्रतिबिंब पूजत त्रिविध कर गुन थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
अपनौ सुनिज परिवार पालन कौं सुकारज सारनै।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथ जिनचरणाग्रे पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार श्रीवृषभाय नमः)

जयमाल

दोहा

प्रथम आदि जिनवर भये आदि चतुर्थम काल।
मति माफिक तिनकी कहौं भाषा कर जयमाल।।१२।।

पद्धरी

सर्वार्थ सिद्धि तज के सुआय, कुल में अति उत्तम नाभिराय।
उतरे दुःख हरन सु आदि भूप, मरु देवी तिनकी सुकूख।।
दिन वदि असाढ़ दोयज सुवार आयोध नगर सुर गति उनहार
तसु जनम नमैं वदि चैत मास सुनक्षत्र उत्तराषाढ़ मास।।१३।।

चौरासी पूरवलक्ष आव, भुगती है तिनने अति उछाव।
कुंवरावर पूरव लाख बीस पुन राज करो सुरपति सरीख।।१४।।

त्रेसठ सु लाख पूरब विसाल तप एक लाख पूरव सु काल।
तप दिन वदि चैत नमैं अनूप दीक्षा जुत चार सहस्र भूप।।१५।।

वट वृक्ष तरैं लीनी सु हर्ष, आहार एक वीती सुवर्ष।
पुर हस्तनाग जहाँ नृप श्रेयंस तिनकें इक्षुरस लीनौं सुहंस।।१६।।

छदमस्त रहे सु हजार वर्ष पूर्वायन काल विषैं सु सर्ष।
फागुन वदि ग्यारस दिन प्रधान उपज्यौ दिनकें केवलसुज्ञान।।१७।।

बारह जोजन बहु विधि प्रकार समवादिसरन वरनत न पार।
चौरासी आदि सु वृषभसेन गनधर तसु वचना रच सु एन।।१८।।

प्रतिगणधर चौरासी हजार सब तीन लाख श्रावक सु सार।
श्रावकनी लाख सुपंच दक्ष वरनौ वर गोमुख नाम जक्ष।।१९।।

जक्षनि तिनके चक्रेसुरीश रक्षा कर बहु विधि नमत शीस।
शिवकारण छोड़त करम गांठ गति सिद्धि जती सु हजार साठ।।२०।।

वरनी सु अर्जिका लक्ष हूठ नव सहस अवधिज्ञानी न झूठ।
वैक्रियक ऋद्धि वारे सु दौर छहसै पुन बीस हजार और।।२१।।

वादी अरु मनपर्यय सुसार पौने तेरह-तेरह हजार।
पुन बीस सहस केवल सुज्ञान तिनके गुन पुन जिनवर समान।।२२।।

इक्ष्वाकुवंश महि गुण गरिष्ठ उपजे परमेश्वर परम इष्ठ।
बदि माघ चतुर्दशमी अदोष अष्टापद चढ़ पहुँचे सुमोख।।२३।।

सोरठा

तिनके गुन कौ पार गन-फनपति पावे नहीं।
मैं यह कियौ विचार पढ़त सुनत सुख ऊपजे।।२४।।

ॐ ह्रीं श्रीआदिनाथजिनचरणाग्रे पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिन बिम्ब पूजै द्रव्य अरू पुन भावसों।
अति पुन्य की तिनकों सु प्रापत होहि दीरघ आयु सों।।
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश-खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२५।।

(३) श्री अजितनाथ जिनपूजा (२)

दोहा

गज लक्षण पुनि धनुष सै साढ़े चार उतंग
सो प्रति अजित जिनेश की, कंचन वरण सु अंग।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

त्रिभंगी छन्द

उज्ज्वल सुखदानी प्रासुक पानी गुरू उर ज्ञानीसम सियरो।
ले सन्मुख आयौ जिनगुण गायौ तन हरषायौ पुन हियरौ।।
वसु करमन दाहत ते सुख साहत जो तुम चाहत शिवनारी।
प्रभु अजित सु पूजौ जिनवर दूजौ नर सुर हूजौ गतिभारी।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनचरणाग्रे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

अति सुरस सुवासी केशर खासी परम हुलासी कर गारौं।
मलयागिर बावन चन्दन पावन निरमल भावन धरि वारौं।

वसु करमन दाहत ते सुख साहत जो तुम चाहत शिवनारी।
प्रभु अजित सुपूजौ जिनवर दूजौ नर सुर हूजौ गतिभारी।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल अति चोखे अमल अदोखे जलकर पोखे विमल छरे।
कोमल सब साजे अति छवि छाजे यह विधि ताजे ले सुथरे।।
वसु करमन दाहत ते सुख साहत जो तुम चाहत शिवनारी।
प्रभु अजित सुपूजौ जिनवर दूजौ नर सुर हूजौ गतिभारी।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

तिन पहुपन छायी परमलतायी अति सुखदायी दृगनासा।
तिनकी वरमाला परमविसाला ले जिन आलय तज आसा।।
वसु करमन दाहत ते सुख साहत जो तुम चाहत शिवनारी।
प्रभु अजित सु पूजौ जिनवर दूजौ नर सुर हूजौ गतिभारी।।५।।

ॐ ह्रीं अजितनाथजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज वर नीकौ तुरत सुधी कौ पुरस विधी कौ हरण क्षुधा।
पाँचों वर मेवा बहुविध जेवा कारण सेवा सुक्त सुधा।[१]
वसु करमन दाहत ते सुखसाहत जो तुम चाहत शिवनारी।
प्रभु अजित सु पूजौ जिनवर दूजौ नर सुर हूजौ गतिभारी।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वर धूप दशांगी परमलचांगी अगनि सुरंगी कर दाहै।
जगमांहि सुखीते विघन वितीते निजमन चीते फल पाहै।।
वसु करमन दाहत ते सुख साहत जो तुम चाहत शिवनारी।
प्रभु अजित सु पूजौ जिनवर दूजौ नर सुर हूजौ गतिभारी।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्म्वपामीति स्वाहा।

बादाम सुपारी लोंग लचारी श्रीफल भारी ऋतुहित के।
लोचन दृग नासा करन हुलासा लै अतिखासा ऋतु-ऋतु के।।
वसु करमन दाहत ते सुख साहत जो तुम चाहत शिवनारी।
प्रभु अजित सु पूजौ जिनवर दूजौ नर सुर हूजौ गतिभारी।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

---

१. मूलप्रति में "उधा"।

जल चन्दन चांवर पहुप सुथावर भ्रमर सु भाँवर दे तिनहे।
चरु दीपक धूपं फल सु अनूपं लै भवकूपं अष्टक लै।।
वसु करमन दाहत ते सुख साहत जो तुम चाहत शिवनारी।
प्रभु अजित सु पूजौ जिनवर दूजौ नर सुर हूजौ गतिभारी।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजौं त्रिविध कर गुण धापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाहि नरपति कारनै।
अपनौ सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनै।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनचरणाग्रे पूर्णार्ध्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार - ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथाय नमः)

जयमाल

दोहा

अजित जिनेश्वर दूसरे, गुण संयुक्त विसाल।
मति माफिक तिनकी कहौं भाषा तिन जयमाल।।११।।

पद्धरी

आनत तज विजय विमान नाम, जितशत्रु नृपति तिनके सुधाम।
विजयादेवी तसु कूख माँहि. तित पटतर और त्रिया सु नाँहि।।१२।।

वदि जैठ अमा रोहिणि नक्षत्र, साकेत नाम नगरी विचित्र।
जन्मन सुदि माहु दशें प्रवीन, वर रोहिणी नाम नक्षत्र लीन।।१३।।

पूरब सु बहत्तर लक्ष आयु, कुँवरावर चौथे भाग जायु।
पूरब सु लक्ष त्रेपन सुराज, भुगतौ फिर करमन कौ इलाज।।१४।।

तप कीनौ पूरब लक्ष एक, दिन माघ सुदि नवमी सुटेक।
दीक्षा लीनी धर शीश हाथ, राजा तिनके सु सहस्र साथ।।१५।।

नीचे सु सप्तछद नाम वृक्ष, बरनौ विधि भोजन की ततच्छ।
गोदूध अजुध्या महि सु लीन, गृह नरदत्त राजा प्रवीन।।१६।।

छदमस्त रहे द्वादश सु वर्ष पुनि केवलज्ञान भयौ सुहर्ष।
चातुरदशमी सुदि पौष मास अपराह्नीक वेरा प्रभास।।१७।।

समवादिसरन बहु विधि वखान साढ़े ग्यारह योजन प्रमान।
तहां सिंहसेन गणधर सु आदि शत एक घाट दश गणि सुवादि।।१८।।

वादी बहु भाँतिन के सुसार शत चार अधिक बारह हजार।
प्रतिगणधर तहाँ वरनै सु लक्ष तिनके सेवक महासेन जक्ष।।१९।।

ये जक्ष-जक्षिनी के सुनाम रोहिणि नामा तिनकी सुबाम।
आर्या बीस-सहस अर-तीस-लाख श्रावग त्रय-लक्षसु निरभिलाष।।२०।।

श्रावगनी लक्ष जहाँ सु पंच गति सिद्धि जती बरजत प्रपंच।
इकलाख संख्य ऋषि हैं महन्त नवसहस-चारि-शत-अवधिवन्त।।२१।।

वैक्रियक-ऋद्धि वारे मुनीश शतचार अधिक सु हजार वीस।
मनपर्यय जुत बारह-हजार-शत-ऊपर पुन साढ़े-सु-चार।।२२।।

जुत सहस-बीस केवल सुबोध तिनकें सब करमन कौ निरोध।
समवादिसरन वरनत समन्त मुनिजन वर्णन पावे न अन्त।।२३।।

उपजे कुल में इच्छाकुवंश सम्मेदशिखर चढ़ दुःख-विध्वंस।
सुर नर मुनिवर करते सु सेव जय जय तुम अजित जिनेश देव।।२४।।

सोरठा

अष्ट करम मल धोय, पहुँचे शिवथानक विषैं।
तिन सम देव न कोय, जगत माँहि तारन तरन।।२५।।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथजिनाग्रे जयमालार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनबिम्ब पूजै द्रव्य अरु पुन भावसों।
अतिपुण्य की तिनकों सुप्रापत होय दीरघ आयु सों।।
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह-निरोगता।
चक्रेश-खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२६।।

(४) श्रीसंभवनाथ-जिनपूजा (३)

दोहा

शोभित धनुष सु चारसै, कंचन वरण सुरंग।
सो प्रति संभवनाथ की, लक्षण सहित तुरंग।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

गीतिका छन्द

मोह जन्मन मरण प्रेरत, करत अति साहस बड़ी।
तिनकी सु भय भ्रामक न छूटत, विषम अति गति-गति खड़ी।।
सो दुख निवारण हेत जल ल्यायौ विषै धर हाथ के।
पूजौं सुरुचिकर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

अर मोह कर्म सु द्रोह करता ओट पर परणति छिप्यौ।
हम पास त्रास करै सु मैं चिरदेत भव भाँवर तप्यौ।।
सो दुखनिवारन हेत चन्दन ले विषैं धर हाथ के।
पूजों सुरुचिकर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

इन राग द्वेष निदान मेरो मलिन उर अन्तर करयौ।
तिनने गरास करौ है मोकों समझ निज पर पद परयौ।।
सो दुखनिवारन हेत अक्षत ले विषैं धर हाथ के।
पूजौं सुरुचिकर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

यह मदनबाण कुचाल अति विकराल खलु पीरा करै।
कबहूँ सुसंगत मिली मोंको परम सुख सम्पति हरै।।
सो दुख निवारन फूल ले, चरणों विषैं धर हाथ के
पूजों सुरुचि कर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे कामबाणविध्वंशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ क्षुधारोग अनादि ही कौ आय नित प्रेरत हमें।
तिहिके सु मारैं ही फिरत हैं जन्तु निसवासर भ्रमैं।।
सो दुखनिवारन हेत नेवज ले विषैं धर हाथ के।
पूजों सुरुचि कर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

उर कुमति आदि लगी हमारैं महातम अज्ञानता।
जाके उदैं सब खबर भूली स्वपर-पर नहिं जानता।।

सो दुखनिवारन हेत दीपक ले विषैं धर हाथ के।
पूजौं सुरुचि कर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सो दर्व कर्म स्वभाव पुन नोकर्म आदि कौ उदौ।
दुख देत मोह महा सु जासौं सहज निर्मल गुण मुदौ।।
सौ दुखनिवारन हेत धूप लिये विषैं धर हाथ के।
पूजों सुरुचिकर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

यह कर्म बहुत प्रकार अन्तर करन हार महाबली।
दुख देत मोह सो सकल भाँतन विघन कर डारत भली।।
सो दुख निवारन हेत फल ले यौं विषैं धर हाथ के।
पूजों सुराचिकर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

वसु कर्म मोह लगे सदा के दुष्ट अपगुण को करैं।
आचरण सब हमरौ भुलायौ क्यों सु भव- सागर तरैं।।
सो दुखनिवारन हेत अर्घ लिये विषैं धर हाथ के।
पूजों सुरूचिकर चरण-अम्बुज निरख संभवनाथ के।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनचरणाग्रे अनर्घपदप्राप्ताय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिनप्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
अपनो सु निज परिवार पालन कौं सु कारज सारनै।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनाग्रे पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार-श्रीसंभवनाथजिनेन्द्राय नम:)

जयमाल

दोहा

संभवनाथ सु तीसरे, हरण विषम जग जाल।
मति माफिक तिनकी कहौं, भाषा कर जयमाल।।१२।।

पद्धरी

उतरे ग्रैवयक तें जघन्य, श्रावस्ती नगरी नाम धन्य।
धर्मज्ञ जितारी नाम भूप, तसु रानि सु सेना अति सरूप।।१३।।

आये पुनि गर्भ विषै सु तास, अठमी उज्ज्वल फागुन सुमास।
मगसिर सुदि की पूनौं पवित्र, जन्मन अति ज्येष्ठा शुभ नक्षत्र।।१४।।

आयु सु पूर्व प्रवसाठ-लाख, कुँवरावर चौथे भाग जास।
पूरब सु चबालिस-लक्ष राज, भुगतत सु होत जानौ अकाज।।१५।।

सहहेतुक तरु दीक्षा अभंग, नरपति तिनके सु हजार संग।
तप कीनौ पूरब लक्ष काल तब दिन पूनै आगहन विशाल।।१६।।

श्रावस्ती नाम पुरी के इन्द्र, जहाँ नीतिवन्त राजा सुरेन्द्र।
भोजन निमित्त तसुभवन आय, लीनौं तिनके पय असन जाय।।१७।।

छदमस्त रहे निज गुणनिकर्ष, पूरी कर जंह दश-चार वर्ष।
कातिक-वदि पंचमि दिन प्रधान, उपज्यौ अनिमिस केवल सुज्ञान।।१८।।

इन चार घातिया अर अजोग्य, अपराहनीक बेरा नियोग।
जोजन ग्यारा विस्तार होन, समवादिशरण बरनै सु कौन।।१९।।

गणधर आदिक वरु चारुसैन, इकसौ-सु पाँच गुण सहित बैन।
प्रतिगणधर लक्ष उभै प्रवीन, श्रावक संख्या कर लक्ष-तीन।।२०।।

आर्या त्रिलक्ष त्रय-सहस साँच, गण श्रावगनी है सु लाख पाँच।
छह सै-नव-सहस सु अवधिवन्त, गति सिद्धजती वरनौ सु संत।।२१।।

ऋषियों की संख्या दोय लक्ष, जक्ष त्रिमुखनाम जक्षी प्रज्ञप्ति।
वैक्रियक ऋद्धिवारे मुनीश, शत आठ कहे सु सहस उनीस।।२२।।

मनपर्ययज्ञान धनी निवास, बारा-सहस्त्र इक सै-पचास।
छह सौ सहस्त्र नव अवधिवन्त, बादी सहस्त्र द्वादश प्रमन्त।।२३।।

समवादिसरन सु विभूतिसार, वरणति तिनकौ लहियत न पार।
छठि चैत सुकल पक्ष दिन जिनुक्त, सम्मेदशिखर पहुँचे सुमुक्त।।२४।।

सोरठा

वंश विषैं इक्ष्वाकु, उपजे भव तारण तरण।
अष्टकरम कर खाक, सिद्ध भये वसु गुण सहित।।२५।।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथजिनाग्रे जयमालार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका छन्द

विधि पूर्व जो जिनविम्ब पूजत द्रव्य अरु पुनि भावसों।
अति पुण्य कीर्तिन कैं सु प्रापत होहि दीरघ आयु सों।।
जाके सुफल कर पुत्र धन धान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश खग धरणेन्द्र इन्द्र सो होहि निज सुख भोगता।।२६।।

(५) श्री अभिनन्दननाथ-जिन पूजा (४)

दोहा

धनुष सो साढ़े तीन सै, कंचन वरन शरीर।
कपि लक्षण अवलोक के, अभिनन्दन प्रतिवीर।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

चाल परमादि मुनि की

अति उज्ज्वल सु विशाल, शीतल प्रासुक पानी,
ल्यायौ कर उत्साह, अति उत्कृष्ट निशानी।
दूर करन के हेत, रोग तृषा अपरत के
पूजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन-जिनवर के।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन परम सुगन्ध, मलयागिर शुभ सीरौ,
केशर मिश्रितगार सरस वरण अति पीरौ।
मोहमयी आताप करन हेत निर्जर के,
पूजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन-जिनवर के।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल परम पवित्र सुलफाई कर कूटे,
परमंलता सु तरंग, सहित सुभाव अटूटे।
धर लैकें भर थार, हेत अभय पद भर के,
पूजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन जिनवर के।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी वेल, अर मचकुन्द चमेली,
रहित सुमन दुर्गन्ध सहित सुवास अकेली।

मूल विनाशन हेत, मदन महा विषधर के,
पूजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन-जिनवर के।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

षट् रस कर संयुक्त, वर नैवेद्य पकाई,
उपमा बहुत प्रकार, मोपर कहीं न जाई।
भूख निवारन काज, थार विषै भर करके,
पूंजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन-जिनवर के।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर प्रकाशन ज्योति दीपक माँहि सुनीकी,
अति जगमगाति अनूप सरब सहायी सुधी की।
हरण हेत अज्ञान ले सब इन समरस के,
पूजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन-जिनवर के।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागर वर धूप खेवत सरस सुहाई,
नभ मण्डल में जाय, परमलता जसु छाई।
दहत हेत वसु कर्म, धूप अगनि में धरिके,
पूजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन-जिनवर के।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

खारक अरु बादाम दाख लवंग सुपारी,
श्रीफल आम अनार, मिष्ट महा अति भारी।
धर भाजन के मांहि हेत सुगति सुर-नर के,
पूजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन-जिनवर के।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आदि सुअन्त दरब विषै धर थारी,
लेकर उर आनन्द सब जीवन हितकारी।
वसु विध अर्घ उतार हेत विघन निर्जर के,
पूजौं चरण त्रिकाल अभिनन्दन जिनवर के।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे अनर्घ्यप्रदप्राप्ताय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिनप्रतिविम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
अपनौ सु निज परिवार पालन कौं सु कारज सारनै।।११।।
ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।
(जाप्य १०८ बार- श्रीअभिनन्दनजिनेन्द्राय नमः)

जयमाल

दोहा

अभिनन्दन बन्दन करत, सुर-नर कर धरि भाल।
मति माफिक तिनकी कहौं भाषा कर जयमाल।।१२।।

पद्धड़ी

छूटौ जब विजय विमान बास, इक्ष्वाकु वंश जामहि निवास।
नरपति संवर सिद्धार्थ रानि, सुख सौं तसु गर्भ वसे सु आन।।।१३।।
वैसाख सुदी छट्ट दिन सुनीत, नवमास गये जन्मन पुनीत।
द्वादशमी माघ सुदी नगीच, जनमे सु पुनर्वसु नखत बीच।।१४।।
प्रभु आयु लाख पूरब पचास, वरनौ कवि आनन्द धरि हुलास।
साढे बारह पूरब सुलक्ष, कुँवरावर में वरसे प्रतक्ष।।।१५।।
पूरब साढ़े छत्तीस लाख, भुगतौ सुराज अति निरपराध।
दिन माघ सुदी वारस सुठाल, तप पूरब लक्ष सु एक काल।।१६।।
दीक्षा सु अरिलिद्रुम तरु सुचेत, लीनी सु सहस नरपति समेत।
नगरी सु अयोध्यानाम सत्य, राजा जहँ कौ वर इन्द्रदत्त।।१७।।
तिनकें गौ-दूध लियौ अहार, विधि पूरन जिन भव-तरणतार।
छदमस्त वर्ष दश अधिक अष्ट, तप करि बहु भांति सह्यौ सुकष्ट।।१८।।
कातिकसुदि तिथि पञ्चमी सुठीक, केवल सुकाल अपराहनीक।
साढे दश जोजन के प्रमान, समवादिसरन तिनकौ निदान।।१९।।
वर बज्र चमर आदिक सुदौर गणधर शत अधिक सुतीन और।
प्रतिगणधर प्रगट सुलक्ष-तीन, आर्या वरनी तपकर सुक्षीण।।२०।।

छहसौ-तीस सहस अरु तीन लाख, पुनि तीन-लाख श्रावक सुद्यात
श्रावगनी लक्ष जहाँ सुपंचगति सिद्धि जती तहाँ च्युत प्रपंच।।२१।।

ऋषियों की संख्या तीन लाख, शत-आठ-सहस नव अवधधार।
उनईस-सहस वैक्रियक ऋद्धि, वारै मनपर्यय समृद्ध।।२२।।

साढ़े छहसौ-इक्कीस-सहस्र, पर के मन की जाने निरस्र।
उपज्यौ केवल तिनकें अपार, जे जिनवर सम सोलह हजार।।२३।।

जक्षेश्वर नाम कहो है जक्ष, वादी सहस्र एकवादि पक्ष।
समवादिशरण तिनकी सुवाति, निज शक्ति उलंघ्य वरनी न जात।
गुणकौ वरणन कीनौ सु लेश, चौथे हैं अभिनंदन-जिनेश।।२४।।

सोरठा

गिरि ऊपर सम्मेद, सुदि बैसाख सु सप्तमी।
अष्ट करम नग भेद, मुक्ति गये बंदौं सदा।।२५।।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दनजिनचरणाग्रे जयमालार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनविम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसों।
अतिपुण्य की तिनकें सु प्रापत होय दीरघ आयु सों।।
जाके सुफल कर पुत्र धन धान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२६।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

(६) श्रीसुमतिनाथ जिनपूजा (५)

दोहा

शोभित धनुष सु तीन सै, विमल वर्ण कलधौत।
लक्षण चकवा सुमति जिन, प्रति गुन सम इकसन्त।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं छिपामि।

गीतिका छन्द

उज्ज्वल वसु गंगा जल सुचंगा परम पावन सीयरौ।
द्रहते मु निकसत दिपत धारा देख हरषत हीयरौ।।

लेकर सुभाजन मांहि धर वर रजत-कंचन शुद्धि के।
पूजौं सु सुमति-जिनेश वर दातार सार सुबुद्धि के।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनप्रतिमाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

परमल सुखाशा दुःख नाशा हेत हरन सुदाहकौ।
तसु भ्रमर लोभित शब्द शोभित करत परम उछाह कौ।।
लेकर सुभाजन मांहि धर वर रजत-कंचन शुद्धि के।
पूजौं सुमति-जिनेश वर दातार सार सुबुद्धि के।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनप्रतिमाग्रे संसारतापविनाशनाय सुगन्धम् निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत सुरासी कमलवासी अति अखण्डित ऊजरे।
मनु सरस मुक्ताफल अभेद्ये आनकर इकठे करे।।
लेकर सुभाजन मांहिधर बर रजत-कंचन शुद्धिके।
पूजौं सु सुमति-जिनेश वर दातार सार सुबुद्धि के।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम सु फूल गधूल सुन्दर सकल जन्मन भावनै।
सो तुरत उत्तम भावकरि, जिनदेहुरे पहुँचावने।।
लेकर सुभाजन मांहि धर वर रजत-कंचन शुद्धिके।
पूजौं सु सुमति-जिनेश वर दातार सार सुबुद्धि के।।५।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

धर कर सरस वर खोपरा अरु घीउ पक मिश्री मिलै।
उपमा कहा कहिये सु जाकी क्षुधा तिहि परसत विलै।।
लेकर सुभाजन मांहि धर वर रजत-कंचन शुद्धि के।
पूजौं सु सुमति-जिनेश वर दातार सार सुबुद्धि के।।६।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

संजोग घृत वाती अगनि त्रित अन्धकार विनाशनी।
दीपक सु ज्योति प्रकाश होत सु स्वपर-पद-परकाशनी।।
लैकर सुभाजन मांहि धर वर रज-कंचन शुद्धि के।
पूजौं सु सुमति जिनेश वर दातार सार सुबुद्धिके।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीतिस्वाहा।

लै करि सुधूप अनूप बहुविध सुरभिता जाकी चलै।
खेवत सुपावक माहि सेवत तुरत मधु मधुकुर गिलै।।

लेकर सु भाजन मांहि धर वर रजत-कंचन शुद्धिके।
पूजौं सु सुमति-जिनेश वर दातार सार सुबुद्धिके।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

फल परम भारी मरम जाकौ कहत अन्त न पाइये।
लोचन सुनासा रसन कर भुगतत महासुख पाइये।।
लैकर सु भाजन मांहि धर वर रजत-कंचन शुद्धिके।
पूजौं सु सुमति-जिनेश वर दातार सार सुबुद्धिके।।९।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनप्रतिमाग्रे मोक्षफलप्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

पानी सु चन्दन दुख निकन्दन आदि सर्व सु होयके।
करि थार मध्य सु स्वस्तिका इहि भांति अर्घ संजोयके।।
लेकर सुभाजन मांहि धर वर रजत-कंचन शुद्धिके।
पूजौं सु सुमति-जिनेश वर दातार सार सु बुद्धिके।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथजिनप्रतिमाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविधकर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नृपति कारनै।
अपनौ सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनै।।११।।

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार - श्रीसुमतिजिनाय नमः)

जयमाल

दोहा

सुमतिनाथ सेवत तिन्हें, सुमति देत तत्काल।
मति माफिक तिनकी कहौं, भाषा कर जयमाल।।१२।।

चौपाई

जयन्त विमान छोड़ सुखदाता गर्भ विषैं उपजे निजमाता।
तनकौं नाम मंगला रानी, नृपति मेघप्रभके मनमानी।।१३।।

वंश जांस इक्ष्वाकु सुभारी, आजौध्या नगरी सुखकारी।
सावन सुदि दोयज दिनु नीकौ, मास गये नव अति सुघरीकौ।।१४।।

श्रावन सुदि दिन ग्यारस पाखौ, परम नक्षत्र मघा है खासौ।
जनमन दिन सुनि आयुस प्रानी, लक्ष पूर्व चालीस वखानी।।१५।।

कुँवरावर हैं सापुन चौथौ, राज करौ वर्जित भय चौथो।
पूर्व लक्ष उनतीसी बरसै, कीनौ तप सुविमल गुन दरसै।।१६।।

सुदि वैसाख नमैं शुभ जानो, पूरब लक्ष एक परमानौं।
वृक्ष प्रियंगु तरै सुख काजा, दीक्षा सहित सहस्र सु राजा।।१७।।

सौमनस नाम पुरी अतिभारी, पद्मद्युति राजा उपकारी।
तिनके गेह गये दुख छीनौ, वर गौ-दूध पारनौ लीनौ।।१८।।

पुनि छदमस्त रहे वनवासी, बीस वरष मरयाद सुभासी।
पूस सुदी पूनम दिन बेरा, वरअपराहनीक सुखकेरा।।१९।।

केवलज्ञान जग्यो हितकारी, विधि समवादिसरन विस्तारी।
जोजन बार मण्डित सब शोभा, देखत होत दूर छल लोभा।।२०।।

बज्र आदि अरि कर्म्म विछोरा, गणधर प्रगट एकसौ सोरा।
तीन-लाख प्रतिगणधर भाखे, अरु पुनि वीस-सहस अधिकारे।।२१।।

तीन-लाख पुनि अधिक सुधारी, तीस-सहस्र आर्जा व्रतधारी।
तीन-लाख विंश सहस सुनामी, छह-सै तुरत यती शिवगामी।।२२।।

ग्यारा-सहस अवधि तिन काजै, जुत वैक्रियक-ऋद्धि छवि छाजे।
ते सब चार-सहस्र अठारा, छहसै घट हजार सु वारा।।२३।।

ये मुनि मनपर्यय युत जानौ, तेरह-सहस केवली मानौ।
बादी बाद करै तंह ठांडे, सो दश-सहस चार-सै-साड़े।।२४।।

तुंवर यक्ष बज्रांकुशा यक्षी, जे प्रभु सेव करैं अति अच्छी।
इन्द्रधनेन्द्र सुचक्री ध्यावै, तिनके गुनकौ पार न पावैं।।२५।।

सोरठा

गये सुमति जिन मुक्ति, चैत्र सुदी दशमी दिना।
वरनौ है जिन उक्ति, समवसरन महिमा अगम।।२६।।

ॐ ह्रीं सुमतिजिनचरणाग्रे जयमालार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनविम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसों।
अति पुण्य की प्रापत सु तिहिकौं होहि दीरघ आयु सौं।।
जाके सुफल कर पुत्र धन धान्यादि देह-निरोगता।
चक्रेश-खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२७।।

(७) श्री पद्मप्रभु-जिनपूजा (६)

दोहा

धनुष अढ़ाई सै उचित, विद्रुम वरण शरीर।
पद्म अंक अवलोकिये, पद्मप्रभ प्रतवीर।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनेन्द्रचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

नाराच छन्द

सुनीर कूप-वापिकादिकौ प्रसांग छानिकै
सुल्याइये अपारपुण्य को सुहेत जानिकै।
सुहाथ जोरिके उभै विषै सुधारि माथके
सो पूजिये त्रिकाल पाद-पद्म पद्मनाथ के ।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

महाद्रुमेस गार सीयरौ सुगन्ध मानके।
सुल्याइये अपार पुण्य कौ सुहेत जानिके। सुहाथ॰ ।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय सुगन्धम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुअक्षतं विशुद्ध जे विषैं समस्त धान के।
सुल्याइये अपार पुण्य कौ सुहेत जानिके।।सुहाथ॰।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुफूल केतकी सु आदि ले सुहर्ष ठानिके।
सुल्याइये अपार पुण्य कौ सुहेत जानिके।।सुहाथ॰।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे कामबाणविध्वंशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

सु भोजनादि अन्न घीऊ शर्करादि सानके
सुल्याइये अपार पुण्य कौ सुहेत जानिके।।सुहाथ॰।।६।।

ॐ ह्री श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रजालिये सुदीप कंज अंधकार हानके।
सुल्याइये अपार पुण्य कौ सुहेत जानिके।।सुहाय०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सु आग मांहि खेवहूं विचार धूप आनके।
सुल्याइये अपार पुण्य कौ सुहेत जानिके।।सुहाय०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

लवंग लायची सु आदि ले सुहर्ष हानिके।
सुल्याइये अपार पुण्य कौ सुहेत जानके।।सुहाय०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुनीर आदि अष्ट दर्व जे कुभाव मानके।
सुल्याइये अपार पुण्य कौ सुहेत जानके।।सुहाय०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिनप्रतिविम्ब पूज त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
अपनौ सु निज परिवार पालन कौं सु कारज सारनै।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभुजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार - श्रीपद्मप्रभुजिनेन्द्राय नमः)

जयमाल

दोहा

सो पद्मप्रभु भक्ति विन, जग का कटै न जाल।
मति माफिक तिनकी कहौं, भाषा कर जयमाल।।१२।।

चौपाई

कौशाबी नगरी अति सोहै, तिहि देखत नर सुरपति मोहै
धारनाक्ष नरपति तहँ ज्ञानी, तिहि के नाम सुसीमा रानी।।१३।।
तिहिं के गर्भ विषै सु रहाये ऊपर ग्रैवेयक तें आये।
कृष्णपक्ष छट माघ महीना, बीतत मास जनम जब लीना।।१४।।

आश्विन वदि तेरस सुखदैनी, नखत बखत चित्रा सब जैनी।
आयुष तीस लाख पूरव की, कुँवरावर हैं सासम सब की।।१५।।

राज पूर्व इकईस सु साढ़े. कातित वदि तेरस तप बाढ़े।
एक लाख पूरब निर इच्छा, भूप सहस संजुक्त सु दिक्षा ।।१६।।

प्रियंगुवृक्ष हेटि प्रभु आके, निज कर केस-लुंच जह जाके।
पहुँचे वर्द्धमान सु नगरी, सोमदत्त नृप गृह विधि सगरी।।१७।।

लीनों पय छदमस्त छमासा, सुदि बैसाख दसैं दिन भासा।
ज्ञानहौन अपराहिन वेरा, मैटि सबै अज्ञान अंधैरा ।।१८।।

समोशरन सुख कारन जी को, साढ़े-नव जोजन अति नीकौ।
चमर बज्र आदिक सु प्रकारा, गणधर कहे एक-सौ-ग्यारा।।१९।।

तीन-लाख प्रतिगणधर जीजे, अरु पुनि तीस-सहस गनि लीजे।
वीस-हजार-लाखचत्तारी गुण गंभीर अर्जिका नारी।।२०।।

तीन-लाख श्रावग व्रत पालैं, पाचं-लाख श्रावगनी आलैं।
अवधिवन्त दश-सहस बताये, द्वादश-सहस केवली गाये।।२१।।

दशहजारत्रयशत अधिकारे, समनसरस मनपर्यय वारे।
छै-सै-नवसहस्त्र सब वादी, मातंगजक्ष जहाँ सु नादी।।२२।।

अप्रति चक्रेश्वरी जच्छी देवी, श्री जिन भक्तिवन्त भवप्रेवी।
समवसरन महिमा सु घनेरी, लहत न अन्त मन्दमति मेरी।।२३।।

सोरठा

कर्म सर्व विध्वंस, फागुन वदि चउथौ दिना।।
वर इक्ष्वाकु सुवंश, निर्मल करि पहुँचे मुकति।।२४

ॐ ह्रीं श्रीमद्पप्रभुजिनचरणाग्रे जयमालार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधिपूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसों।
अति पुण्य की प्रापत सु तिहिकौं होहि दीरघ आयुसों।
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश खग-धरणेन्द्र इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२५।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

(८) श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजा (७)

दोहा

लक्षण तिनके सांथिया, उचित धनुष शत दोय।
हरित वरन पूजों सु प्रति, देव सुपारस सोय।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

अष्टक (धुनमें)

रोग तृषा हमको दुख देत नीर लियौ सु निवारन हेत।
जोर जुग हाथ, पूजौं चरण सुपारसनाथ।।
बार-बार हम नावत माथ, त्रिभुवन गुरु शिवमारग साथ।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन धर आगे जिनराज, मोह तपन मेंटन के काज।
जोर जुग हाथ पूजौं चरण सुपारसनाथ।।बार०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय सुगन्धम् निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत ले निज माफिक शक्ति, अक्षय पद कारन सुन भक्ति।
जोर जुग हाथ, पूजौं चरण सुपारसनाथ।।बार०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्ताय अक्षतम् निर्वपामति स्वाहा।

आयौ ले कर उज्ज्वल फूल, हेत मदन-शर नाशन मूल।
जोर जुग हाथ, पूजौं चरण सुपारसनाथ।।बार०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

धर नैवेद्य निरख निर्दुख, कारण दोष निवारण भूख।
जोर जुग हाथ, पूजौं चरण सुपारसनाथ।।बार०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक ज्योति लिये लहलात, नाशन हेत तिमिर मिथ्यात।
जोर जुग हाथ, पूजौं चरण सुपारसनाथ।।बार०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

यह कारण हम खेवत धूप, कर्म दहै पद होहि अनूप।
जोर जुग हाथ, पूजौं चरण सुपारसनाथ।।बार०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपमीति स्वाहा।

फल उत्कृष्ट धरौं प्रभू अग्र, वासी हौ न हेत शिव अग्र।
जोर जुग हांथ, पूजौं चरण सुपारसनाथ।।बार०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे मोक्षपदप्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

दरव आदि जल चन्दन अष्ट, हरन हेत भव भ्रामक कष्ट,
जोर जुग हाथ, पूजौं चरण सुपारसनाथ।बार०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेतु सु आपना।।११।।

जैसे किसान करैं जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
अपनौ सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनै।।१२।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार- श्रीसुपार्श्वनाथाय नमः)

जयमाल

दोहा

तुरत सुपारसनाथ कों, धर निज ध्यान त्रिकाल।
मति माफिक तिनकी कहौं, भाषा कर जयमाल।।१३।।

चौपाई

बनारस नगरी अतिगंगा, नृप सुप्रतिष्ठ तहां अति चंगा।
नाम सु पृथ्वी तिंह महारानी, तिन्ह की कूंख माँहि सुखदानी।।१४।।

मध्य सु ग्रैवेयक तें आये, भादों सुदि छट मंगल गाये।
द्वादशी दिन शुभ जेठ महीना, जन्म लियौ विधि जात कहीना।।१५।।

बीस-लाख पूरब थिति लीनी, कुँवरावर सब जिन सम कीनी।
पूर्व चतुर्दश लाख विवेकी, राज कर्‌यो श्रीनेत्र न देखी।।१६।।

जेठ सुदी वारस तप लीनौं, पूरव लक्ष वरस जुत कीनौ।
द्रुम श्रीखण्ड तरैं सुखकाजा, दीक्ष्या सहित सहस्र सु राजा।।१७।।

सोमखेट नगरी का स्वामी, भूप महेन्द्रदत्त तिंहि नामी।
तिन उत्कृष्ट भाव कर दीनौ, जँह गौ-दूध पारनौ लीनौ।।१८।।

पुनि छदमस्त वरष नव वीतौ, मन संजुक्त करत अरि जीतौ।
फागुन सप्तमि पक्ष अंधेरा, केवल दिन अपराहिन वेरा।।१९।।

समवशरण जोजन नव लीजे, सौ गणधर घट पंच गनीजे।
बलदत्त आदि कहे गुनवन्ता, तीन लाख प्रतिगणधर संता।।२०।।

तीन सहस्त्र-लाख-गन तीनी, त्रिय सु अर्जिका व्रत लीनी।
तीन लाख श्रावक तहां गिनती, पाँच लाख श्रावगनीवन्ती।।२१।।

अवधिवन्त नव सहस सुसारे, पुनि वनरौ मनपर्यय वारे।
नव सहस्त्र शत डेढ़ सु जानी, ग्यारा सहस सु केवलज्ञानी।।२२।।

बादकरन हारे परवादी, आठ-सहस-छै सौ सब वादी।
विजय जक्ष नामा सुन जेवी, जच्छी पुरुषदत्ता जिनदेवी।।२३।।

फागुन छटि अँधियारे पाखे, चढ़ सम्मेदशिखर अरि घाते।
महिमा समवसरण अरु ताकी, कहबे को समरथ मति काकी।।२४।।

सोरठ

खेंच लेत धर हाथ, बूड़त जे भव उदधि में।
भजौं सुपारसनाथ, भये वंश इक्ष्वाकु में।।२५।।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे जयमालार्घ्यं निर्वापामीति स्वाहा।

(९) श्री चन्द्रप्रभु-जिनपूजा (८)

दोहा

शुक्ल वरन तन डेढ़ धनुष उचित अति तास।
शशि लक्षण लखि पूजिये, चन्द्रप्रभु प्रति जास।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।।

अष्टक (सारंग में)

ब्यापत अति विकराल महादुख मोहि तृषा कौ,
भटक्यौ मृग परताप पाय लखि नीर मृषा कौ।
दूर करन के हेत अब आयो जल भर जाय
पूजौं मनवचकाय कें श्री चन्द्रप्रभु जू के सुखकारन सुधरे।।२।।
हने तिन चार घातियाकर्म्म, लह्यो सुअनन्त चतुष्टय सर्म्म भवसागर सुधरे

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

मोह महा परचण्ड उदै उर अन्तर डाह्यौ
विषयन के रसरंग चतुर्गति में दुख पाह्यौ।
याहि बुझावत हेत यो धरि चन्दन नाय। पूजौं०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

पुण्य-पाप जगमांहि में पेरत ये दोई
इन दोनों से भिन्न आत्म परणति है सोई।
नाशकरन के हेत सो ले तन्दुल मन हरषाय। पूजौं०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

इह संसार मंझार बहुत यह भूख सतायौ
नरक गयौ सु अहार कहूँ सुपने नहिं पायौ।
निरबारन के हेत सो चरु लेकर धरिऊँ नाय। पूजौं०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

निज अन्तर उर मोहि लगी अज्ञान अन्धेरी।
प्रगटत नांहि सुदृष्टि इष्ट उर अन्तर केरी।
विध्वंसन के हेत सो कर दीपक ले शिरनाय। पूजौं०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

कानन कर्म मंझार बसत बहुकाल गमायौ
भूल परौ निज पंथ भ्रमत कहुँ अन्त न पायौ
ल्यायौ धूप विचारकै तसु दहत हेत सु दहाय। पूजौं०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तराय आठौ सुकर्म्म विध पंच विगारै
आवत वस्तु सु हाथ जहां अन्तर कर डारै।
जासु विहंडन हेत ले फल उत्तम गाय बजाय। पूजौं०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ करम दुख देत हेत तिन आठ निशानी
जल फल आदि सु अन्त महारुचि सौं धरि आनी।
देवीदास अरजी करै मोहि लीजे पंथ लगाय। पूजौं०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारने।
आपनौ सु निज परिवार पालन को सु कारज सारने।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभुजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाल

दोहा

यह जग में भारी सरन, चन्द्रप्रभु सुरसाल।
मति माफिक तिनकी कहौं, भाषा करि जयमाल।।११।।

चौपाई

चन्द्रपुरी सहित जिन आज्ञा, नृप महिसेन सहित सुप्रतिज्ञा।
शुभ सुलक्ष्मी नाम की रानी, कीरतवन्त सबै जग जानी।।१२।।

बैजयन्त तजिके सुविमाना, गर्भ विषै सु बसे सुख ठाना।
चैतवदी निरमल शुभ पाँचे घर-घर दान देत विनु याचें।।१३।।

पौषवदी ग्यारस सुखछाही, जनम नखत अनुराधा मांही।
आयुष पूर्व लाख दश पाई, कुँवरावर पूरव सु अढ़ाई।।१४।।

राज कर्‌यौ परमानन्दकारी, लक्ष पूर्व साढ़े-षट भारी।
पूष सुदी ग्यारस दिन लीनौ, तिन्ह तप लाख पूर्व इक कीनौ।।१५।।

नागर बृक्ष तरैं लिन शिक्षा, भूप सहस्र सहित इन दिक्षा।
नलिनीपुर नर शुभ रागी, सोमदत्त राजा बड़भागी।।१६।।

तिन्हि सन्मान कर्‌यो प्रभुजी कौ, दीनौ पय उत्कृष्ट गऊ कौ।
मास तीन छदमस्त वितीते, जहअरि कर्म घातिया जीते।।१७।।

फागुनवदि सातें सुख केरा, केवल दिन अपराहिन वेरा।
समवशरण जोजन वसु साढ़े, गणधरदत्त आदि व्रत बाढ़ै।।१८।।

वैदर्भ आदि तिरानवै बताई प्रतिगणधर तँह लाख अठाई।
वरुणादि त्रि-लाख गन राशी, असी-सहस अजया तँह भाषी।।१९।।

श्रावक तीन लाख जहाँ लहिये, पांच-लाख श्रावगनी कहिये।
सहस उभय मुनि अवधि प्रकाशी, आठ-सहस मनपर्यय राशी।।२०।।

सहस अठारह केवल ज्ञानी, बादी सात हजार गुमानी।
अजित यक्ष मनोवेगा जच्छानी, सेवक जन पुजवै सुकामी।।२१।।

महिमा समवशरण जिनकेरी, कहिवे शक्ति होत मति मेरी।
भादों सुदि सातें सुखदाई, शिव सम्मेदशिखर चढ़ पाई।।२२।।

सोरठा

तारन भवदधि पार, भये वंश इक्ष्वाकु में।
निर्मल गुण सुखकार, वार-वार सु ध्याइये।।२३।।

ॐ ह्रीं श्रीचंद्रप्रभुजिनचरणाग्रे जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनविम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसों।
अतिपुण्यकी तिनको सु प्रापत होहि दीरघ आयुसों।।
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह - निरोगता।
चक्रेश खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहिं निज सुख भोगता।।२४।।

पुष्पाञ्जलि क्षिपामि

(१०) श्रीपुष्पदन्त-जिनपूजा (९)

दोहा

धनुष उच्चि तन एक सै, लक्षण मगर सुपास।
पहुपदन्त जिन पूजिये, धर निज हिये हुलास।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्त जिनचरणाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

अष्टक ढाल कातिक की

प्राणी गंगाजल अतिसीयरौ निर्मलमणि फटिक समान हो।
प्राणी ले निजमन्दिर आइये होई अशुभ करम की हानि हो।
प्राणी पहुपदन्त जिन पूजिये जाके पूजत पुण्य अपार हो।
प्राणी नर सुरपति सुख भोग कै धरिये न बहुर अवतार हो।।२।।
प्राणी पहुपदन्त जिन पूजिये।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी बावन चन्दन आदि दे मलियागिर सार सुगन्ध हो।
प्राणी ले जिन मन्दिर आइये जहाँ होय सुगति कौ बन्ध हो। प्राणी०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय सुगन्धम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी तन्दुल धवल सुवास के मुक्ताफल की उनहार हो।
प्राणी ले जिन मन्दिर आइये फल अक्षय सुखसार हो। प्राणी०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी परम सुगन्धी फूल जे अति उज्ज्वल सरस अनूप हो
प्राणी ले जिन मन्दिर आइये, परिये न विषय दुख कूप हो। प्राणी०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी वर मिश्री अरु खोपड़ा, बहु भाँतिन के पकवान हो,
प्राणी ले जिन मन्दिर आइये, जग में अति उत्तम दान हो। प्राणी०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी दीपक ज्योति सुहावनी, उदित जिम रतन अमोल हो,
प्राणी ले जिनमन्दिर आइये, तन मन कर परम अडोल हो। प्राणी०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी धूप दशांग बनाइये पावक मँहि खेवन हेत हो।
प्राणी ले जिन मन्दिर आइये उत्तम भाव समेत हो। प्राणी०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी फल फासू जगमें भले, लोंगादिक अति उत्कृष्ट हो,
प्राणी ले जिनमन्दिर आइये प्रगटै उर सम्यग्दृष्टि हो। प्राणी०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणी वांछा रहित संजोय कैं, जल चन्दन आदि सु दर्व हो,
प्राणी ले जन मन्दिर आइये भव श्रद्धावन्त सुसर्व हो। प्राणी०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिनप्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारने।
आपनौ सु जिन परिवार पालन कौ सु कारज सारने।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार - श्रीपुष्पदन्तजिनाय नमः)

जयमाल

देव सकल परमातमा पहुपदन्त अघटाल।
मति माफिक तिनकी कहौं भाषा कर जयमाल।।१२।।

त्रोटक छन्द

उज्ज्वल काकन्दी नाम पुरी, उपमा तिंह देख समस्त दुरी।
नरनाथ सुग्रीव तहां सुखिया, वरनी रामा तिनके सु तिया।।१३।।
तंजके प्रभु आरण स्वर्ग चये, तसु गर्भ विषैं उत्पन्न भये।
नवमी वदि फागुनमास भली, उपजे तसु सुक्रत बेल फली।।१४।।
परमा सुदि अगहन जन्म लयौ, सुख कारन मूल नक्षत्र कह्यौ।
तसु आयुष पूरब लाख उभै, कुँवरावर भाग चतुर्थ थुवै।।१५।।
मित पूर्व सहश्र पचास धरो, परमागम पूरब लक्ष करों।
तप पौष सुदी ग्यारस दिन को द्वय पूरब लक्ष सहो तपकौ।।१६।।
तुम दीक्षित भूप सहस्त्र सही, तरु नाम सुशालिर हेठ लही।
शुभ शैलपुरी नगरी सुमहाँ, पुष्पमित्र महाँ नरनाथ जहाँ।।१७।।
तिनके गृह जाय अहार लियो, कर पान सु गायकौ दूध लियौ।
वरषें छदमस्त सुचार रहे, अपराहिन काल विषैं सु कहे।।१८।।
सुदि-तीज कार्तिकी वार लग्यौ, तिनकें वर केवलज्ञान जग्यौ।
वसु जोजन जासु समोशरणा, पुनि जात सु तौ किहि पै वरना।।१९।।
गन्धर्व नाग सु आदि नवै, लहिये कर ऊन सु दोय नवै।
गनधार उभै प्रतिलाख बुधा, तैहाँ श्रावक लाख कहे सु दुधा।।२०।।
अजयात्रय- लक्ष सहस्त्र असी, चवलक्ष सरावगनी सु जसी।
तिनकै घट अवधि सुज्ञान जनौ, शतचार-सहश्र सु आठ गनौ।।२१।।
पुन जे मनपर्ययवन्त जवै गन सात-सहस्त्र सु पंच-शतै।
गनतुल्य सु केवल बोधधनी, महिमा तिनकी सुन जात भनी।।२२।।
शत छयासठ बादी बाद करें, ब्रह्मेश्वर जक्ष सुपक्ष धरैं।
काली है नाम सु जक्षिन कौ, उपसर्ग हरै जिनपक्षन कौ।।२३।।
आठैं सुदि अश्विनमास जहाँ, शिव शैल-सम्मेद गये सु तहाँ।
हत अष्ट प्रकार सु कर्म अरी, गुन हो वसु जो वरने सुधरी।।२४।।

सोरठा

पढ़ै सुने नर कोय, श्री जिन गुण जयमाल को।
उति उत्तम फल होय, सुर नर गति पावै सुखी।।२५।।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदन्तजिनचरणाग्रे जयमालार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसों।
अतिपुण्यकी तिनको सु प्रापत होहि दीरध आयुसों।।
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश-खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहिं निज सुख भोगता।।२६।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

(११) श्री शीतलनाथ-जिनपूजा (१०)

दोहा

हाटक वरन सो तन नबै, धनुष महा छवि देत।
शीतलनाथ सुप्रति लखत, श्री दर्शत सम्मेद।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

अष्टक-नारदीचाल

उष्णोदक उज्ज्वलअति धर कर नित उठ प्रात अनाहों।
कंचन की झारी भरले पद पंकज अग्र बहाहों।।
लीजे भव प्राणी जग में जो लाहो,
शीतलनाथ जिनेश्वर पूजौं जो निजके सुखचाहो।
लीजे भव प्राणी जग में जे लाहो।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन गार मिला कर केशर, ले जिन आलय आहौं।
आनंद सहित धरों प्रभु आगे भव दुख तपन बुझाहौं।।
लीजे भव प्राणी जग में जो लाहो। शीतलनाथ०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलथजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय सुगन्धम् निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल धवल पवित्र अखण्डित, बड़ दामन जो पाहौ।
पुंज परम तिनके प्रति आगे दे भवसागर थाहौ।।
लीजे भव प्राणी जग में जो लाहौ। शीतलनाथ०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

परिमल फूल बहुत भाँतिन के सन्मुख हों वरसाहौ।
मनबच काय लगा थिर होकर अशुभ करम सों नसाहौ।।
लीजे भव प्राणीजग में जो लाहौ। शीतलनाथ०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे कामवांणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

लेकर वर नैवेद्य पकाई असपरसो मत काहौ।
कंचन थार धरो भर सामें जन्मान्तर सु निवाहौ।।
लीजे भव प्राणी जग में जो लाहौ। शीतलनाथ०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक रत्न समान अमोलक जो नितप्रति सु चढ़ाहो।
सब दुखदाय दूर कर प्राणी भवनगरी सु न चाहौ।।
लीजै भवप्राणी जग में जे लाहौ। शीतलनाथ०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

वस्तु सुगन्ध कूट इकठीकर धूप अगन मँह दाहौ।
अन्तरभाव जगे जब मेरे कुगुरादिक नहिं चाहौ।।
लीजै भव प्राणी जग में जे लाहौ। शीतलनाथ०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वापामीति स्वाहा।

फल फासू उत्कृष्ट सुगन्धी, लेकर सुकृत कमाहौ।
जिनपूजा सु करें बिधि सो हम परसों न जात सराहौ।।
लीजे भव प्राणी जग में जे लाहौ। शीतलनाथ०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आदि अन्त दरबें धर, अरघ बना ले धाहौ।
देवीदास कहे तिन सो जिन मारग के धरताहौ।।
लीजे भव प्राणी जग में जे लाहौ। शीतलनाथ०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध गुण कर थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
आपनौ सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनै।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार श्रीशीतलनाथजिनाय नमः)

जयमाल

दोहा

शीतल जिन शीतल करन, कर्म पुरातन ज्वाल।
मति माफिक तिनकी कहौं, भाषाकर जयमाल।।१२।।

त्रोटक छन्द

नगरी भदलपुरि नाम भनी, नरनाथ दृढ़ारथ जास धनी।
तसु नारि सुनन्दा प्यारी त्रिया, जगमें तिन तुल्य न और त्रिया।।१३।।

तज अच्युत स्वर्ग जिनुक्त लिखे, उपजे तिनकी वर कूख विषे।
अठमी वदि चैत महापरबी, जिंह वासर को ब्रत आचरबी।।१४।।

बदि बारस माघ सो जन्म दिना, पुन पूर्वाषाढ़ नक्षत्र गिना।
इकलक्ष सु पूरब आयु परी, कुँवरावर भाग चतुर्थ करी।।१५।।

गतति आयुष अर्ध सु राज कियौ, तप वारस माघ लगे सु लियौ।
नृप लाख सु पूरब पाव करें, जिन दीक्षा वृक्ष पलाश तरें।।१६।।

जुत भूप सहस्त्र महारुचि सौं, सुधरी निज अन्तर की शुचि सौं।
नगरी सु अरिष्टपुरी सुथरै, नृप जास पुनर्वसु राज करें।।१७।।

पय-देनु अहार लियौ तिनके, रस-व्यंजन स्वाद नहीं तिनकें।
छद्मस्त सु तीन रहे वरषै, परमातम शुद्ध दशा दरशें।।१८।।

चौदश वदि पौष सुमास गनै, अपराहिनकाल सुज्ञान जगै।
वर जोजन सात सु अर्धजना, सुखदायक सार समोसरना।।१९।।

कुंथुस्वर आदिक साथ असी तिनके गणधार कहे सु जसी।
गणधार सु जे प्रति पक्ष दमें, इक लाख कहे सु जिनागम में।।२०।।

भय लक्ष-सहस असी-अजया, वरनी तिनके त्रस की सुदया।
गन श्रावक लक्ष उभय करणी, समझो तसु इन श्रावगनी।।२१।।

धरता विध औधसुज्ञान कहे, सत दोय सहस्र सु सात लहे।
मनपर्ययज्ञान धनी भनजै, पचहत्तर-सै गिनती गिनजे।।२२।।

वर केवलज्ञान भयौ तिनकैं, जिन सात-सहस्र कहे गनकें।
सय-सात-सहस्र सु पाँच सवै, तिनसौं निशिवासर बाद भवे।।२३।।

तहाँ ब्रह्मसुलक्ष धनी सुधिया, तिनके ज्वालामालिनि तिया।
पंचमि सुदि कातिक मास कही, चढ़ि शैल सम्मेद सु मुक्त लही।।२४।।

सोरठा

जिनवर दीनदयाल, भये वंश इक्ष्वाकु में।
मन बच तन कर भाल, नमत तिन्हें त्रिजगतपती।।२५।।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथजिनचरणाग्रे जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसौं।
अतिपुण्य की तिनकों सुप्रापत होय दीरघ आयु सों।।
जाके सुफल कर पुत्र धनधान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश खग-धरणेन्द्र इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२६।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

(१२) श्री श्रेयांसनाथ-जिनपूजा (११)

दोहा

असिय धनुष उन्नत परम, तन सु सुवर्ण स्वरूप।
गैंड़ा अंक श्रेयांसजिन पूजों प्रत सु अनूप।।१।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसजिनचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

अष्टक (राग रामकली)

लीजिये भरिकें सु फासू परम उज्ज्वल वारि।
दीजिये जिन प्रति सु आगै सरस शीतल धारि।।

भविजन चलौ पूजन हेत।
ग्यारवैं श्रेयांस जिनवर, सेवकनि सुख देत। भविजन॰।।२।।

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

गारि मलयागिर सु चन्दन सीयरौ शुभ गन्ध।
लै चढ़ावत ही सुकारन मिटत दुर्गति बन्ध।।
भविजन चलौ पूजन हेत।
ग्यारवें श्रेयांसजिनवर सेवकनि सुखदेत।। भविजन॰।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय सुगन्धम् निर्वपामीति स्वाहा।

मालती सुखदास लांजी श्याम जीरौ धान।
पाहुनी धान केशरादिक के सुतन्दुल आन।।
भविजन चलौ पूजन हेत।
ग्यारवें श्रेयांसजिनवर सेवकनि सुखदेत।। भविजन॰।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

केतकी मचकुन्द खूजौ केवरौ सु गुलाब।
कमलबेल कुसुंभ चंपौ ल्यायकर शुभ भाव।।
भविजन चलौ पूजन हेत।
ग्यारवें श्रेयांस जिनवर सेवकनि सुखदेत।। भविजन॰।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

पूआ बरा पेरा सु पापर, पूरिया पेराख।
खोपड़ा खारक सु लेकर, खांड खुरमा पाक।।
भविजन चलौ पूजन हेत।
ग्यारवें श्रेयांस जिनवर सेवकनि सुखदेत।। भविजन॰।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दिपै दीपक अरुण द्युति को हरन तम दुख रूप।
लै धरौ परगट जहाँ प्रतिबिम्ब लसत अनूप।।
भविजन चलौ पूजन हेत।
ग्यारवें श्रेयांस जिनवर सेवकनि सुखदेत।। भविजन॰।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

अगरु कृष्णागरु सु चन्दन आदि सरस सुवास।
होम अगनि मंझार होकर कै सु सन्मुख जास।।

भविजन चलौ पूजत हेत।
ग्यारवें श्रेयांस जिनवर सेवकनि सुखदेत।। भविजन॰।।८।।

ॐ ह्रीं श्रींश्रेयांसजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

अमलवेत सु इमरता सु अनार आम सु मिष्ट।
फल सु आदि उतारिये इन जगत मांहि उत्कृष्ट।।
भविजन चलौ पूजन हेत।
ग्यारवें श्रेयांश जिनवर सेवकनि सुखदेत।। भविजन॰।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

लै सुनीर सुगन्ध अक्षत पहुप अरू नैवेद्य।
दीप धूप प्रधान-फल फल, अष्टकर्म उच्छेद।।
भविजन चलौ पूजन हेत।
ग्यारवे श्रेयांश जिनवर सेवकनि सुखदेत।। भविजन॰।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसजिनचरणाग्रे अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।
जैसे किसान करें जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
आपनौ सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनै।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार—श्रीश्रेयांसजिनाय नमः)

जयमाल

दोहा

मण्डित शुद्धातम सुश्रिय, जिन श्रेयांस चिरकाल।
मति माफिक तिनकी कहौं, भाषा कर जयमाल।।१२।।

त्रोटक

वर सिंहपुरी नगरी सु जहाँ नरनायक विष्णवनाथ जहाँ।
तिनके घर वेणु तिया विमला, छबि की को बरनें जान कला।।१३।।
पुष्पोत्तरतें तिन गमन करै, तिनकी निज कूंख विषै उतरै।
छटि जेठ बदी सुजुदी दुखसों, नवमास महां भुगते सुखसों।।१४।।

सुदि ग्यारस फागुन मास भली, जनमें नगनाथ अनन्तबली।
अति उत्तम श्रवण नक्षत्र पर्यौ यश जास जगत्रविषैं वगर्यौ।।१५।।
तसु आयुष आगम उक्त भनी, चौरासिय लाख सु वर्ष गनी।
वरषें इकईस सुलक्ष गई, सुखसों कुँवरावर माँहि गई।।१६।।
वरसें सुवयालिस लाख धरो, निरधार निशंकित राज करो।
तप लागत फाल्गुन एकादशी, वरसायुष लाख इकैस लसी।।१७।।
जिन दीक्षित तिन्दुक वृक्ष तरें, तसु संग सु भूप सहस्त्र धरें।
नगरी उत्कृष्ट सिद्धार्थपुरी, नृपनन्द नाम सु राज सुरी।।१८।।
पय-धेनु सुहेत महानिधि को, तिन भोजन दान दियौ विधि कौ।
छदमस्त रहे वरसे सु उभय, उर अन्तरकी निजदृष्टि चुवै।।१९।।
बदि माघ अमावस कौ सुभग्यौ, तिनके वर केवलज्ञान जग्यौ।
तसु सांझ सुकाल समय वरणा, वर जोजन सात समोशरणा।।२०।।
गणधर सु आदि धर्मादिक कौ, सतहत्तर बुद्धि विचार सकौ।
प्रति जे गणधार महासुरसी, गन आठ-सहस्त्र सु चार-असी।।२१।।
अजयावरणी सु जहाँ अथवा, तहाँ पंच-सहस्त्र सुलक्ष सवा।
दुग लाख श्रावक संघ सुनी,गन श्रावगनी तिनतैं दुगनी।।२२।।
अवधीमुनि-षष्ट-हजार गने, मनपर्ययवन्त मुनी तितने।
पैसठ सौ केवलज्ञान धनी, मित वादिय पंच-सहस्त्रगनी।।२३।।
जहां कुमार जक्ष सु नाम लियौ, जक्षिन महाकाली नाम त्रियौ।
अनुभूति महा सुसमोशरणी, पुन जात सु तौकिह पै वरनी।।२४।।

सोरठा

शिखर सम्मेद सुशीश, चढ़ सुदेव मुक्ती गये।
कर्म कुलाचल परिस, श्रावण सुदि की पूर्णिमा।.२५।।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथजिनचरणाग्रे जयमालार्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधिपूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरू पुन भावसों।
अतिपुण्यकी तिनकें सु प्रापत होय दीरघ आयुसों।।
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश-खग धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२६।।

पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

(१३) श्री वासुपूज्यजिनपूजा (१२)

दोहा

लाल वरण सत्तर धनुष, उन्नत तिनकी देह।
महिष चिह्न लखि पूजिये, वासुपूज्य प्रति जेह।।१।।

अष्टक

शीतल छीर समुद्र कौ, घट भरि सुन्दर तोय।
लै त्रय धारा दीजिये हैं साम्हें पद पंकज दोय।।
वासुपूज्य जिन पूजिये।
शुचि करके अति उज्ज्वल गात, उज्ज्वल दरब ल्याइये।
तनमन के सब पातक जात, वासुपूज्य जिन पूजिये।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे जन्ममृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

बावन चन्दन आदि दे, धिस जलसों अतिसार सुवास।
ले जिन शरण सुदेव के, धर आगे क्रम वारिज जास।।
वासुपूज्य जिन पूजिये।
शुचि करके अति उज्ज्वल गात, उज्ज्वल दरब ल्याइये।
तनमन के सब पातक जात, वासुपूज्य जिन पूजिये।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

धोकर चावल ऊजरे अति अखण्ड सब एक स्वरूप।
पुंज चरण तव दीजिये, गणु प्रकटे सु अनूप।।
वासुपूज्य जिन पूजिये।
शुचि करके अति उज्जवल गात, उज्ज्वल दरब ल्याइये।
तनमन के सब पातक जात, वासुपूज्य जिन पूजिये।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

भावन परम विलोककैं, कर उत्तम लीजे फूल।
वासुपूज्य जिन पूजिये।
शुचि करके अति उज्ज्वल गात, उज्ज्वल दरब ल्याइये।
तनमन के सब पातक जात, वासुपूज्य जिन पूजिये।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज पक्व सुघीऊ कौ, मिल पागै खुरमा खाँड़।
हाथ जोर करके उभय, जिनप्रभु अग्र सु छाँड़।।

वासुपूज्य जिन पूजिये।।
शुचि करके अति उज्ज्वल गात, उज्ज्वल दरब सुल्याइये।
तनमन के सब पातक जात, वासुपूज्य जिन पूजिये।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे क्षुधा रोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक रत्न जड़ाव के, अति दमकें सम सूरज जोत।
यज्ञ हेत धर ल्याइये, वर तिन केवलज्ञान उद्योत।
वासुपूज्य जिन पूजिये।
शुचि करके अत उज्ज्वल गात, उज्ज्वल दरब सु लाइये।
तन मन के सब पातक जात, वासुपूज्य जिन पूजिये।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

ले धर पावक खेइये, बहु विधि सों वर धूप दशांग।
देय मनोज्ञ सुवास सो, तिन प्रभु चरण अभंग।
वासुपूज्य जिन पूजिये।
शुचि करके अति उज्ज्वल गात, उज्ज्वल दरब सु लाइये।
तन मन के सब पातक जात, वासुपूज्य जिन पूजिये।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

ल्याय लवंग सु लायची, बादामें खारक दाख
जाति फल जल धोयकैं जिनपत की प्रति आगैं राख
शुचि करके अति उज्ज्वल गात, उज्ज्वल दरब ल्याइये।
वासुपूज्य जिन पूजिए।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

नीर सुगन्ध सुआदि दै बहुविधि के फासू फल अंत
थार मध्य धरि साथीयौं उर धरिके गुण जे भगवंत
शुचि करके अति उज्ज्वल गात, उज्ज्वल दरब ल्याइये।
तन मन के सब पातक जात, वासुपूज्य जिन पूजिये।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिनप्रतिबिम्ब पूजत त्रिविधि कर गुन थापना।
तिनके न कारन काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करैं जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
अपनै सु निज परिवार पालनौ सु कारज सारनै।।११।।

जयमाला

दोहा

वासपूज्य जिन परिहरी, चन्द्र चतुर्गति चाल।
मति माफक तिनकी कहौं भाषाकर जयमाल।।१२।।

त्रोटक छन्द

उपजे तज शुक्र सुस्वर्ग महा चम्पापुर नग्र सुनाम जहाँ।
वसुदेव नरेश अरीह जिता। तसुरानी महाविजया वनिता।।१३।।
तिनके निज गर्भ विषैं उतरे। छट आदि अषाढ़ लगैं सुधरे।।
नव मास गये सु कछूक कमी। वदि फागुन जन्म चतुर्दशमी।।१४।।
सुनक्षत्र भिषासत नाम थकी। वरषायुष लाख बहत्तर की।।
वरषैं सु अठारह लक्ष लई। सुख सौं कुँवरावर मांहि गई।।१५।।
सु लियौ तप राजविलास विना, वदि फागुन चतुर्दशमी सु दिना
तप चौवन लाख सुवर्ष करें जग भोग भुजंगम देख डरे।।१६।।
प्रभु साथ भए तजकैं सु मुनी, सय तींन छिहंतर राजधनी।।
तरुपाडर दीक्षित वृक्षतरैं, सबही स्वयमेव सुध्यान धरैं।।१७।।
सुसिद्धारथ नाम लही नगरी, जहँ सुन्दर नाम सुराजधरी।
हरष्यौ तिनिकौ प्रभ देख हियौं, जिनके गउ-दूध अहार लियौं।।१८।।
छदमस्त सुद्वादस मास रहे, जहँ चार प्रकार सु कर्म दहे।
अपराहिन काल सु माघ सुदौ, दिन दोयज केवलज्ञान उदौ।।१९।।
तिनिकौ सम वादि कहौ सरना, षट आदि सुजोजन कौ वरना।
धरमादिक जै गनधारि कहै, गणती गनजे षट षष्ट फहै।।२०।।
पुनि जे गनजू मनकी छनती, सुहजार बहत्तर है गनती।
अजया इकलाख सहस्र सु छे, लहिये जहँ श्रावक लच्छ उभै।।२१।।

दुगुनी तिनतैं सु श्रावगनी, सत चौवन इन सु औषधनी।
मनपर्ययवंत नमौं सु अवे, परमागम में छै-हजार सवै।।२२।।
छै-हजार सु केवलज्ञान मुनी, सुअनन्त चतुष्टय के सुधनी।।
सब होय सहस्र-सुचार गिनैं तहँ वादिय वाद सुहात तिन्हैं।।२३।।
वर जक्ष कुवार सुनाम सही, गन धरिये जक्षिन नाम कही।
जिनराज विभौ कहँलौं वरनौं, तिनके सु न जन्म जरा मरनौं।।२४।।

सोरठा

चम्पापुरि चढ़ मोखभादों सुदि पाचें दिनां।
रहित अठारह दोष भए वंस इक्ष्वाकुमें।।२५।।
महार्घ

(जाप्य १०८ बार श्रीवासपूज्यजिनाय नमः)

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुनि भावसों
अतिपुण्यकी तिनके सु प्रापत होय दीरघ आयुसों।।
जाके सुफल करि पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रीसु-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सो होहि निज सुख भोगता।।२६।।

इत्याशीर्वाद।

(१४) श्रीविमलनाथ-जिनपूजा (१३)

दोहा

धनुष साठ कंचन वरण, लक्षण प्रगट वराह।
विमल नाथ प्रति जान भविपूजौ कर उत्साह।।१।।
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

अष्टक

त्रिभुवन पति केवलज्ञानी, हम पूजत कर धर पानी।
लीजे स्वामी विमलनाथ जू को शरणा, तसु ध्यान धरत भय तरना
ताको जनम न होय न मरना, लीजे विमलनाथ जू को शरना।।२।।
ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

पुन केवल दर्शन धारी धर पूजत केशर गारी
लीजे स्वामी विमलनाथ जू को शरणा तसु ध्यान धरत भय तरना
ताको जनम न होय न मरना लीजे विमलनाथ जू को शरना।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु बल अनंत सुख छाजै धर पूजत तन्दुल छाजे,
लीजे स्वामी विमलनाथ जू को शरणा, तसु ध्यान धरत भय तरना
ताको जनम न होय न मरना लीजे विमलनाथ जू को शरणा।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

जुत बलवीरज अविनाशी धर पूजत पहुप सुवासी,
लीजै स्वामी विमलनाथ जू को शरणा, तसु ध्यान धरत भय तरना
ताको जनम न होय न मरना लीजे विमलनाथ जू को शरणा।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

बल ज्ञानावरणी घाते, धर पूजन विंजन ताजे,
लीजे स्वामी विमलनाथजू को शरणा, तसु ध्यान धरत भय तरना। ताकौ.।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा

जिन दर्शन को पट खोले, धर पूजत दीप अमोले,
लीजे स्वामी विमलनाथजू को शरणा, तस ध्यान धरत भय तरना। ताको.।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

अरि मोह हनो दलबंदी, धर पूजत धूप दशांगी
लीजे स्वामी विमलनाथ जू को शरणा, तसु ध्यान धरत भय तरना।ताको.।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनजरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

जे अन्तराय के हन्ता, धर पूजत सुक्ख अनन्ता
लीजे स्वामी विमलनाथजू को शरणा, तसु ध्यान धरत भय तरना। ताको.।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामिति स्वाहा।

जिन दोष अठारह जीते, धर पूजत अर्घ सुधीते
लीजे स्वामी विमलनाथजू को शरणा, तसु ध्यान धरत भय तरना। ताको.।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे अनर्घपदप्राप्ताये अर्घ निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिनबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुन थापना
तिनके न कारज काज निज कल्यान हेत सुआपना
जैसे किसान करैं जू खेती नाँहि नरपति कारने
अपनो सु परिवार पालन कौ सु कारज सारने।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनप्रतिमाग्रे पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ वार-श्रीविमलनाथाय नमः)

जयमाल

दोहा

विमलपथ प्राप्ति भये श्री जिन विमल कृपाल।
मति माफिक तिनकी कहों भाषा कर जयमाल।।१२।।

ढाल जयमाल की

पुरी कंपिल्य कृतवर्म राजा जहां
जासु रानी जयश्यादेवी महा।
तजि सहस्त्रवर स्वर्ग तें आपके
गर्भा माहिं हुये थिर प्रभु मात के।।१३।।

जेठ वदी दिन सुदशमीय है अति भली
जहाँ सुकर ठीक नवमास पुन गन चली
माघसुदी चऊदशी वार जन मन भलो
पूर्व भाद्रापदा नखत शुभ बरणयो।।१४।।

लाख गन साठ पुनबरण आयुस कही
लाखपन्द्रह सुबरसन को कुँवरावरि
लाख पुनतीस बरसे गई राज में
माघ सुदी चौथ दिन को सुतप काज में।।१५।।

लाख पन्द्रह सु पुनि वर्ष यह तप करे
सहस कर नाथ जुत, वृक्ष जम्बू तरें
लय सु दीक्षा यहाँ शुद्ध गुन ध्याय के
परम आनन्द कर सहज सुख पायके।।१६।।

राजा सुजय हैं जहाँ नन्द-नगरी धनी
गाय-पय विधि जहाँ पारणे की बनी
वर्ष पुन तीन छदमस्थ, गनती गने
पूस सुदी दशमी दिन ज्ञान केवल जनै।।१७।।

साझ वेरा विषैं, निधि मिलि धाय के।
षष्ट जोजन समोशरण सुखदायके
नेक नामादि गनधर, सो पचवन जुरे
सहस-अरसठ सुपुनि पति सुगणधर परे।।१८।।

तीन-हजार एक-लाख व्रत अर्जिका
नव-सहस ऋद्ध वैक्रियक धर मंजका
लक्षवर उभय श्रावकान मय श्राविका
आठ से-सहस सौ अवधि ज्ञानीयका।।१९।।

पाँच-साढ़ै सहस ज्ञान मनपरजयी
गनहु तिन तुल्य केवलीय तहँ सुखमयी
वादि तिनके सहस-तीन दहसौ लहों
यक्ष को नाम पाताल तिनकों कहो।।२०।।

जक्षनी जासु गान्धारी शुभ लक्षणा
और वरणन करौं कैसे प्रज्ञा विना
सुदि सु आषाढ़ शुभ दन सु आठें परी
शिखर समेद चढ़ि मुक्ति-कामिनी बरी।।२१।।

सोरठा

वर इक्ष्वाकु सु वंस, विमल भये जग में महा।
अष्ट कर्म विध्वंस, होत भये शिव सिद्ध पुन।।२२।।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथजिनचरणाग्रे पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसौं।
अति पुण्य की तिनकें सु प्रापत होय दीरघ आयुसौं
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश खग धरणेन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२३।।

(१५) श्री अनन्तनाथ-जिनपूजा (१४)

सेई लक्षिन सोबरन बरन सु धनुष पचास।
पूजत पुण्य सु ऊपजै जिन अनन्त प्रति जास।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनचरणाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

अष्टक गीतिका

अति सरस झारी दिपत भारी उभय कर धर ल्यायकैं,
शिवकंत सन्मुख सलिल धारा दै सु मन-बच-काय कैं।
जे तरन-तारन त्रिजगपति ईश्वर सुनर सुरशेष के,
सिर नायके क्रम-कमल पूजों श्री अनन्त जिनेश के।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तजिनचरणाग्रे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

धर सोभनीक सुरंग कुंकुम मध्य उत्तम धार के,
घिस परम चन्दन हेत वन्दन दुःख निकन्दनहार के।।
जे तरन तारन. . . . . ।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल सु अक्षत लै सुगंधित जास परगट देहुरे,
सुरझावने के हेत हम बाधे चतुर्गति देहुरे।
जे तरन तारन . . . . ।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तयेअक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

ले पहुप रितु के षट सु ऋतु के अमल नीर पखार के,
निज शक्ति माफिक आप जिनके तासु उर अवधार के।
जे तरन तारन . . . .।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य परम उमेद सो रचि सकल दोष सु हानि कैं,
धरिये सु तन जिनराज के प्रतिबिम्ब अग्र सुआनि कैं।
जे तरन तारन . . . . ।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक अडोल अमोल, रत्न जड़े महा सोवरन के,
सेवक सु ल्यायो शरन आयो निकट भव दुःख हरन के।

जे तरन तारन . . . .।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

घर ज्वलन मध्य सु धूप परम अनूप उत्तम वास की,
उत्तम सु देवा हेत सेवा निरख प्रतिमा जासकी।
जे तरन तारन . . . .।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

ले परम इष्ट सुमिष्ट अति उत्कृष्ट दृष्टि सुहावनें।
सज लै सुथार सुढार तिन भगवन्त करन सुहावनें।
जे तरन तारन. . . . .।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल गन्ध अक्षत फूल नैवेद्य दीप धूप सुफल भये।
वसु भाति अर्घ संजोय कर हम जासु प्रति अरचन चले।
जे तरन तारन . . . .।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनैं।
अपनौ सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनैं।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनचरणाग्रे पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाल

दोहा

जिन अनन्त गुण ध्यावही सुरपति मुनि भूपाल।
मति माफिक तिनकी कहौ भाषा कर जयमाल।।१२।।

ढाल

छोड़ करके विमानो सुपुष्पोत्तरो,
वंश इक्ष्वाकु नृपसिंह सेनाहि धरें।
नाम सुर जासुदेवी सुरानी भनी,
आनि उपजै सु कर कूख त्रिभुवन धनी।।१३।।

वदि सु कातिक महादिन परमा परयो,
दुःख न सपने सु नवमास पूरन करयो।
जैठवदि द्वादशी सरस जन्मा लयो,
रेवती नक्षत्र में सुख नखत कवि वरनयो।।१४।।

आखल वरस गनि लाख पुनि तीस की,
भाग चौथें कुँवरकाल महि शीस की।
राज तिहि-लाख-पन्द्रह सु वरसन करे,
जेठ वदी दिन सु बारस महा तप करे।।१५।।

लाख साढ़े सु पुनि सात बरसैं भवै,
काल तप का सुजानो महाजन सवै।
वृक्ष पीपल तरैं सहित नृप सहस ही,
हेत निजकाज जिनराज दीक्षा लही।।१६।।

शुभ अयोध्या नगर नृप विशाखन प्रापु,
पारनो जहाँ सु गऊँ-क्षीर लीनो प्रभु।
वर्ष जह गन सु छदमस्त वरने दुधा,
ज्ञान दृग हौंन वर अर्ध चैत सु बुधा।।१७।।

पांच साढ़े समोशरन जोजन बने,
आदि गणधर आरिष्टादि अध सौ गने।
सहस छयासठ कथत प्रति सो गणधर कथा,
सहस वसु लाख इक अर्जिका जहं यथा।।१८।।

लक्ष श्रावक दुगुन अति सु छवि छाजहीं,
श्राविका तासु दुगनी जहाँ राजहीं।
तीन-सै-सहस-चउ अवधयुत महाव्रती,
सहस-वसु वैक्रियकऋद्धि वारे यती।।१९।।

मुनि सु जानौ वर मनसुपरजय धरी,
लेखिये सहस गन पाच संख्या करी।
केवली सहस तहाँ पाच-सै पाइये,
वाद करता सु वत्तीस-सै गाइये।।२०।।

जक्ष किन्नर सु वैरोटि देवी गिनी,
समोशरन सु पढ़त गुनत उत्तम गती,
चैत वदी दिन *अमावस सु उत्साहके,*
चढ़ सु सम्मेद हर दुःख करम दाहके।।२१।।

सोरठा

यह संसार अनंत भ्रमत सु पार न पाइये
कारन पुनि तसु अन्त जिन अनन्त पूजो सु भवि।।२२।।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनचरणाग्रे जयमालार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधिपूर्व जो जिनबिंब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसौं।
अतिपुण्यकी तिनके सु प्रापत होय दीरघ आयुसौं
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश-खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२३।।
पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

(१६) श्री धर्मनाथ-जिनपूजा (१५)

दोहा

लक्षण वज्र कनक वरण धनुष सु पैतालीस।
धर्मनाथप्रतिमा सुकृत पूजत नर सुर ईश।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिन अत्र अवतर अवतर संवोषट्
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिन अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं
ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिन अत्र मम सन्निहितो सन्निधीकरणं

अष्टक

ढाल गुरुभक्ति

प्रासुक जल अति सीयरौ निरमल सु विशाल।
लै त्रय धारा दे यही कर धरि जुग माल।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो।
देवनके देव सरधाकर तिनकी कहौ,
सुखकारण सेव धर्मनाथ धरमज्ञ हो।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रेषु जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन केशरि आदि लै करपूर सुवास
जल सौ गारि सु धारि दै चरणाम्बुज पास।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो। देवन.।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल तंदुल धोय के परिमल सु अखंड।
निरख सकल परमातमा विकलप सब छंड।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो। देवन.।।४।।

ॐ ही श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन विधि परकार के कर धर महकात।
मन वच तन करके सु लै जिनमन्दिर जात।।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो। देवन॰।।५।।

ॐ हीं श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रे कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नाना रस व्यंजनभरे षटरस संयुक्त।
लै विधिसौं अरचन चले जिन आगम उक्त।।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो। देवन॰।।६।।

ॐ हीं श्रीधर्मनाथक्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

स्व-पर प्रकाशक ज्योति है तसु दीपक मांहि।
सो लै हम जिनदेव के शरणागति जांहि।।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो। देवन॰।।७।।

ॐ हीं श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रे मोहाधंकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरु पावकविषैं खेवत भरपूर।
तन मन शुचिकर ल्यायके सर्वज्ञ हुजूर।।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो। देवन॰।।८।।

ॐ हीं श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

लोंग सुपारी लाइची खारक बादाम।
श्रीफल दाख पखारके दरमादिक आम।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो।देवन॰।।९।।

ॐ हीं श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन आदिक लिये दरवें सव आठ।
दर्व भाव विधि सौं उभै पढ़के मुख पाठ।।
धर्मनाथ धरमज्ञ हो। देवन॰।।१०।।

ॐ हीं श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध करि गुन थापना।
तिनके न कारण काज निज कल्याण हेत सु आपना।
जैसे किसान करै सु खेती नाँहि नरपति कारनैं।
अपनौ सु निज परिवार पालन के जु कारज सारनैं।।११।।
पूर्णार्घं

जयमाल

दोहा

धर्मनाथ लखि धर्म धन पंच महाव्रत पाल।
मति माफिक तिनकी कहों भाषा करि जयमाल।।१२।।

तोमर छंद

स्वर्ग उनहार वररत्न नामापुरी, भानु राजा जहाँ तीनगुण चातुरी
सुब्रतानाम देवी सुरानी कही। कूख अवतारनिकी सु लीनौ सही।।१३।।

सिद्ध सर्वार्थतज सुख सहित दुःख बिना।
सुदि सु वैसाख तेरह महा शुभ दिना।।
पुन सुकल माघ तेरस सु जनमन लियौ।
पुष्य वर नखत सुख तखत पर बैठियो।।१४।।

आखल वरष दस लाख आगम धरी।
लाख वरषैं अढ़ाई सु कुँवरावरी।।
लाख वरषैं गई पाँच शुभ राजमें।
आयु गण भाग चौथौं सुतप काजमें।।१५।।

भाद्र सुदि त्रयोदसी दिन सु दीक्षा धरी।
वृक्ष दधिपर्ण तर जिन तपस्या करी।।
सहस राजा सहित छोड़ परिग्रह सवै।
पंचमुष्ठि सु कर केश मुंचे तवै।।१६।।

पाटलीपुत्रमें धर्मसेनहिं बली।
पुण्य परताप तसु सुकृत वली फली।।
तासु ग्रह असन लीनों सुपय-गायकौ।
वरष छदमस्त इक ज्ञान युत क्षायकौ।।१७।।

पूस सुदि पूर्णमा काल अपराहिणी
पांच योजन समोशरण शोभा बनी।।
सेन आदिक गणधार त्रिचालिस लहे।
सहसचौसट सुमहाव्रत सुमुनवर कहे।।१८।।

सहस-वासट जु सत-चार पुनि अर्जका।
दु-लख श्रावक तथा श्राविका चतु-लखा।।
सहस-उनचास सब चार मुनि महाव्रती।
सिद्ध गति जान हारे सुवर जे जती।।१९।।

श्रमण छत्तीस सै अवधज्ञानी मुनी।
सातहज्जार वैक्रयक-रिद्धि गुनी।।
चार साढ़े सहस मनसुपर्यय थली।
तुल्य तिनही सुजिन जान जिन केवली।।२०।।

आठ-सत-सहस पुनि उभय वादी घनै।
जक्ष किन्नर सु जक्षन सुरक्षित तनैं।
छवि समोशरणकी वर किमि कीजिये।
वंसवर कुक्ष महा जिन सुचिर जीजिये।।२१।।

सोरठा

शिखर सम्मेद सुशीश चढ़ सुमुक्ति-कामिनि वरी।
भये शुद्ध जगदीश जेठ वदी चौदस दिना।।२२।।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथजिनचरणाग्रे महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनविम्ब पूजत द्रव्य अरु पुनि भावसौं।
अति पुण्यकी तिनिके सु प्रापत होय दीरघ आयुसौं।।
जाके सुफल कर पुत्र धन-धन्यादि देह निरोगता।
चक्रीसु-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सो होय निज सुख भोगता।।२३।।

इत्याशीर्वाद।

(जाप्य १०८ बार ॐ- श्रीधर्मनाथजिनाय नमः)

(१७) श्री शान्तिनाथ-जिनपूजा (१६)

दोहा

मृगलक्षण हाटकवरण धनुष सु तन चालीस।
शान्तिनाथ प्रतिमा सु लखि पूजों करि धरि शीश।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिन, अत्र अवतर २ संवोष्ट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिन, अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ : ठ : स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिन, अत्र मम सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधिकरणं

अष्टक (ढाल तत्व रायसेकी)

ज्ञानावरणी कर्म हमरौ केवलज्ञान छिपायौ।
दूर होय आवरण हमारौ हाथ जोर जल ल्यायौ।
सुकारण पूजत हौं
श्री शान्तिनाथ जू के पाय सुकारण पूजत हौ
भवतारण तरण सहाय सुकारण पूजत हौं।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

दूजौ कर्म दर्सनावरणी तिस दर्सन गुण खायौ।
निर आवरण भयो चाहत हौं चन्दन घसकर लायौ।।
सुकारण पूजत हौं। श्रीशान्तिनाथ०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा।

तीजौ कर्म वेदनी मेरौ निरावाध गुन रोके।
थालमांहि निरवेरो सु धारे उज्ज्वल तन्दुल धोके।
सुकारण पूजत हौं।। श्रीशान्तिनाथ०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

चौथौ कर्म मोहनी घाते गुन सम्यक्त्व हमारौ।
जाको नाश होय धरि ल्यायौ बहुविध फूल सम्हारौ।।
सुकारण पूजत हौं। श्रीशान्तिनाथ०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेद्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

आयु कर्म पंचमों आयौ तहँ अवगाहन गुन नाहीं।।

सो छूटै दुखदायक मेरौ ले चरुधर कर मांही।
सुकारण पूजत हौं। श्रीशान्तिनाथ०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

नाम कर्म छट्टमो विगारै सूक्ष्मत्व गुण भारी।
तिंहिकौ होय निषेध प्रजालै दीपक भरले थारी।।
सुकारन पूजत हौं। श्रीशान्तिनाथ०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

गोत्रकर्म सातम्रों जग जाना अगुरूलघु गुण वैरी।
सो निर्मल होय मैं खेऊँ धूप महागुन गैरी।।
सुकारण पूजत हौं। श्रीशान्तिनाथ०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तराय आठमों महारिपु वल अनन्त कौ द्रोही।
सो न रहै जु पास हमारे लै फल सुन्दर टोही।।
सुकारन पूजत हौं। श्रीशान्तिनाथ०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

आठ करम ये ही जो मेरे आठ महागुन दावैं।
आठ दरब लै अर्घ संजोयो लेकर शिवपथ पावैं।।
सुकारण पूजत हौं। श्रीशान्तिनाथ०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिविम्ब पूजत त्रिविध कर गुन थापना।
तिनिकें न कारज काज निज कल्यान हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनैं।
अपनौं सु निज परिवार पालन के सु कारज सारनै।।११।।

पूर्णार्घं

जयमाल

दोहा

शान्तिकरनहारे सुजिन घात घातिया साल।
मति माफिक तिनिकी कहूँ भाषा करि जयमाल।।१२।।

हस्तनापुर नगर सर्व शोभा धरैं।
विश्वसेन सु नृप राज जहँ कौ करै।।
नाम एरा सु देवी सु तिनके त्रिया।
जासु कवि कौन वरनैं सुछवि गुण क्रिया।।१३।।

छोड़ सर्वार्थसिद्धि सु को चले।
कूख तिनिकी सु पर काज उपजत भले।।
सप्तमी वदि सु भादों जु महिना जनैं।
त्रय सु दशमी सुदी जेठ की दिन गनैं।।१४।।

नखत-भरनी बखत आयु इक-लक्ष की।
सहस-पनवीस वरषन कुँवरपक्ष की।।
राज पंचास गन सहस वरनत कियौ।
जेठ वदि चौथ के दिन सु जिन तप लियौ।।१५।।

काल तप सहस पच्चीस वरषैं लही।
वृक्ष नन्दी सु तरैं जाय दीक्षा लई।।
सहस भूपति सहि परम व्रत धारनौं।
जाय गौ-दूध लीनों तिन पारनौं।।१६।।

नाम सौमंत सरपुर सु ग्रन्थन लिखैं।
सुखिय प्रियमित्र राजा सुमन्दिर बिखैं।।
वरष षोड़स सु छदमस्तता तहें लगै।
षौष सुदि ग्यारसी ज्ञान केवल जगै।।१७।।

नसत अरि कर्म का और करनैं रह्यौ।।
चार साढ़े समोशरण जोजन लह्यौ।।
चक्र आयुध सु दे आदि गणधर बढ़े।
जासु परमित सु छत्तीस ग्रन्थन चढ़े।।१८।।

सहस वासट सु तिहिं पास प्रति गणधरी।
सहस वितरित सुजिन ध्वनि सुहित उच्चरी।।
सहस गन साठ-सय-तीन पुनि अर्जका।।
लक्ष श्रावक उभय विघन सय वर्जिका।।१९।।

दुगुन लख श्राविका पास जिनगुन रमीं।
शिवजती सहस पंचास-छै-सै कर्मी।।

अवधज्ञानी सहस-तीन वरनैं तब।
तहस छै-रिद्धि वैक्रयकधारी सब।।२०।।

सहस जहँ चार मुनि मनसुपर्यय कहे।
सम सु तिनि केवली कर्म काटन कहे।।
चारसै मुनि उभय सहस वादी गनी।।
अस सु यक्षै जहँ मानसी यक्षणी।।२१।।

वंस इक्ष्वाक महँ जिन सु दुःख हरनकी।
कह सकै को सु महिमा समवसरनकी।।
शिखरसम्मेद चढ़ शुद्ध आतम भये।
जैठ वदि चतुर्दशमी सु मुक्ती गये।।२२।।

सोरठा

पाप पुण्य परिणाम टारि सहज गुण परिणमैं।
पूरन भयो सुकाम जातैं फेर न आवनैं।।२३।।

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधिपूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुनि भावसौं।
अति पुण्य की तिनिके सुप्रापत होय दीरघ आवसौं।।
जाके सुफल करि पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रीसु-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सु होय निज सुख भोगता।।२४।।

इत्याशीर्वाद

(जाप्य १०८ बार - ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथाय नमः)

(१८) श्री कुन्थनाथ-जिनपूजा (१७)

दोहा

कनक वरण लक्षण सु अज तन सु धनुष पैंतीस।
कुन्थनाथ प्रतिमा सुलख पूजौं करि धरि शीश।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिन अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिन अत्र तिष्ट तिष्ठ ठ, ठ, : स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिन अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधीकरणम्।

अष्टक (राग धमार)

उज्ज्वल मुनि-मन सम अतिशीतल गंगोदक सुखदाई।
रतन-जड़त कंचनकी झारी अति शुचि करि भर लाई।।
सरधानी होकर पूजिए।
सो श्री कुन्थनाथ पद पूजत हरत सकल दुःख दोष।
जा प्रसाद उत्तमपद लहिये सहित अखिल सुख मोख।।
सरधानी होकर पूजिए।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थनाथजिनचरणाग्रेषु जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिरि चन्दन घसि केशर परम सुवास कपूर।
प्राणी सु लेकर जिन छवि देखो प्रणमत जाय हजूर।।
सरधानी होकर पूजिये। श्रीकुन्थनाथ०।।३।।

ॐ ह्रीं कुन्थनाथजिनचरणाग्रेषु संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा

चाँवर सलिल पखार ऊजरे सरस अखंडित बीन।
प्राणी निरमल पुंज धरी तहँ जाके लक्षण लख प्रति चीन।।
सरधानी होकर पूजिये। श्रीकुन्थनाथ०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनचरणागेषु अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

लेकर पुष्प बहुत भांतिनके सरस सुवासी फूल।
जिन गुण गाय उतारहु जाको और न जिन सम तूल।।
सरधानी होकर पूजिये। श्रीकुन्थनाथ०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथजिनचरणाग्रेषु कामबाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

व्यंजन विधि प्रकार सुहाये षटरसकरि संयुक्त।
प्राणी-हाटिक थार करौं धरिनी के जिनवर आगम उक्त।।
सरधानी होकर पूजिये। श्रीकुन्थनाथ०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थनाथजिनचरणाग्रेषु क्षुधागविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

सनकरि घृत दीपक सुवरणके वाती सुमिल प्रजाल।
सो लेकर सरनागत प्रभू के नित प्रति निज प्रतिपाल।।
सरधानी होकर पूजिये। श्रीकुन्थनाथ०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थनाथजिनचरणाग्रेषु मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

कृस्नागरू आदिक सुवस्तुको जासु विषैं खुशवोह

चूरणकरि खेवो पावकमें उरधर करि निर्मोह।।
सरधानी होकर पूजिये। श्रीकुन्थनाथ०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थनाथजिनचरणाग्रेषु अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

फल फासू वादाम सुपारी आदि अवीघ अनूप।
परख प्रछाल सलिल धारासों सुरपति पुन नर भूप।।
सरधानी होकर पूजिये। श्रीकुन्थनाथ०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थनाथजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल चन्दन चाँवर फूलनकी माल अवर नैवेद्य।
दीप धूप फल अर्घ बनायो प्रगटत निज-परभेद।।
सरधानी होकर पूजिये। श्रीकुन्थनाथ०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थनाथजिनचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै सु खेती नाहिं नरपति कारनैं।
अपनौं सु निज परिवार पालन कौ जु कारज सारनैं।।११।।

पूणार्घ

जयमाल

दोहा

कुन्थनाथ जगमैं सबै जीवनके रखवाल।
मति माफिक तिनिकी कहौं भाषा करि जयमाल।।१२।।

पद्धड़ी

हथनापुर अति उत्तम सुथान, तहँ सूर्यसेन राजा प्रधान।
देवी तिन श्रीमति गुण गरिष्ठ, तिनि पटतर नार न अवर वरिष्ठ।।१३।।
सर्वार्थसिद्धि आगम सुलेख, तसु गर्भ विषै उपजे जु देव।
सावन वदि वर दशमी सुवार समझो जिन भव गर्भावतार।।१४।।
वैसाख सुदी परमा सुलेख, कृतिका- नक्षत्र जन्माभिषेक।
षट पंच-सहस्र सुलक्षएक, आयुष भुगती विधिसौं अनेक।।१५।।

कुंवरावर पुनि कीनी सुहर्ष, पौने चौवीस-सहस्त्र वर्ष।
तिनतैं गन दुगुन करो सुराज, तज सर्व विभूति कियो इलाज।।१६।।

वैसाखसुदी परमा सुछंद, तप लीनों तिहिं वासर नरिन्द।
तपकाल सुकुंवरावर समान, वृक्ष तिलक सुतर-दीक्षा ठिकान।।१७।।

तजि संग समेत सहस्त्र भूप, चितवत कारज आतम स्वरूप।
हथिनापुर जह धर्मदत्तराय, भोजन तिहिं मध वसायं।।१८।।

गऊ-दूध लियौं तिनिके सुगेह, नरनाथ महा धर्मज्ञ जेह।
छदमस्त रहे षोड़स सुवर्ष, उपजो पुनि केवलज्ञान सर्ष।।१९।।

वर चैत्र सुदी त्रितीया सुलीन, अपराहनीक वेरा प्रवीन
समवादिशरण जोजन सुचार, महिमा वरणति लहिये न पार।।२०।।

तह स्वयंभूति आदिक सुथूल, गणधर पैंतीस कहे सु मूल।
जतिवर गण साठ हजार और, वरणौं किंचित व्रतकी सुठौर।।२१।।

शत साढ़े तीन सहस्त्र साठ, अजिया तिनिकी इकठी सु गांठ।
श्रावक इकलाखक्रिया सुलीन, श्रावकनी लाख प्रत्यक्ष तीन।।२२।।

छयालीस सहस पुनि सय साठ, गति सिद्धि गती तिनिकौ सुठाठ।
सतपंच सहस उभय समन्त, वर अवधिज्ञान मंडित महंत।।२३।।

वैक्रियरिद्धि वारे सुसांच, सतएक सु और हजार पांच।
मनपर्यय ज्ञान विषैं सुलीन, सत-साढ़े तीन सहस्त्र तीन।।२४।।

दोसै अरु तीन-हजार भाखि, केवलज्ञानी वरणों सु साखि।
वादी वरणें तहँ हजार दोय, जहं जक्ष गरूड़ नामा सु होय।।२५।।

जक्षिन अनेक रूप तिसु जान, सुन आगम उक्ति प्रतीत मान।
कुरुवंस विषैं उपजे सुदेव, सम्मेदशिखरपर मोक्षलेव।।२६।।

सोरठा

परमा वदि वैशाख, मुक्त गये शुभ दिन विषैं।
अष्टकरम करि खाक, ते जिनवर बन्दों सदा।।२७।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधिपूर्व जो जिन बिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुनि भावसों।
अति पुण्यकी तिनकें सुप्रापत होय दीरघ आवसों।।

जाके सुफल करि पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रीसु-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सो होय निज सुख भोगता।।२८।।

इत्याशीर्वाद

(जाप्य १०८ वार श्री कुन्थनाथाय नमः)

(१९) श्रीअरहनाथ-जिनपूजा (१८)

दोहा

तीस धनुष कंचन वरन, लक्षण तसु पाठीन
सो प्रति अरहजिनेशकी, पूजौं परम प्रवीन।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे पुष्पाञ्जलिम् क्षिपामि।

गीतिका

जिनके सु पास रही न फास सु जरा रोग न आवहीं।
तिनको सु जन्मन फिर न होय न उन्हें मरण सतावहीं।।
हनि कर्म चार सु घातिया प्रगटे सु उर गुण चार हैं।
पूजौं सु उज्ज्वल नीर लेकर, अरहनाथ अठार हैं।।२।।

ॐ ह्रीं श्री अरहनाथजिनप्रतिमाग्रे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

तिनके न रोग वियोग शोक स्वजोग देख अनन्त जू।
तिनके न पाप न पुण्य श्री परमात्मा भगवन्त जू।
हनि कर्म चार सु घातिया प्रगटें सु उर गुण चार हैं।
पूजौं सु शीतल गंध करि जिन अरहनाथ अठार हैं।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे संसारतापविनाशनाय सुगन्धम् निर्वपामीति स्वाहा।

तिनके न खेद न स्वेद मद निरभय दशा उदित भई।
तिनके न काम न धाम पुनि करनी सकल विधि तज दई।
हनि कर्म चार सु घातिया प्रगटे सु उर गुण चार हैं।
पूजौं सु चाँवर धोय कर जिन अरहनाथ अठार हैं।।४।।

ॐ ह्री श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

जिनके न राग न द्वेष मोह न, सहज शुद्ध दशा जगी।
तिनके न क्रोध न मान माया लोभ भय परनति भगी।
हनि कर्म चार सु घातिया प्रगटे सु उर गुण चार हैं।
पूजौं सु उत्तम पहुप लेकर, अरहनाथ अठार हैं।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे कामवाणविनाशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

तिनके न विस्मय अरति चिन्ता, क्षुधादोष न व्यापहीं।
तिनके सु ज्ञान मझार ज्ञेयाकार आप सु आपहीं। हनि.।।६।।
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

तिनके सु वेद विकार नाहीं सप्त धातु बिना दिपैं।
तन परम औदारिक सु देखत कोटि रविशशि छवि छिपैं। हनि.।।७।।
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

तिनके सुशिर सुरपति हरष कर चँवर चौसठ ढोरहीं।
तिनके सुअतिशय सरस चौंतिस सकल जनमन बोरहीं। हनि.।।८।।
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

तिनके सु आगु अशोक तरूवर, पहुप तरू वरषावहीं।
तिनकी सु वानी खिरत भविजन सुनत सब सुख पावहीं। हनि.।।९।।
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथथजिनप्रतिमााग्रे मोक्षप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

शोभित सु भामण्डल सु आसन, महा अति छवि छाजहीं।
तसु भाल पर धरि छत्र सुरपति शब्द दुंदुभि बाजहीं। हनि.।।१०।।
ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिविम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनै।
अपनौ सु निज परिवार पालन कौं सु कारज सारनै।।११।।
ॐ ह्रीं अरहनाथजिनप्रतिमाग्रे पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ बार - ॐ ह्रीं अरहनाथाय नमः)

जयमाल

दोहा

अरहनाथ अविचल भये हनि अरि कर्म कराल।
मति माफिक तिनकी कहौं भाषा कर जयमाल।।१२।।

पद्धडी

हथिनापुर नग्र महा अनूप, गुणवन्त सुदर्शन नाम भूप।
मित्रा देवी जिसका सु नाम, तिन पटतर और नहीं सुनाम।।१३।।

तजिकें अपराजित ही विमान, तसु गर्भ विषैं जिन गुणप्रधान।
फागुनसुदि तीज सुदिन सुकाल सुखसौं नवमास गये विशाल।।१४।।
मगषिर सुदि चौदस दिन पवित्र, जन्मत सु रोहनी वर नक्षित्र।
थिति वर्ष सहस चउ असिय सर्स, कुंवरावर सहस इक्कीस वर्ष।।१५।।
महाराज वर्ष व्यालिस हजार, कीनों सु तज लागी न वार।
मगषिर सुदि दसमी सुटेक, कुंवरावर तप सम काल एक।।१६।।
तरु आमु तलै निज जान हेत, दीक्षा सु सहस राजा समेत।
चक्रीपुर पराजित सु जेह, गउ-दूध लियौं तिनके सु गेह।।१७।।
छद्मस्त वरष षोड़स संयुक्त, मगसिर सुदि की दशमी जिनुक्त।
अपराहितकाल सु निरविरोध, उपज्यो तिनके केवल सुबोध।।१८।।
जोजन गनि साढ़े तीन ठान, समवादिशरण शोभित निदान।
कुंवरादिक गणधर कहे तीस, प्रतिगणधर सहस पचास दीस।।१९।।
अजया तहाँ साठ हजार ठीक, इक लाख तहाँ श्रावक सुठीक।
मुनिसंत श्रावकनी निवास, सब तीन लाख गनती सु जास।।२०।।
शत नौ हजार दो चतु असीय, केवली काल वरनो तपीय।
दो सै घटि तीनहजार सोध, तिनके घटि अवधि प्रकाशबोध।।२१।।
वैक्रियकऋद्विवारे उदार, ससतीन अधिक सु सहस चार।
मनपर्यय ज्ञानधनी विलोय, अधिके पचपन सुहजार दोय।।२२।।
केवलज्ञानी अरु अवधिवन्त, गिनती सम एक लेखा सुसन्त।
वादी पुनि सोलह से ततक्ष, जक्षी है जया कुवेर जक्ष।।२३।।
समवादिशरण तिहिंकी सुवात, अनमित हम पर वरनी न जात।
कुरुवंस विषैं उपजै सु वीर, हनि कर्म शिखरसम्मेद कीर।।२४।।

सोरठा

गये मुक्तिपुर वास, चैत्र अमावस के दिना।
तिनकौं देवीदास, अल्पमती कहा गुण कहौं।।२५।।

ॐ ह्रीं श्रीअरहनाथजिनप्रतिमाग्रे महार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधिपूर्व जे जिनबिम्ब पूजैं द्रव्य अरु पुनि भावसें।
अति पुण्य की तिनकें सु प्रापति, होय दीरघ आयुसें।।
जाके सुफलकर पुत्र-धनधान्यादि देह-निरोगता।
चक्रेस-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सु होहि निज सुखभोगता।।२६।।

पुष्पांजलिं क्षिपामि

(२०) श्री मल्लिनाथ-जिनपूजा (१९)

दोहा

धनुष देह पच्चीस तसु हेम वरण सुखदाय।
मल्लिनाथ प्रति कुम्भ तसु लक्षण देत बताय।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिन अत्र अवतर संवौषट् इत्याह्वानम्।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिन अत्र तिष्ठ ठ : ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिन अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट सन्निधिकरणम्।

अष्टक

कंचनकी झारी भर लेकर गंगाजल अति निर्मलौ।
एजू-चरण कमल आगे धरि जिनके सबविधि काज सफल फलौ।।
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ।
थकित भये तिनिके पद पूजत इन्द्रादिककौ मद गलौ।
एजू-ज्यों सूरज उद्योत जब नाहीं तब प्रकाश दीपक भलौ।।
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनप्रतिमाग्रेषु जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन गारि कपूर मिलाकर अर जामें केशर गरौ।
एजू- चरनकमल आगे धरि जिनके सबविधि काज सफल फलौ
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ। थकित०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनप्रतिमाग्रेषु संसारतापविनाशनाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल धवल सुवास अखंण्डित प्रासुक जल करिकैं मलौ।
एजू-चरण कमल आगे धरि जिनके सब विधिकाज सफल फलौ
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ।थकित०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनप्रतिमाग्रेषु अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

ताजे पहुप सहित परमल गुण तापर भँवर करत कलौ।
एजू-चरण कमल आगे धरि जिनके सब विधि काज सफल फलौ।।
भविमल्लिनाथ पूजन चलौ। थकित०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनप्रतिमाग्रेषु कामवाणविध्वंसनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

पंचामृत मेवावर घृत पक नेवजकरि अति निर्मलौ।
एजू-चरनकमल आगे धरि जिनके सब विधि काज सफल फलौ।।
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ। थकित०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनप्रतिमाग्रेषु क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक ज्योति उगति मारुत करि प्रणमत मनु माथौ हलौ।
एजू-चरनकमल आगे धरि जिनके सब विधि काज सफल फलौ।।
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ।थकित०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनचरणाग्रेषु मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

पावक मांहि खेवने कारण चन्दन आदिक लै चलौ।
एजू-चरनकमल आगे धरि जिनके सबविधि काज सफल फलौ।।
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ। थकित०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनचरणाग्रेषु अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि अनार आदि फल जो द्रुमतैं आप हु ढलौ।
एजू- चरनकमल आगे धरि जिनके सब विधि काज सफल फलौ।।
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ। थकित०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनचरणाग्रेषु मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल आदिक परकार दरब वसु उज्ज्वल थार विधि काज सफल फलौ।।
ए जू चरनकमल आगे धरि जिनके सब विधि काज सफल फलौ।
भवि मल्लिनाथ पूजन चलौ। थकित०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनचरणाग्रेषु अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हम निरख जिन प्रतिविम्ब पूजत त्रिविध करि गुण थापना।
जिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनैं।
अपनों सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनैं। पूर्णार्घं।।११।।

जयमाल

दोहा

मल्लि जिनेश अमल्लहो पायो अविचल ठाल।
मति माफिक तिनकी कहौं भाषा करि जयमाल।।१२।।

पद्धडी

मिथला नगरी समस्वर्ग लोक, जहँ कुम्भ नाम भूपति मनोग।
रानी तसु नाम प्रभावतीस, तिन देव सुगुरू नावत सुशीश।।१३।।

अपराजित छोड़ विमान वास, परमा सुदि चैत सुगर्भ जास।
नवमास जहँ सु गनौ प्रवीन, मगसिर सुदि ग्यारस जन्म लीन।।१४।।

अश्विनी-नक्षत्र सुखकौ सुकेत, घर-घर वर तिलक तमोर देत।
आयु सु वरष पचपन हजार, पूरन करि पुनि बहुविधि प्रकार।।१५।।

पौने सुचतुर्दश सहसवर्ष, कुँवरावर अति कीनी सुसर्स।
जगजाल सकल जानों अनित्त तनि राजविषैं दीनों न चित्त।।१६।।

इकतालीस सहस सहस्त्र पाउ, तपकाल कहास जहँ निज उछाउ।
मारगसुदि ग्यारस तप तपंत, दीक्षा तरूतर सु अशोक गंत।।१७।।

सततीन सुधी नरनाथ संग, लीनौं सुमहाव्रत अति अभंग।
अति सुन्दर मिथलापुर सुनग्र, नृप नंदसेन जुत गुण समग्र।।१८।।

पहुँचे जिन तसुग्रह की सु सूध, दीनों तिन असन गऊ-सुदूध।
छहदिन ही रहे छदमस्त धीर, पुनि केवलज्ञान भयो गहीर।।१९।।

फागुनवदि वारसके सु जोग, अपराहिनीक बेरा नियोग।
समवादिसरन जोजन सु तीन, गणधार अठाइस सुगुण लीन।।२०।।

वरने सु विशाखा नाम आदि, मुनिवरगण गुण मंडित तपादि।
परमित सुसहस चालीस सोय, हमसें सो सब वरणन न होय।।२१।।

मुनिवर तद्भव भवतरन हार, दौसै घट जे उनतिस हजार।
पचपन सहस्त्र अजिया समूह, तिनके जसकी जगमें सु कूह।।२२।।

इकलाख श्रावक तहँ सु भूरि, तिगुनी तहँ श्रावकनी सु भूरि।
जुगसहस उभय सत अवधिवंत, मनपर्यय सहित कहो महंत।।२३।।

जे मुनि हजार पोंने सुदोय, तिनिके सुपरिग्रह पुनि न कोय।
गन सहस-तीन सय एकषाट वैक्रियिकरिद्धिवारे निराठ।।२४।।

केवली सहस जुग-जुग सतीस, तिनिकों सु जगतपति नमत शीश।
वादी चौदासत सहित वाद, जय करत सुजक्ष सु वरुण वाद।।२५।।

विजिया नामा देवी सुपास, जिनभक्ति करत उर धरि हुलास।
जगमाहिं परम आनन्द भौन, समवादिसरन वरनै सु कौन।।२६।।

इक्ष्वाकु-वंश उत्तम सुगोत, तिन कीनों जगमें यह उद्योत।
फागुनवदि पाचें दिन अदोस, सम्मेदशिखर चढ़ि गमन मोख।।२७।।

सोरठा

तीनलोक तसु ज्ञान विषै धरैं ज्यों के सु त्यों।
सो जगमें सुखदान भये सिद्ध परमातमा।।२८।।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथजिनचरणाग्रेषु महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधिपूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसौं।
अतिपुण्यकी तिनके सु प्रापत होय दीरघ आवसौं।।
जाके सुफल करि पुत्र-धन-धान्यादि देह-निरोगता।
चक्रीसु-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सु होय निज सुख भोगता।।२९।।

इत्याशीर्वाद

(जाप्य १०८ बार - ॐ श्रीमल्लिनाथाय नमः)

(२१) श्री मुनिसुव्रतनाथ-जिनपूजा (२०)

दोहा

श्याम वरण शोभित सुतनु, कछवा लक्षण तास।
वीस धनुष उन्नत सुतन, मुनिसुव्रत प्रति जास।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिन अत्र अवतर संवोषट इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिन अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ : ठ : स्थापनम्।
सन्निधिकरणम्।
ॐ ह्रीं श्रीमुनिसोव्रतजिन अत्र मम सन्निहतो भव भव वषट्।

अष्टक (सारंग छन्द)

जिनवर आगम उक्ति सु छान सु प्रासुक पानी।
उज्ज्वल परम अनूप महा शीतलसुखदानी।।
जा सम देव न और तरनतारन पुनि दूजौ।
थिर कर चित सु लै जिन मुनिसुव्रत प्रति पूजौ।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

वावन चंदन सर्व स्वदाह निकंदन हारौ।
परिमल सहित कपूर सु केशर मिश्रित गारौ। जासम०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु संसारतापविनाशनाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल उज्ज्वल धोय विवर्जित पुनि रक्ताई।
परम अखंडित सरस सुवास कही नहिं जाई। जासम०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी वेल सुतार निहार चमेली।
निजकर धरि सुद्ध न्यार सुमाल हथाहथ झेली। जासम०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु कामवाणविध्वंशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

बाबर पुरिया पेराक तुरत खाजा कर फैनी।
इव आदक पकवान सुरस उपजौ घर जैंनी। जासम०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

वाती घृत भर पूर सु पावक लै उजयारी।
प्रगट महातम दीप महातम नाशनहारी। जासम०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

पावक मध्य सुहोय न हेत सु धूप सुवासी।
चन्दन आदि मिलाकर उत्तम वस्तु सु खासी।जासम०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

जातीफलु पुंगीफल श्रीफल दाख छुहारे।
आम अनार कपित्थ सु दुःख निवारन हारे।जासम०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

वारि सुगन्ध सु अक्षत फूल सु व्यंजन ताजे।
दीपक धूप दशांग सु लै उत्तम फल साजे।जासम०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिनप्रतिबिम्ब पूजत त्रिविधि कर गुण थापना।
तिनके न कारज सारनैं कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनें।
अपनौं सु निज परिवार पालन कौं सु कारज सारनें। पूर्णार्घ।।११।।

जयमाल

दोहा

मुनिसुव्रत लख कर भवि मुनिसुव्रत की लाल।
मति माफक तिनकी कहूँ भाषाकरि जयमाल।।१२।।

पद्धड़ी

राजगृह नगर सुनौं सु भाय, जहँ राज करैं सुमित्रराय।
रानी पदमा देवी सु भौन, तिन तुल्य त्रिया वरनों सु कौन।।१३।।

उतरे तज आनत स्वर्ग संत, तसु गर्भ विषैं उपजे महंत।
सावनवदि दिन दुतिया सुपाय, तिनतैं नवमास गिनैं सु आय।।१४।।

असौंज सुदी वारस सु वार, विधि पूर्व भयो जन्मावतार।
सु विशाल श्रवण नामा नक्षत्र, वरषायुस तीस हजारमित्र।।१५।।

कुँवरावर में जानी न जात, वर्षं सु साढ़े-हजार-सात।
पन्द्रह-सहस्र वरसन सुराज, भुगतौं पुनि तप कीनों इलाज।।१६।।

वैसाख वदी दशमीं सुजान, तप कीनौं कुँवरावर समान।
दीक्षा हजार राजा समेत, चंपक तरु तर निजकाज हेत।।१७।।

राजगृह नगर सु वृषभसेन, तिनके घर दूध लियौ सु धेनु।
छदमस्त मास ग्यारह गमाय, फागुनवदि छट महिना सुपाय।।१८।।

अपराहिन काल सुदिपौ ध्यान, उपजो तिनके केवलसुज्ञान।
जोजन अढ्ढाईस अतिसुमेर समवादिसरन वरणों सुहेर।।१९।।

गण आदि अठारह मल्लिदेव, प्रतिगणधर तीस सहस्र लेव।
अजया सु पचास सहस्र सर्व, श्रावक इक लाख सुभाव दर्व।।२०।।

तिगुणी तिन श्रावकनी सुकेन्द्र, जुत अवधि अठारह सै मुनेन्द्र।
उनईश-सहस-सत अवर दोय, गति सिद्ध जती तिन सम न कोय।।२१।।

वैक्रियिकरिद्धि वारे सुसाध, दोसहस शतक जुग ज्ञान साध।
मनपर्ययज्ञान धनी सुदक्ष, संख्या तसु पन्द्रासै ततक्ष।।२२।।

केवल सु अठारासै जिनेश, तिनकौं करनौ कारज न लेश।
वादी शतदोय सहस्र एक, पुनि यक्ष भ्रकुटि नामा सु एक।।२३।।

जक्षनका अपराजित सुनाम, निवसै जहँ श्रीजिनवर सुधाम।
हरिवंश विषैं शोभा सुदैन, मुखपर शोभित जैसे सुनैन।।२४।।

फागुनवदि वारस ऋतु वसंत, सम्मेद शिखर चढ़ कर्महंत।
तिनकौ निज ध्यान धरैं त्रिकाल, कवि देवीदास लखा गुपाल।।२५।।

सोरठा

तिमिर सकल अज्ञान दूर भयौ जाती समय।
सुखदातार निदान लेखे केवलज्ञानके।।२६।।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतजिनचरणाग्रेषु महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जाप्य १०८ वार - ॐ श्रीमुनिसुव्रतजिनाय नमः।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनविम्ब पूजत द्रव्य अरु पुनि भावसौं।
अति पुण्यकी तिनके सुप्रापत होय दीरघ आवसौं।।
जाके सुफल करि पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रीसु-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सु होय निज सुखभोगता।।२७।।

इत्याशीर्वादः

(२२) श्रीनमिनाथ-जिनपूजा (२१)

दोहा

पन्द्रह धनुष सुहेम रंग, चिन्ह पाखुरी कंज।
मूरत श्रीनमिनाथकी, पूजौं तन मन अंग।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनचरणा अत्र अवतर अवतर संवौषट इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनचरणा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ : ठ : स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनचरणा अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

अष्टक (ढार कार्तिककी)

लैकर नीर महा अतिठंडौ दै त्रय धारा सु सन्मुख छंडौ।
सुगुण हम ध्यावैं गणफनपति कथ पार न पावैं सुगुण हम ध्यावैं।।
जिन सम देव अवर नहिं दूजौ, श्रीनमिनाथ जिनेश्वर पूजौ।
सुगुण हम ध्यावैं गण फनपति कथपार न पावैं सुगुण हम ध्यावैं।।२।।

ॐ ह्री श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल परमल चन्दन गारौ, जिन प्रभुकी प्रति अग्र उतारौ।
सुगुण हम ध्यावें गणफनपति कथ पार न पावें सुगुण हम ध्यावैं। जिनसम.।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल अक्षत नीर पखारे, पास धरों प्रभू तारनहारे।
सुगुण हमध्यावें गणफणपति कथ पार न पावें सुगुण हम ध्यावैं। जिनसम॰।।४।।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप महा उत्कृष्ट सुवासी, ले समरथ उर होऊ हुलासी।
सुगुण हम ध्यावैं गणफणपति कथ पार न पावैं सुगुण हमध्यावैं। जिनसम॰।।५।।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेद्राय कामवाणविध्वंशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज कर उत्साह बनायौ ले श्रीपति सरनागति आयौ।
सुगुण हम ध्यावें गण फणपति कथ पार न पावें सुगुण हम ध्यावै। जिनसम॰।।६।।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

कर ले धरकर दीप प्रजालौं भक्ति करत जगमगत दिवालौं।
सुगुण हम ध्यावैं गणफणपति कथ पार न पावें सुगुण हम ध्यावैं।। जिनसम॰।।७।।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

खेवत धूप अधिक महकाती अगन मँझार सुगंध सुताती।
सुगुण हम ध्यावें गणफणपति कथ पार न पावें सुगुण हम ध्यावें। जिनसम॰।।८।।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

फल आदिक वादाम सुपारी सेवक होहि जजौं सर भारी।
सुगुण हम ध्यावें गणफणपति कथ पार न पावैं सगुण हम ध्यावैं। जिनसम॰।।९।।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जलआदिक दरवें वसु लीजे भव-भर दुःख जलांजुल दीजे।
सुगुण हम ध्यावें गणफणपति कथ पार न पावैं सुगुण हम ध्यावें। जिनसम॰।।१०।।
ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेतु सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाँहि नरपति कारनें।
अपनौ सु निज परिवार पालन हेत कारज सारनें। पूर्णार्घं।।११।।

जयमाल

दोहा

सुख उपजत नमिनाथ के सुन तसु वचन रसाल।
मति माफक तिनिकी कहूँ सुखदायक जयमाल।।१२।।

पद्धडि

मिथिला नगरी उत्तम सुथान, धर्मज्ञ विजय नामा सुनाम।
वप्रा देवी तिनिके रानि, सम्पूरण शुभगुण गण सुखानि।।१३।।

उपजे अपराजित तज विमान, निवसैं तिनकी वर कूख मान।
दोयज दिन शुभ लागत सुक्वार, वरषै तिनके कर रत्न द्वार।।१४।।

नवमास महा सुखसों जमाय, वदि दिन दसमीं सु अषाड़ आय।
जनमें अश्विन सु नक्षत्र मांहि, तिनि पास सहज मलमूत्र नांहि।।१५।।

दस सहस वरष थिति वीतराग कुँवरावर महि चौथे सुभाग।
कर राज सहस वरषैं सुपांच, दिन शेषमाहिं तपकी सु बांच।।१६।।

वदि दिन अषाड़ दसमीं गहीर, तप वासर परम सु घोर वीर।
दीक्षा जुत एक सहस्त्र भूप, द्रुममौलश्री नामा अनूप।।१७।।

वर सुगजपुरी नगरी सुसत्त, जहँ प्रगट नाम राजा सुदत्त।
बडभागवंत तिनके सु जाय, भोजन तिहिं दूध लियौ सुगाय।।१८।।

छदमस्त रहे नवमास सोय, वर ज्ञान भयो मल कर्म धोय।
तृतीया सुदि चैत सुदिन सुनीत, अपराहनीक वेरा पुनीति।।१९।।

समवादिशरण जोजन सु दोय, गणधर सुप्रभ आदिक सुजोय।
दससप्त तिन्हैं नित नमत शीश, प्रति गणधर पूज्य हजार वीस।।२०।।

षट पंच-सहस गण लाख अर्द्ध मार्गिनी अर्जिका तसु सुपर्ध।
श्रावक इन श्रावकनी सुतीन, गणतीसुलाख जानौं प्रवीण।।२१।।

सत-षोड़स अवधिधनी मुनीश, तिन तुल्य सुकेवल त्रिजगदीश।
नरसहस अवर षट सब गुनज्ञ, गतिसिद्ध जती निज धरम लज्ञ।।२२।।

वैक्रियकरिद्धिवारे सुजेठ, तिनकी गिनती सु हजार डेढ़।
मनपर्यय चौथौ ज्ञान धार, तिनकी गिनती सु सवा हजार।।२३।।

वरने इक सहस सु वादवन्त, गोमेदक नाम सु जच्छ सन्त।
जच्छिन बहुरूपिन देवी होय इक्ष्वाकु वंश रक्षौ सो मोय।।२४।।

सोरठा

चौदस वद्धि वैसाख मुक्ति शिखर सम्मेद चढ़।
पहुँचे निरअभिलाख देवीदास कहै सु कवि।।२५।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथजिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ वार ॐ श्रीनमिनाथाय नमः)

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसौं।
अति पुण्य की तिनके सुप्रापत होय दीरघ आवसौं।।
जाके सुफल कर पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रीसु-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सु होय निज सुख भोगता।।२६।।

इत्याशीर्वाद।

(२३) श्री नेमिनाथ-जिनपूजा (२२)

दोहा

श्यामवरण तनु दश धनुष लक्षण संख सुपेत।
मूरत नेमि जिनेशकी पूजत अति छवि देत।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनचरणा अत्र अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनचरणा अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ : ठ : स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनचरणा अत्र मम सन्निहितो भव २ वषट् सन्निधिकरनम्।

अष्टक (गन्धोदक छन्द)

महाशुद्धपानी समद्रै समानी सु लै,
आदि दै मुख्य गंगा नदीकौ।
उभै नेमिजिनके सुपद कंज पूजौं,
लियौ भार तिन आप शिर धर जतीकौ।।

तजी रूप भारी विनाशीक नारी,
लई सार वालापनैं माँहि दीक्षा।
सुगिरनार चढ़कैं धरो ध्यान बढ़कै,
तिन्है मुक्ति सुख भुक्तिवेकी सुइच्छा।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुवासीक सीरौ मिले रंग पीरौ,
सुलै कुंकुमादिक द्रुमेश्वर दरीकौ।
उभै नेमिजिनके सुपद कंज पूजौ,
लियौ भार तिन आप शिर धर जतीकौ। तजीरूपभारी०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्रेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुधे शालि अच्छित सुधीताहि अच्छित।
अवीधे अखंडित सुलै हर्ष हीकौ।
उभे नेमिजिनके सुपद कंज पूजौं,
लियौ भार तिन आप शिर धर जतीकौ।तजीरूपभा०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्रभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्निर्वपामीति स्वाहा।

क्षुमन सेतजीकौ कमल केतकी कौ,
सुवासीक सुन्दर वरण सोंन की कौ।
उभै नेमिजिनके सुपद कंज पूजों,
लियौ भार तिन आय सिर धर जतीकौ। तजीरूपभा०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्रभ्यो कामवाणविध्वंशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

धरो मिष्ट मेवा महा जोग्य जेवा,
सु लै अन्य शोधौ पको सुद्ध घीकौ।
उभै नेमिजिनके सुपद कंज पूजौ,
लियौ भार तिन आय शिरधर जतीकौ।तजीरूपभा०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्रभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

दियौ घृत सुवाती ज्वलन ज्योति लाती,
महातम सुघाती उदय जासु नीकौ।
उभे नेमिजिनके सुपद कंज पूजौं,
लियौ भार तिन आय शिर धर जतीकौ। तजीरूपभा०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्रभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुगन्धीक धरकैं भली वस्तु करिकैं,
लता पेड़ पल्लव नहीं जास रीकौ।
उभै नेमिजिनके सु पद कंज पूजौं,
लियौ भार तिन आय शिरधर जतीकौ। तजीरूपभा०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

सु जे फल अदोखेसहीसार सूखे
लवंगादि के थार भर लाइचीकौ
उभै नेमिजिनके सुपद कंज पूजौ
लियौभार तिन आप शिर धर जतीकौ। तजीरूपभा०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलप्राप्ताय फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुलै अष्ट विधि द्रव्य जो चन्दनादिक
करो एक भाजन विषैं अध ठीकौ।
उभै नेमिजिनके सुपद कंज पूजौं
लियौ भार तिन आप शिर धरि जती कौ। तजीरूपभा॰।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध करि गुण थापना।
जिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सुआपना।।
जैसे किसान करैं जु खेती नाँहि नरपति कारनैं।
अपनौं सु निज परिवार पालन कौ जु कारज सारनै। पूर्णार्घं।।११।।

जयमाल

दोहा

राजमती तजकैं भए नेमिजतीसुर बाल।
मति माफक तिनि की कहौं भाषाकरि जयमाल।।१२।।

नाम नगरी महां धन्य द्वारावती,
नृप समुद विजय जहँ परम उत्तमगती।।१२।।

जासु रानी सु शिवदेवि वहुगुण भणी,
कूख अवतार लीनौ, सुत्रिभुअन धनी।।१३।।

छोड़ करिके विमानै सु अपराजतै,
छट्ट सुकातिक सुदि सुखसौ उपजो पितै
सुदि सु वैसाख तेरस सु नव-मासमें,
जन्म तिनिकौ सु चित्रानखत तासमें।।१४।।

आखल सहस इक वरस आगमधरी,
तीनसै वरष तिनकी सुकुंवरावरी।
राज कीनों नहीं, तप सो हिरदैं धरो,
षष्टमी सुदि सु सावन महां दिन खरो।।१५।।

सातवैं वरष थिति सेव तप में करी,
भूप इकसहस संयुक्त दीक्षा लई।
अति संग सव परिहरैं, वृक्ष तसु नाममें है सुसिंगी तरैं।।१६।।

वीर वर पुरुष वरदत्त राजा जहां,
जाय गऊ-दूध आहार लीनौ तहां।
दिवस छदमस्त छप्पन सु तामें रहें,
एक अश्विन सुदी दिन सु केवल लहे।।१७।।

काल वेरा सु पूर्वाहिनी जिन भनौ,
डेढ़ जोजन समोसरण तिनिकौ बनौ।
सहस इक सतक चौ प्रतिसु गणधर कहे,
आदि वरदत्त ग्यारह सु ग्यारह कहे।।१८।।

सहस च जुत अर्जका व्रत सुनी,
लाखश्रावक सु जहँ श्राविका त्रयगुनी।
सत सु पन्द्रह सु वर अवधजुत महाव्रती,
सहस यहँ आठ पुनि सिद्ध गति जे जती।।१९।।

सहस इक एकसै वैक्रियकरिद्धिके,
केवलिया सहस तहँ डेढ़ सुखसिद्धिके
मनसुपर्ययधनी सहस इकसौ कर्मी,
आठसै वादि करतार तिनिकी जमी।।२०।।

जक्ष पारस सु जक्षी है कुष्मानुनी,
भक्ति महँ लीन सर्वज्ञ जिन जाननी।
सब समोशरण की विभव को कहि सकै,
अमित महिमा सुकवि मन्दमति कह थकै।।२१।।

सुदि सु आषाड़ आठ न पुनरूक्तमें,
चढ़ सुगिरनार पहुँचे सु जिन मुक्तिमें।
वंश-यादव सु जगमांहि जाहिर भयो,
तप फलो सुकृत भव-पूर्वमें वीजयो।।२२।।

सोरठा

सुनत महासुख होय तिनि जिनवरकी वात।
इष्ट लगै अति सोय कवित्त छंद भाषा करत।।२३।।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथजिनेन्द्रेभ्यो महाअर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिनविम्ब पूजत द्रव्य अरु पुनि भावसौं।
अति पुण्य की तिनकै सुप्रापत होय दीरघ आवसौं।।
जाके सुफल करि पुत्र धन-धान्यादि देह निरोगता।
चक्रीसु-खग-धरनेन्द्र-इन्द्र सु होय निज सुख भोगता।।२४।।

इत्याशीर्वाद।

(जाप्य १०८ वार - ॐ श्रीनेमिनाथाय नमः)

(२४) श्री पार्श्वनाथ-जिनपूजा (२३)

दोहा

लक्षण उरग हरित वरण, तन उतंग नव हाथ।
मन-वच-तन कर पूजिये, सो प्रति पारसनाथ।।१।।

ॐ ह्रीं श्रीपारसनाथ जिनचरणाग्रे पुष्पांजलिम् क्षिपामि।

गीतिका छन्द

उपमान जासु, विमल वासु भाव शुभ गति लेवजू।
ल्यायौ सुपूजन हेत पार्श्वनाथ उत्तम देवजू।।
जुग उरग सुनि सुवचन भये धरणेन्द्र पुन पद्मावती।
तसु चरण पूजत क्यों न हो सुविभव वर मनभावती।।२।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

अति सरस चन्दन दुख निकन्दन, करम-हार सुश्रेय जू।
ल्यायौ सु पूजन हेत, पार्श्वनाथ उत्तम देवजू।। जुग०।।३।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे संसारतापविनाशनाय सुगन्धम् निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल सु तन्दुल, सम सुचन्द बड़त दाम सुलेवजू।
ल्यायौ सु पूजन हेत, पार्श्वनाथ उत्तम देवजू।। जुग०।।४।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् निर्वपामीति स्वाहा।

छवि धवल फूल, गदूल आदिक, कर महा सुतवेर जू।
ल्यायौ सु पूजन हेतु पार्श्वनाथ उत्तम देवजू।। जुग०।।५।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजितचरणाग्रे कामवाणविध्वंशनाय पुष्पम् निर्वपामीति स्वाहा।

चरू नरम पुनि गुन सरस कारण मिले शक्कर स्वादु जू।
ल्यायौ सु पूजन हेतु पार्श्वनाथ उत्तम देवजजू।। जुग०।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

तसु ज्योति जगमग, होत दीपक, दमक वर स्वयमेव जू।
ल्यायौ सु पूजन हेतु पार्श्वनाथ उत्तम देवजू।जुग०।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

वर धूप परम अनूप अग्नि मझार कर धर खेवजू।
ल्यायौ सु पूजन हेतु पार्श्वनाथ उत्तम देवजू ।जुग०।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

फल सार सुख दातार जामहि सरस गुण स्वयमेवजू।
ल्यायौ सु पूजन हेतु पार्श्वनाथ उत्तम देवजू।जुग०।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा।

जल आदि सर्व प्रकार दर्व सु अरघ कर स्वयमेव जू।
ल्यायौ सु पूजन हेतु, पार्श्वनाथ उत्तम देवजू।जुग०।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथचरणाग्रे अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिनबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज, कल्यान हेतु सु आपना।
जैसे किसान करे जु खेती, नाँहि नरपति कारने।
अपने सु निज परिवार पालन, को जु कारज सारने।।११।।

ॐ ह्रीं श्रीपर्श्वनाथचरणाग्रे पूर्णार्घ्यंनिर्वपामीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ वार - ॐ ह्रीं पार्श्वनाथाय नमः)

जयमाल

दोहा

पार्श्वनाथ सु कमठ मद, मद मर्दन विकराल।
मति माफिक तिनकी कहौं, भाषा कर जयमाल।।१२।।

पद्धडि

बनारस नाम पुरी सु अनूप, जय अश्वसेन नामा सुभूप।
वामादेवी तिनके सु रानि, दुःखहरन परम सुख की सुखानि।।१३।।

आये तजि प्राणत नाम स्वर्ग, लक्षण तिनके वरणों सु उर्ग।
वेशाख वदि तृतीया नगीच, उत्पन्न भये तसु गर्भ वीच।।१४।।

आयुस वरनी शत सहस कीस, कुँवरावर वरस प्रवीन तीस।
तप दिन ग्यारस सुदी माघसर्म, तप काल करो सत्तर सुवर्ष।।१५।।

राजा शत संघ कहे सुतीन, दीक्षा-धव वृक्ष तरे सु तीन।
पुन गुल्म नगरी सु श्रेष्ठ, धनदत्त जहाँ राजा सु ज्येष्ठ।।१६।।

गौ-दूध लियौ तिनके अहार, छद्मस्त काल है चार मास।
वदि चैत चौथ वेरा प्रभाव, उपज्यौ केवल अरिकर्मघात।।१७।।

जोजन सवा समवादिशरण, उत्कृष्ट विषैं तसुपंचवरण।
दस आदि स्वयंभूगणधरेश, तिनको हम नित नावत सु शीश।।१८।।

प्रतिगणधर वर सोरा-हजार, अड़तीस-सहस अजया सु सार।
श्रावक अरू श्रावकनी प्रत्यक्ष इक लाख तथा पुनि तीन लक्ष।।१९।।

संयुक्त अवधि तिनके न डेढ़, शत हीन सहस वरने सु डेढ़।
वैक्रियकऋद्धि वारे महंत, इस सहस विषैं वरने सिद्धान्त।।२०।।

मनपर्ययवंत अडोल गात, ऊपर पचास सु शतक-सात।
केवलज्ञानी सु हजार एक, जे वादि करत छह शत सु टेक।।२१।।

मातंग जक्षपद्मावतीय, जिन भक्ति करत नावत सुशीश।
उज्ज्वल शुभ यौ वर उग्र वंश, शिवकारज अरि कर्मन विध्वंश।
सावन सुदि दिन सातें सुमास, सम्मेदशिखर चढ़ मुक्ति पाय।।२२।।

सोरठा

तेइसमें जिनराय, मैं मन वच तन करकें जजौं।
तारणतरण जिहाज, चतुर्गति भव उदधिके।।२३।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जयमालार्घ्यं।

गीतिका

विधि-पूर्व जो जिनविम्ब पूजै, द्रव्य अरु पुन भावसौं।
अति पुन्य की तिनकौं सु पति, होय दीरघ आयुसौं।।
जाके सुफल कर पुत्र, धन-धन्यादि देह निरोगता।
चक्रेश-खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होय निज सुख भोगता।।२४।।

पुष्पांजलिम्।

(२५) श्री महावीर-जिनपूजा (२४)

लक्षण सिंह सुहावनो, तन तिनकों कर सात।
पीत-वरन महावीर प्रति, पूजौ भव्य प्रभात।।१।।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनचरणाग्रे पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि।

अष्टक ढार देशी की

प्राणी जन्म जरा मरणो महा, जो दुःख तीन प्रकार हो।
जासु विनाशन कारणे, ले जल त्रय धार हो।।
मनवचकाय लगाये के, फिर न मिले यह वार हो।
वर्द्धमान जिन पूजिये, द्रव्य भाव विधि सार हो।।
मनवचकाय लगाय कें, फिर न मिलै यह वार हो।
वर्द्धमान जिनपूजिये।।२।।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनचरणाग्रे जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलम्।

मोह महा आताप को करत स्वभाव विसार हो।
जासु विनाशन कारने लेकर चन्दन गारि हो।।
वर्द्धमान जिनपूजिये०।. . . . .
प्राणी मनवचकाय लागायकै फिर न मिले यह वार हो।।३।।
ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनचरणाग्रै संसारतापविनाशनाय सुगन्धम्

प्राणी गमन चतुर्गति को जु है अति दीरघ दुःख प्रदाय हो।
जासु विनाशन कारने उज्ज्वल अक्षत लाय हो।।
वर्द्धमान जिनपूजिये०।
प्राणी मनवचकाय लगायकै प्राणी फिर न मिलै यह वार हो।।४।।
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनचरणाग्रे अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम्।

प्राणी दुःखदायक जग में नहीं और विरह सम तूल हो।
जासु विनाशन कारणे, ले अति सुन्दर फूल हो।
वर्द्धमान जिन पूजिये०।
प्राणी मनवचकाय लगाय के प्राणी फिर न मिलै इह वार हो।।५।।
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनचरणाग्रे कामवाणविनाशनाय पुष्पम्।

प्राणी भूख भयानक है बड़ी करत क्लेश अपार हो।
जासु विनाशन कारणे ले नेवज भर थार हो।।

वर्द्धमान जिन पूजिये॰।
प्राणी मनवचकाय लगायकै प्राणी फिर न मिलै इह वार हो।।६।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनचरणाग्रे क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम्।

प्राणी गोपत केवलज्ञान को अन्धकार अज्ञान हो।
जासु विनाशन कारणे, ले दीपक सुखदाय हो।।
वर्द्धमान जिन पूजिये।
प्राणी मनवचकाय लगायकै प्राणी फिर न मिले इह वार हो।।७।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनचरणाग्रे मोहान्धकारविनाशनाय दीपम्।

प्राणी अष्टकर्म उरझावहिं यह जग में सर्वांग हो।
जासु विनाशन कारणे खेवत धूप दशांग हो।।
वर्द्धमान जिन पूजिये प्राणी
मनवचकाय लगाय कै, फिर न मिले इह वार हो।।८।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनचरणाग्रे अष्टकर्मदहनाय धूपम्।

प्राणी अन्तराय अरि आठमों अक्षय निधि खो देत हो।
तासु विनाशन कारणे ले फल होहि सु चेत हो।
बर्द्धमान जिन पूजिये,
प्राणी मनवचकाय लगायकै, फिर न मिले इह वार हो।।९।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनचरणाग्रे मोक्षफलप्राप्तये फलम्।

प्राणी चल चंदन चाँवर भले फूल सु रस नैवेद्य हो।
दीप धूप फल आदि दे उर धर परम उमेद हो।
वर्द्धमान जिन पूजिये प्राणी मनवचकाय लगायके,
फिर न मिले इह वार हो।।१०।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनचरणाग्रे अनर्घपदप्राप्तये अर्घम्।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिबिम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेतु सु आपना।।
जैसे किसान करे जु खेती नाँहि नरपत कारणे।
अपनों सु निज परिवार पालन को सु कारज सारने।।११।।

ॐ श्रीवर्द्धमानचरणाग्रे पूर्णार्घ्यं निर्वपा. मीति स्वाहा।

(जाप्य १०८ वार मन्त्र - ॐ ह्रीं वर्द्धमानजिनाय नमः)

जयमाल

दोहा

पूजत सन्मतिनाथ पद, पूजत मन की हाल।
मति माफिक तिनकी कहूँ भाषा कर जयमाल।।१२।।

पद्धडि

पुष्पोत्तर सुखकारण विमान, सुन जानो तसु आगम प्रमाण।।
कुण्डलपुर नाम सु नग्र ऐन सिद्धारथ नाम राजा सु जैन।।१३।।

तिनके ‹प्रियकारिणी› देवी सु वाम, तसु गेह आज महावीर नाम।
आषाढ़ सुदी छटमी जु जान उपजे तसु कूख विषैं सु आन।।१४।।

जन्मे तेरस दिन सुदि सु चैत्र हत अष्टकर्म करि है सु जैत्र।
वर उत्तराफाल्गुन नखत जोग, बरसे सुवहत्तर थिति नियोग।।१५।।

कुँवरावर बरस सु तीस योग, तिन राजरिद्धि भुक्ती न कोय।
मगसिर वदी शुभ दशमी सु जोय, तप कीनौ अति निश्चिन्त होय।।१६।।

वरसे सु कालि सविधि अनेक, दीक्षा जुत भूप निदान एक।
दुम सालिर तर लीनौ सुठौर विधि जोग्य पारने की सुवौर।।१७।।

कुण्डलपुर तहाँ नृप कूलसेन, तिनके घर दूध लियौ सुधेन।
छद्मस्थ बरष दश और दोय, दुःखदायक कर्म कलंक धोय।।१८।।

वैसाखसुदि दशमी प्रधान, उत्पन्न भयो केवल सुज्ञान।
पूर्वाहनीक वेरा सुटेक समवादिशरण जोजन सु एक।।१९।।

गणधर ग्यारा इन्द्रभूति आदि, समझें तहँ नर भले अनादि।
प्रतिगणधर सु चतुरदश सहस बौर, छत्तीस सहस अजया सुठौर।।२०।।

इक-लक्ष जहाँ श्रावक प्रवीन तिगुनी तहँ श्रावकनी सु लीन।
गिनती कर तेरह सै प्रमाण मुनिराज धनी वर औधज्ञान।।२१।।

गति सिद्ध जती तरि है सु तार मतिहीन सहस साढ़े सुधार।
वैक्रियकरिद्धि वारे समन्त, इक सै घट एक हजार सन्त।।२२।।

शत पाँचसु मनपर्यय सु ज्ञान, शत-सात कहे केवल सुज्ञान।
वादी सतचार सु वादिकत्त गुह्मक नामा तिनके सुजक्ष।।२३।।

जच्छन तसु सिद्धायनिसु नाम, जिनवर जी के हाजर सुठाम।
जिन नाथ-वंश त्रिजगतपति ईश, कार्तिक वदी दिन सु चतुर्दशीश।।२४।।

वरनै जिन गुन सुनकर जिनुक्त, पावापुर चढ़ पहुँचे सुमुक्त।
जिन गुण अनन्त सु समुद्र टेक, मति भाजन अल्प भरै कितेक।।२५।।

सोरठा

निश्चय गुन विध चार, दर्शन-ज्ञान-अनन्त-सुख।
बलवीरज सु अपार, सिद्ध भये गुन आठ गुण।।२६।।

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनचरणाग्रे जयमालार्घं।

गीतिका

विधि पूर्व जो जिन बिम्ब पूजै दरब अरु पुन भावसौं।
अति पुण्य की तिनकौं सुप्रापति होय दीरघ आयुसों।
जाके सुफल कर पुत्र-धन-धन्यादि देह निरोगता।
चक्रेश-खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सुहोहि निज सुख भोगता।।२७।।

पुष्पाञ्जलि।

(२६) अंग-पूजा

दोहा

लै करि परम उछाह सै, प्राशुक निरमल नीर।
जासों पूजों वृषभ जिन, आदि अन्त महावीर।।१।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल चन्दन गारि अति, परिमल गुण गम्भीर।
जासों पूजों वृषभ जिन, आदि अन्त महावीर।।२।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा।

परम अखण्डित ऊजरे, अक्षत लै समरवीर।
जासों पूजों वृषभ जिन, आदि अन्त महावीर।।३।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामिति स्वाहा

पहुप सुवासी तुरत के, फूले सरस सुधीर।
जासों पूजों वृषभ जिन, आदि अन्त महावीर।।४।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु कामवाणविध्वंशनाय पुष्पम् स्वाहा।

व्यंजन विधि प्रकार जे, करन क्षुधा दुखकीर।
जासों पूजों वृषभ जिन, आदि अन्त महावीर।।५।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यम् स्वाहा।

दीपक ज्योति सुहावनी, हरण महातम पीर।
जासों पूजों वृषभ जिन, आदि अन्त महावीर।।६।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु मोहान्धकारविनाशनाय दीपम् स्वाहा।

धूप सुगन्धी परस तसु, करत सुवास समीर।
जासों पुजों वृषभजिन, आदि अन्त महावीर।।७।।

ॐ ह्रीं वृषाभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु अष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामिति स्वाहा

फल फासू बहुभांति के, हरण हेत भवपीर।
जासों पूजों वृषभजिन, आदि अन्त महावीर।।८।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु मोक्षफलप्राप्तये फलम् निर्वपामीति स्वाहा

जल चन्दन आदिक सु धरि, बहुविध दरब गहीर।
जासों पूजों वृषभ जिन, आदि अन्त महावीर।।९।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु मोक्षफलप्राप्तये अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

हम निरख जिन प्रतिविम्ब पूजत त्रिविध कर गुण थापना।
तिनके न कारज काज निज कल्याण हेत सु आपना।।
जैसे किसान करै जु खेती नाहि नरपति कारनै।
अपनौ सु निज परिवार पालन कौ सु कारज सारनै।।१०।।

ॐ ह्रीं वृषभादिवीरान्तजिनचरणाग्रेषु पूर्णार्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

मण्डित गुण छयालीस, दोष अठारह कर रहित।
जै जिनवर चौवीस, पूजौ पुनि समझायकै।।११।।

(२७) अष्टप्रातिहार्य-पूजा

द्रुतविलम्बित छन्द

द्रुम अशोक जहाँ छवि देत है, लखत शोक व्यथा हर लेत है।
गुण सुमण्डित श्रीजिनदेव जू करहू लै जल आदि सु सेव जू।।१।।

ॐ ह्रीं अशोकवृक्षप्रातिहार्यगुणमंडित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

सुर सुफूलन की वरसा करैं, तर सुहेट सुपग तिसपै परैं।
गुण सुमण्डित श्रीजिनदेव जू, करहु लै जल आदि सु सेव जू।।२।।

ॐ ह्रीं पुष्पवृष्टिप्रातिहार्य गुणमण्डितश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

ध्वनि सु दिव्य जिनेश निरक्षरी, सप्तभंग विषै जिहि के परी।
गुण सुमण्डित श्रीजिनदेव जू, करहु लै जल आदि सु सेव जू।।३।।

ॐ ह्रीं दिव्यध्वनिप्रातिहार्यगुणमण्डितश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

चमर-चौसठ ले सुर ढारहीं, शिखर सों जलधार मनौ वही।
गुण सुमण्डित श्री जिनदेव जू, करहु लै जल आदि सु सेव जू।।४।।

ॐ ह्रीं चमरप्रातिहार्यगुणमण्डितश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

अति उमंग सु आसन सोहनी, सकल जीवन कौ मन मोहनी।
गुण सुमण्डित श्री जिनदेव जू, करहु लै जल आदि सु सेव जू।।५।।

ॐ ह्रीं सिंहासनप्रातिहार्यगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

वरण पंच विषै तसु पाइये तन सु जे जिन सर्व सु गाइये।
गुण सुमण्डित श्री जिनदेव जू, करहु लै जल आदि सु सेव जु।।६।।

ॐ ह्रीं भामण्डलप्रातिहार्यगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

बजत दुन्दुभि शब्द सुहावनै, सुनन कान विषै मन भावनै।
गुण सुमण्डित श्रीजिनदेव जू, करहु लै जल आदि सु सेव जू।।७।।

ॐ ह्रीं दुन्दुभिप्रातिहार्यगुणमण्डितश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

उष्णकाल मनौं सु दुपाहरी रवि समान सु छत्र प्रभाधरी।
गुण सुमण्डित श्रीजिनदेव जू, करहु लै जल आदि सु सेव जू।।८।।

ॐ ह्रीं छत्रत्रयप्रातिहार्यगुणमण्डितश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम्।

दोहा

चौवीसों जिनवर सहित, प्रातिहार्य विधि आठ।
सो वरनैं पूजा विषैं, देख जिनागम पाठ।।

ॐ ह्रीं अष्टप्रातिहार्यगुणमण्डितश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु पूर्णार्घ्यम्।

(२८) अनन्तचतुष्टय-पूजा

चौपही-छन्द

ज्ञानावरणी कर्म विनासे, ज्ञान अनन्त भयौ सब भासे।
जिनसम देव अवर नहिं दूजा, लै जलादि कीजे भवि पूजा।।१।।

ॐ ह्रीं अनन्तज्ञानगुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

केवल दृग आवरणी चूरे, दर्शन कर अनन्त परिपूरे।
जिनसम देव अवर नहिं दूजा, लै जलादि कीजे भवि पूजा।।२।।

ॐ ह्रीं अनन्तदर्शन गुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

मोहकरम तीजे जब भंजे, सुक अनन्त के मांहि सुरंगे।
जिनसम देव अवर नहिं दूजा, लै जलादि कीजे भवि पूजा।।३।।

ॐ ह्रीं अनन्तसुख गुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तराय अरिकर्म नसायौ, बल बीरज अनन्त जब आयौ।
जिनसम देव अवर नहि दूजा, लै जलादि कीजे भवि पूजा।।४।।

ॐ ह्रीं अनन्तवीर्य गुणमण्डित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

अरिल्ल

श्री जिनराज चतुष्टय के धनी,
तिनिकी महिमा जात सु तौ किहि पर भनी।
जथा शक्ति कीनी सुआप मनरंजना,
पढ़त सुनत सुख होय विघन दुख-भंजना।।५।।

ॐ ह्रीं अनन्तचतुष्टयगुणमण्डितश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु पूर्णार्घ्यम्।

(२९) अष्टादशदोषरहित-जिनपूजा

चौपही-छन्द

पेरत राग सबै जग काजै, इष्ट पदारथ पीर उपजावै।
जाके श्री सर्वज्ञ सुघाता, लै जलादि पूजों सु विधाता।।१।।

ॐ ह्रीं रागभावरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वा.।

दोष भाव सब जीवन घेरे, देख अनिष्ट पदारथ पेरे।
जाके श्रीसर्वज्ञ सुघाता, लै जलादि पूजौं सु विधाता।।२।।

ॐ ह्रीं द्वेषभावरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

सब जीवन यह भूखसतावै, हरण हेत भोजन सो चाहै।
जाके श्रीसर्वज्ञ सुघाता, लै जलादि पूजों सु विधाता।।३।।

ॐ ह्रीं क्षुधारोगरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

या जग मांहि तृषा अतिभारी, पावन नीर होहि सुखभारी।
जाके श्री सर्वज्ञ सुघाता, लै जलादि पूजों सु विधाता।।४।।

ॐ ह्रीं तृषारोगरहित श्रीवृषभाादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जन्म धरै सुचतुर्गति मांहीं, बारम्बार तिन्हें सुख नांहीं।
जाके श्रीसर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजों सु विधाता।।५।।
ॐ ह्रीं जन्मदोषरहिताय श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

मरण सदा जनमन प्रति लाग्यौ, गति-गति दुःख दवानल पाग्यौ।
जाके श्रीसर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजौं सु विधाता।।६।।
ॐ ह्रीं मरणदोषरहिताय श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जब अति जोर करै सु बुढ़ापौ, तन मन बचन शिथिल अति कांपौ।
जाके श्रीसर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजौं सु विधाता।।७।।
ॐ ह्रीं जरादोषरहिताय श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वापामीति स्वाहा।

जब-जब व्याधि सतावत कोई, जासु उदय दीरघ दुःख होई।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजौं सु विधाता।।८।।
ॐ ह्रीं सर्वरोगरहिताय श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

इष्ट वस्तु विनसै दुखदाई, शोक समै उपजत है आई।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजौं सु विधाता।।९।।
ॐ ह्रीं शोकरहिताय श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

भय विध सप्त महादुख दैनी, या जग माहि पिछानत जैनी।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजौं सु विधाता।।१०।।
ॐ ह्रीं भयदोषरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

विस्मय दोष सबै दुःख देई, जगत मांहि सु तजै नंहि कोई।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजौं सु विधाता।।११।।
ॐ ह्रीं विस्मयदोषरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति.।

निद्रा दोष उदै जिय सोवे, सुरत सम्हार जहाँ सब खोवे।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजों सु विधाता।।१२।।
ॐ ह्रीं निद्रादोषरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जगतमांहि जेते तनधारी, ब्यापत खेद तिन्हें अतिभारी।
जाके श्री सवर्ज्ञ सुधाता, ले जलादि पूजों सु विधाता।।१३।।
ॐ ह्रीं खेददोषरहित *श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।*

छानौं सब जग कौ कर लीना, सब श्रम कर संयुक्त पसीना।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, ले जलादि पूजौं सु विधाता।।१४।।
ॐ ह्रीं श्रमदोषरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

अष्ट प्रकार सु जे मद गाये, ते जग जीवन पास बताये।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, ले जलादि पूजों सु विधाता।।१५।।

ॐ ह्रीं मददोषरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

मोह उदय सब जगत भुलानौं, निज करि चूक परौ सु ठिकानौं।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजों सु विधाता।।१६।।

ॐ ह्रीं मोहदोषरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

जग में अरति उदय जब आवै, सो दुखसों कछू नहीं दिखावे।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, लै जलादि पूजों सु विधाता।।१७।।

ॐ ह्रीं अरतिदोषरहित श्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

व्यापति जब चिन्ता उर मांही, जब प्राणी सुखरूप सु नाहीं।
जाके श्री सर्वज्ञ सुधाता, ले जलादि पूजों सु विधाता।।१८।।

ॐ ह्रीं चिन्तादोषरहित श्रीवृषभादिवीरान्तरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

सवैया-इकतीसा

घातिया विनास भये इन्द्रिय-विकारहीन,
रहित मृजाद-बोध फैली विभौ जासकी।
भये थिर परिणाम आप विषैं आपहूके,
आकुलता सो तौ होत भई है विनाश की।
स्वपरप्रकासी सुख-आत्मविलासी,
ऐसी परम खुलासी ज्ञान केवलप्रकाश की।
अन्त बिन धीरज प्रकाश बलबीरज सु
ऐसे जिनराज कौं प्रणाम देवीदास की।।१९।।

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितश्रीवृषभादिवीरान्तचरणाग्रेषु अर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

गीतिका

विधिपूर्व जो जिनबिम्ब पूजत द्रव्य अरु पुन भावसों।
अतिपुण्य की प्रापत सुतिहिकौं होहि दीरघ आयुसों।।
जाके सुफल कर पुत्र धनधान्यादि देह निरोगता।
चक्रेश-खग-धरणेन्द्र-इन्द्र सु होहि निज सुख भोगता।।२०।।
पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

९. ग्रन्थकार-प्रशस्ति-खण्ड

दोहा

छन्द-भेद समझौ नहीं नहि सम्हारी पुनरुक्ति।
लगनि लगी जिन-भक्ति सों रोकें ते सुन सक्ति।।१।।

छयालिसठानैं की उकति अंक आर्गल देख।
भाषा की भाषा करी पद्धति छन्द विशेष।।२।।

कुण्डलिया

संवत् अष्टादस परै एक बीस को वास।
सावन सुदि परिभास रवि धरा उगी दिन जास।।
धरा उगी दिन जास ग्राम कौ नाम दिगौड़ो।
जैनी-जन वसवास औड़छौ सौ पुर ठौढो।।
सावन्तसिंह नरेस देस परजा सब थवंतु।
जह निरभै कर रची यह सुपूजा धरि सवंतु।।३।।

कुण्डलिया

गोलालारे जानियो वंश खरौआ होत।
सोनवयार सुबैंक तसु पुनि कासिल्ल सुगौत्र।।
पुनि कासिल्ल सुगौत्र सी कसिकहारा खेरौं।
देस भदावर मांहि जो सुन रचौ तिनि भेरौ।
कैलगमा के वसनहार सन्तोष सुभारे।
देवीदास सुपुत्र दिगौड़ा गोलालारे।।४।।

कवित्त

सेली के सहकारी भाई,।
छिपुरी छगन ललितपुर लल्ले कारी।।
कमल वसत मन भाये।
टिहरी में मरजाद तथा पुनि,
गंगाराम वसत तिन गाये।।
देवीदास गुपाल दिगौड़े उदै कवित्त कला के आये।
भाषाकरि जिनेश्वर पूजा छहौं वीर की आज्ञा पाये।।५।।

दोहा

सेवत श्री निरग्रंथ गुरु अरु अरहन्त सुदेव।
पठत सुनत सिद्धन्त श्रुत सदाकाल स्वयमेव।।६।।
तुक अक्षर घटि बढ़ि सबद अरु अनर्थ जो होई।
अल्पमति कवि पर क्षमा करि धरियो बुध सोई।।७।।[1]

परिशिष्ट खण्ड

ध्यातव्य

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुछ पद्याशों को अगले दो पृष्ठों में परिशिष्ट में सुरक्षित कर दिया गया है। इसका मूल कारण यह है कि वे कवि देवीदास द्वारा लिखित प्रतीत नहीं होते क्योंकि पदान्त में देवीदास ने अपना नाम अंकित नहीं किया है। उनकी भाषा एवं शैली का भी कवि की रचनाओं से मेल नहीं बैठता। प्रथम पद किसी जादौराइ (यदुराय) द्वारा लिखित है जैसा कि उस पद की अन्तिम पंक्ति से विदित होता है।

उक्त पदों को प्रकाशित करना इसलिए आवश्यक है कि वे अद्यावधि अज्ञात रहे हैं और आगे चलकर भी अज्ञातावस्था में ही रहकर कहीं नष्ट-भ्रष्ट न हो जायें इसी कारण उन्हें देवीदास-साहित्य के साथ ग्रथित होने के कारण यहाँ परिशिष्ट में प्रस्तुत किया जा रहा है

स्तुति-पद

१. जूववरा[2]-पद

प्रनमौ जिनदेव सदा चरण कमल तैरे।
रिषभ अजित संभव अभिनन्दन केरे।।
सुमत पदम श्री सुपार्स चंदाप्रभ तेरे। प्रनमौं.।।१।।

---

१. इति श्रीवर्त्तमान जिनपूजाभाषा देवीदास कृत सम्पूर्ण समाप्त संवत् १८२२ वर्षे आस्विन सुदी ३ भौमवासरे शुभं भवतु। लिखितं स्वहस्तां स्वयं पठनार्थं। पढ़त सुनत मंगल होइ। लिखी गांव दुगौडे। अथ प्रभावना अंगकारण निरोभिलास।

देवीदास-विलास में इसका शीर्षक "जूववरा" दिया गया है। जिसका अर्थ स्पष्ट नहीं है। बहुत सम्भव है कि उससे कवि का तात्पर्य तीर्थकरों के "युवराज-पद" से हो? यह पद्य किसी जादौराइ (यदुराज) नामक कवि का है, जिसका संग्रह उक्त रचना में कर लिया गया प्रतीत होता है।

पुष्पदंत सीतल श्रीअंस गुन घनेरे।
वांसपूज विमल नंत धर्म जग ऊजेरे।। प्रनमौ.।।२।।

सांत कुंथ अरहु मल्ल मुनसोब्रत केरे।
नमि निम पारस्यनाथ वीर धीर हेरे।। प्रनमौ.।।३।।

लेत नाम अष्ट जाम छूटत बहुतेरे।।
जनम पाय जादौराइ चरनन के चेरे।।४।। प्रनमौ.।।

२.पदि

भाई तुम क्या हौ बड़े-बड़े तन धारी।
काय छोड़ दुरगति कौं पचे।
तौं किस पर करों गुमान ।।टेक।। भाई तुम.।।१।।

एक कोस पुन दो तीन कोस की काय धरी तह थित भारी।
धनु पाँचसौतंग में हौ काल भकौ सब मद धारा री ।।भाईतुम.।।२।।

कोटि भट से जोधा लक भट सहस भट सत भट मारी।
जम पर सब ही दीन भए हौ जग के जोधा सब हारी।।भाई तुम.।।३।।

३. पद[1]

देखे जिनराज आज राज रिद्धि पाई।
यहु व्रष्ट महाइष्ट देव दुंदवी समस्त।
सो न करै सोक सो अशोक तर बड़ाई। देखे.।।१।।

सिंधासन झिलमिलात तीन छत्र सिर सुहात।
भ्रमर फरहरात मनौ भक्ति अत बड़ाई। देखे.।।२।।

द्यानत बहु मंडलामइ दीसै परजाय।
सातवानी तिहुकाल खिरै सुरनर सुखदाइ[2]। देखे.।।३।।

---

१. यह पद कवि द्यानतरायकृत है।

२. द्यानत पद संग्रह (प्रकाशक, साहित्य शोध विभाग, महावीर जी, सन् १९६५ और द्यानत पद संग्रह (जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता) में इस पद की खोज की गई किन्तु वह उनमें अनुपलब्ध है। प्रतीत होता है कि देवीदास-विलास के लिपिकार ने द्यानत कवि के इस पद की लोकप्रियता देखकर उसे अपनी प्रति में सुरक्षित कर लिया होगा।

४. एकेंद्री सैनी-असैनी[३]

पंचेंद्री परजंतउ कष्ट विषै।
फरस चारि सै पाँच जीभ चौसठ[४] सौ नासा।
द्रग जोजन उनतीस सतक चौवन क्रम-भाषा।।१।।

दुगुन असैनी लौ श्रवन वसु सहस धनुष फुनि सैनी।
सपरस विषैं कहौ नौ जोजन श्री मुनि।।२।।

नौ रसन घ्रान नौ चच्छु प्रति सैंतालीस हजार गनि।
दौ सै तिरसठ[५] वारह श्रवन विषै छेत्र पटवान भनि।।३।।

---

३. इस पद का लेखक अज्ञात है।
४. मूल प्रति -सौसठ
५. मूल प्रति. -तिसठ

११. शब्दानुक्रमणिका

अऊत— पुत्रहीना, निःसन्तान (बुद्धि ४८/३)
अंक— अध्याय (प्रशस्ति.)
अंकुस— हाथी को वश में करने वाला अस्त्र (बुद्धि. ४६।२)
अंकूरि— अंकुर (बुद्धि. १।१)
अंतर्दीप— समुद्र के बीच में उभरा हुआ द्वीप (चक्र. ६।१)
अंतराई— अन्तराय, विघ्न (वीत. ९।२)
अंतराय— अन्तराय नामका कर्म (शान्ति. ३१)
अंतहकरन— अन्त:करण (राग. १५/७)
अंमर— अम्बर; वस्त्र (बुद्धि ३३।३)
अंस— भाग; हिस्सा; अपनत्व (बुद्धि. ३९।३)
अकलि— अक्ल; बुद्धि (दरसन १३।९)
अकृत—निकम्मा; कर्महीन (पंच. २१।३)
अखै— अक्षय (पंच. ४।२)
अखैधन— अक्षय-धन (पंच. १९।४)
अगरो— गर्राना; अभिमान, श्रेष्ठ (राग. ८।४)
अगास— आकाश (पुकार. १०/२)
अगिनि— अग्नि (जीवचतु. २७।२)
अगोटो— बन्दी रखना; रोकना (जोग. १३।३)
अच्युत—अच्युत नामका स्वर्ग (शीतल. ४३)
अच्छित— अक्षत, चावल (नेमि. १५)
अचिर्ज— आश्चर्य (वीत. ३।१)
अचीरा— अखण्ड (राग. २३।६)
अछिर—अस्थिर (पंच. २१।२)
अज— बकरा (कुंथ. १)
अजया— अर्जिका (शीतल. ५०)
अजानी—अज्ञानी (वीत. २३।२)
अजित— अजित नामका यक्ष (चंद्र. ७४)
अजितनाथ— अजितनाथ तीर्थंकर (लछना. १, अजित.)
अजिता—जो जीता न गया हो (जोग. २।४)
अटंब— मडम्ब (चक्र. २।२)
अटा— अटारी; छत (बुद्धि. ४९।३)
अठारा— अठारह (चक्र. ८।२)
अडुग— अडिग (बुद्धि. १०।६)
अडोल— जो हिले नहीं, अडिग (पंच. १५।१)
अणि— लोहे की धुरी; सीमा (जिनवन्दना. .५।८)
अणु— परमाणु (जिनवन्दना. ३।४)
अतिन्दिय—इन्द्रियातीत (पंच. १०।३)
अतिहि— अत्यधिक (जिनवन्दना १७।६)
अतिहिय—अत्यधिक (जिनवन्दना. १६।१)
अतिसै— अतिशय (जिनवन्दना. ११।२)
अतीत— व्यतीत; निर्लेप, विरक्त (वीत. १६।३)
अतुल— अतुलनीय, असीम (पद. २३।९)
अथंग—बहुत अधिक (जिनवन्दना. १।३)
अथवत— हमेशा की तरह (राग. ७।२)
अथोक— थोड़ा (बुद्धि. ५४।१)
अदाद— बुराई; अनीति (बुद्धि. ५०।१)
अदोखें— अदोष; निर्दोष (अजित. १३)
अद्यौत— अद्वैत (राग. २०।१०)
अधमाई— अधमता; नीचता (पुकार. १७।२)

अर्धचक्री— तीन खंड का स्वामी (चक्र. २६।२)
अधिराजा— ५०० राजाओं का स्वामी (चक्र. २४।१)
अधु— अधुना; वर्त्तमान (विवेक. १४।२)
अध्यवसा— पुरुषार्थ, लक्ष्य को प्राप्त करने की उद्यमशीलता (द्वादश. ३९।१)
अनंदना— आनन्दित होना (वीत. ९।२)
अनछान्यौ— अनछना, (मारीच. २१।५)
अनभौ— अनुभव (पद. ६।७)
अनमोद— आनन्द रहित (मारीच. ८।३)
अनरस— रसरहित (विवेक. २१।२)
अनाई— अनादि (पुकार. २।१)
अनागत— भविष्य (वीत. २१।२)
अनारज—अश्रेष्ठ; जघन्य (पद. ७।५)
अनाहों— स्नान, नहाना (शीतल. ३)
अनुभूति— मूल प्रश्न से प्राप्त ज्ञान (पद. १०।४)
अनुराधा— अनुराधा नामका नक्षत्र (चन्द्र. ५८)
अनुसरै— अनुसरण करना (वीत. २०।४)
अनौपम— अनुपम (राग. २३।५)
अप्पा-आत्मा (परमा. १)
अपरत—असन्तोष (अभि. ९)
अपराजित— अपराजित (राजा का नाम) (नमि. २९)
अपराजित— अपराजित (विमान) (अरह. ४७)
अपराजिता— अपराजिता नामकी यक्षिणी (मुनि. ५०)
अपराहनीक— दोपहर सम्बन्धी (अभि. जयमाल. १५)
अपवरग— अपवर्ग; मोक्ष (बुद्धि. २०।६)
अपीत— नाश करना (बुद्धि. ९।२)
अपूजक— पूजा न करने वाला (तीनमूढ़ १०।१०)
अबद— हृदयंगम करना (पद. ९।९)
अबेरा— देर; विलम्ब (सप्त. १।३)
अबै— अभी (राग. ६।२)
अभ— अब (पद. २५।३)
अभिलाष—अभिलाषा (नमि. ५२)
अभै— अभय (पंच. ८।३)
अभ्रन— आभरण, आभूषण (पद. २१।७)
अमना— मन रहित (जीवचतु. २४।१)
अमलवेत— अमलवैत नामका खट्टा रसदार फल (गागर नीबू, जो औषधि के काम आता है (शीतल. २९)
अमा— अमावश्या (अजित. ४९)
अमोल— अमूल्य (दसधा. ३।२)
अमोलक—अनमोल (शीतल. २४)
अमृतरश— अमृतरस (परमा. ५।१)
अरक— अर्क; सूर्य (बुद्धि. ४३।३)
अरचन—अर्चना (अनन्त. २२)
अरजी— विनती; प्रार्थना (पुकार. २४।३)
अरथ— अर्थ; कारण (धर्म. ४।२)
अरलि— अरलि नामका वृक्ष (अभि. ५२)
अराध— आराध्य (परमा. १५।२)
अरिष्टपुरी— अरिष्टपुरी (नगर) (शीतल. ५०)
अरूझे— उलझना (बुद्धि. १७।२)
अरैल— अड़ना (बुद्धि. ४९।२)
अर्ज—प्रार्थना करना (पुकार. ४।२)
अर्जिका— आर्यिका (दरसन. १८।३)
अर्जी— प्रार्थना (पुकार. ३।२)
अल्हानी— निश्चित; बचपना (पद. १।४)
अलख— अदृश्य, अप्रत्यक्ष (राग. २३।६)

अलप—थौड़ा (परमा. ३०।२)
अली— सखी; भौंरा (पंचवरन. २।४)
अलीक—झूठा (वीत. ३।२)
अलोकाकास— अलोकाकाश(वीत. १६।४)
अव्यय— शाश्वत (पंच. १२।५)
अव्वय— अविनश्वर; अखण्डित (दरसन. ३।३)
अवगाढ़— डूबा हुआ (दसधा. २।५)
अवधरत-- अवधारण; धारण करना (पंच. ११।५)
अवधार— धारण करना (स्वजोग. ३।१)
अवय— पूर्ण रूप से (पंच. ५।५)
अवर— अन्य; दूसरा (शीलांग ७।५)
अवर—और (नमि. ५)
अवलाध— अपराध (जिनांत. २४।२)
अवांइ— अटपट शब्द, निरर्थक बातें (तीन मूढ़. ८।२)
अविचल— अचल; स्थिर (पंच. २५।५)
अवीचार— अविचार (तीनमूढ. २३।२)
अवीध— अखण्ड (कुंथ. ४४)
अश्वसेन— अश्वसेन (राजा, पार्श्वनाथ के पिता) (पार्श्व. २९)
अश्विन— आश्विन (नक्षत्र) (नमि. ३२)
असर्पी—स्वर्ण मुद्रा (सप्त. ५।१)
असलोक— श्लोक (परमा. १।३०)
असोक— अशोक वृक्ष (मल्लि. ४६)
अस्तुति— स्तुति (परमा. २८।१)
अस्त्री— स्त्री (जीवचतु. २५।१)
अस्तिकाइ—अस्तिकाय (वीत. २१।२)
अस— अस (यक्ष) (शान्ति. ८०)
असन— भोजन (बुद्धि. ४३।१)
असपरसो-— बिना छुआ हुआ; पवित्र (शीतल. २०)
असर्फी—अशरफी, मध्यकालीन सोने का सिक्का (सप्त. ५।१)
असरारि—निरन्तर; लगातार (देव. १७)
असाढ़— आषाढ़ (मास) (आदि. ४४)
असि—तलवार (चक्र. १८।१)
असोक—अशोक वृक्ष (पंचवरन. ४।३)
अहलाद—आह्लाद; (दरसन. १।५)
अहि—सर्प (बुद्धि. ४०।१)
अहोर—आभा; प्रभा (पद. १८।७)
आउ— आयु; जीवन (पंच. २५।५)
आक— अर्क वृक्ष (धर्म. ८।२)
आखा— अक्षय; अच्छा (राग. ४।४)
आखेटी— शिकारी (राग. १०।६)
आचरज— आचार्य (पंच. १।३)
आचरौ— आचरण करना (धर्म. २२।२)
आजौध्या— अयोध्यानगर (सुमति. जयमाल. ३)
आदरौ— आदर (धर्मनाथ. ५।९)
आनत— आनत (स्वर्ग) (अजित. ४७)
आनि— प्रतिष्ठा (राग. ७।७)
आभ्यितर—आभ्यन्तर (पंच. १८।५)
आयु—आयु (नामका कर्म) (शान्ति. १९)
आयोध— अयोध्या नगर (आदि. जयमाल.५)
आरज— श्रेष्ठ; उत्तम (पंच. १३।४)
आरजखंड— आर्यखण्ड (चक्र. १०।९)
आरण— आरण (स्वर्ग) (पुष्प. ४६)
आराधि—आराध्य, पूजित (पंच. १८।२)
आर्गल—बन्धन; प्रतिबन्ध (प्र. प्र.)
आलय—गृह; भवन (अजित. १८)
आव— आयु (मारीच. १४।७)
आवध— आयुध (चक्र. ३३)
आश्रव— आश्रव तत्व (दसधा. ९।१)
आसी— आसीविष (सर्पविष) (बुद्धि. ३९।६)

इंदनील— इन्द्रनील (कमल) (वीत. ७।२)
इक— एक (वीत. ४।३)
इकठे— इकट्ठे; (बुद्धि. ५४।२)
इच्छवाकु— इक्ष्वाकु (वंश) (आदि. ६७)
इतरनिगोद— इतरनिगोद (पुकार. ७।२)
इंद्रदत्त— इन्द्रदत्त (राजा) (अभि. ५०)
इमरता— इमरता नाम का नीबू (श्रेयांस. २९)
इलाज— उपचार (राग. ९।८)
ईठौ— इष्ट; अच्छा (पद. २०।४)
उऔ— उदय (बुद्धि. ४०।२)
उकत—उक्ति (राग. १०।५)
उखटी— उखड़ी हुई (राग. ९।१०)
उखलेद— खोलकर; उखाड़कर; (बुद्धि १५।१)
उच्चरन— उच्चारण (पंच. १९।३)
उचाट— विरक्त, उदास, अनमना (दरसन. १३।२)
उछीन्हौ— उच्छिन्न करना; नष्ट करना (राग. २।६)
उडेलनी— उड़ेलने वाली (बुद्धि. ४८।२)
उत— उधर; उस ओर (तीनमूढ़. १७।२)
उतंग—ऊँचा; श्रेष्ठ (पंचवरन. ३।१)
उतकिष्ट— उत्कृष्ट, श्रेष्ठ; उत्तम (दरसन. ३३।२)
उतपण्य—उत्पन्न (वीत. ५।३)
उतपति— उत्पत्ति; सृष्टि (पद. १४।७)
उतसाह— उत्साह (पंच. ४।८)
उदगर— हृदय की बात व्यक्ति करना (पद. २५।४)
उदगरन— हृदय की बात व्यक्त करना (दरसन. १७।१)
उदधि— समुद्र (पंच. ५।१)
उदास— खिन्न; दुखी (स्वजोग. १०।१)
उदीनैं— दीनता रहित; प्रमुदित होकर (राग. १८।६)
उदीरना— अपक्वकर्मपाचन की प्रक्रिया (जीवचतु. २९।१)
उदै— उदय (पुकार. ८।३)
उदौ— उदय (संभव. २७)
उद्यमशीलता— द्वादश ३९।१
उन्हार— समता; बराबरी, तुलना, उपमा (पुकार. १२।१)
उनहार— समानता (पुष्प. १०)
उपराज— उपज; उत्पादन (पुकार. २५।२)
उपसमुद्र— पार्श्ववर्त्ती खण्डित समुद्र (चक्रि. ६।१)
उपादि—स्वीकार करने योग्य (पंच. ८।४)
उपादेय—ग्रहण करने योग्य (राग. ४।६)
उभेदना— बार-बार नष्ट करना (वीत. २।२)
उभेद—उम्मीद; आशा (अनन्त. १३)
उरग— सर्प (पार्श्व. १)
उरह— हृदय में (पंच. २।३)
उलखै— लक्ष्य-पूर्वक देखना (हितो. १०।२)
उलीच— उलीचना; उछालना (पद. ३।४)
उवझाई— उपाध्याय (पंच. १।३)
उवीठौ— अरुचिकर, मन तृप्त हो जाना (पद. २०।९)
उसीला—बिस्तर का ऊपरी भाग; तकिया (राग. ५।३)
ऊँकार— ओंकार मन्त्र (मारीच. ५।७)
ऊगौ— उदित हुआ (राग. ७।२)
ऊजरपुर—उज्जवलपुर (नगर) (राग. १७।१०)
ऊजरै— उज्ज्वल (जूववरा.)

ऊप— औप, औज (पुकार. ९।१)
एरादेवी— एरादेवी (रानी) (शान्ति. ४७)
औन— गति, चाल (बुद्धि. ३।३)
औखै— धारण करना (पद. २१।३)
औतरे— अवतरित होना (पंचवरन. ५।४)
औसर— अवसर (मारीच. १२।८)
कंद— गुफा; कन्दरा (बुद्धि. २।१)
कचियाइ— हिचकिचाना (बुद्धि. ४।३)
कटा— काटने वाली (बुद्धि. ४९।३)
कथना—कहना (दरसन. ४।१)
कनक—धतूरा (मारीच. १४।७)
कनप— अस्त्र विशेष (चक्र. ४३।१)
कनेवा— दास (पद. २।९)
कपाट— दरवाजा (राग. २२।२)
कपि— बन्दर (बुद्धि. ४६।१)
कपित्थ— कैथाफल (मुनि. २०)
कपोत—कपोत नामकी लेश्या (राग. ११।५)
कम्मोदनी— कुमुदनी (धर्म. २५।१)
कमच— कवच (चक्र. ३८।२)
कमलजुग— कमल-युगल (पंच. १६।६)
कमलवन— कमल-समूह (जिनवन्दना. १०।२)
कमला— लक्ष्मी (धर्म. ३।२)
कमलापति— कवि देवीदास के छोटे भाई का नाम (बुद्धि. ५५।१)
करतूति— करतूत (दरसन. ८।४)
करमद्रुम— कर्म रूपी वृक्ष (आदि. ४०)
करीलनि— करील वृक्ष से (बुद्धि. ४०।३)
कर्मकलन्दर— कर्म रूपी मदारी (राग. ७।८)
कर्वट— वह मुख्य नगर, जिसके अधिकार में २०० से ४०० गाँव हों (चक्र. ३।२)
कलधौत— सुन्दर, सोना; चाँदी (सुमति. १)
कलपव्रछ—कल्पवृक्ष (धर्म. ८।२)
कलमल— कलियुग के पाप (पद. ३।५)
कलित—सुन्दर (पंच. २।१)
कलेस—क्लेश; दुख (पुकार. ३।३)
कलोल— कल्लोल; आनन्द; क्रीड़ा (पंच. २।४)
कवडी— कपटी (पद. १३।८)
कवन— कौन (जोग. ४।२)
कवित्त— कवित्त नामका छंद (पुकार. २१)
कसत— कसना, शुद्धता की जाँच करना (वीत. ४।१)
कसाइल— कसैला (पद. १०।८)
कसौटी— कसौटी नामका पत्थर (वीत. ४।१)
कहहलौं— कहाँ तक (बुद्धि. ५०।२)
काई— काया (पुकार. ८।१)
कांपिल्य—काम्पिल्य (नगरी) (विमल. ३६)
काकन्दी—काकन्दी (नगरी) (पुष्प. ४४)
काकिनी—काकिनी नामका रत्न (चक्र. २७।१)
काठ— लकड़ी (वीत. २४।१)
कानखजूरा— कनखजूरा (कीड़ा) (जीव चतु. १७।१)
कामानल— कामरूपी अग्नि (बुद्धि. ५२।६)
काल—समय; मृत्यु (चक्र. १७।२)
कालकूट—विष (बुद्धि. ४४।३)
कालसर्पिणी—अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी काल (जिनांत. २०।२)
कालीयक्षिणी— काली नामकी यक्षिणी (पुष्प. ६६)
किंचक—थोड़ा सा (सप्त. ३।२)
कितेक—कितने ही (महावीर. ६८)
किन्नर— किन्नर (यक्ष) (धर्मनाथ. ६५)

किन—क्यों (राग. ६।२)
कीच—कीचड़ (पद. ३।५)
कीचकाद— कीचड़; गन्दगी (बुद्धि. ५०।३)
कीधु— दृढ़ करना; स्थिर करना (पद. १२।१३)
कीस— किस; किसे (जन्म. १९)
कुंदकुंद— आचार्य कुन्दकुन्द (दरसन. ३७।१)
कुंवरावर— कुमारावस्था (आदि. ४९)
कुक्ष—कोख (धर्मनाथ. ८४)
कुगैल— बुरा मार्ग; (बुद्धि. ५०।१)
कुछि— कोख (चक्र. ७।१)
कुटुम— कुटुम्ब (पद. ११।५)
कुठार—कुल्हाड़ी (बुद्धि २३।३)
कुधातु — बुरी धातु (पंच. १६।१)
कुधी— दुर्बुद्धि (बुद्धि. ३०।४; सप्त. ५।२)
कुण्डलपुर— कुण्डलपुर (नगर) (महावीर. ४०)
कुबार— विलम्ब (पुकार. १३।३)
कुबेर—कुबेर (यक्ष) (अरह. ६६)
कुभिंग—आर्ष परम्परा के विपरीत (जिनांत. २६।१)
कुभेवै—कुभेद (तीनमूढ़. १७।१)
कुम्भराजा—कुम्भ नामका राजा (मल्लि. ३७)
कुमार—कुमार (यक्ष) (श्रेयांस. ६५)
कुलाचल— पर्वतमाला (श्रेयांस. ६८)
कुलाद— संस्कारविहीन सन्तान (बुद्धि. ५०।३)
कुलिंग— विरुद्ध आचरण वाला (जिनांत. २६।१)
कुवार— कुवार (यक्ष) (वासु. ६७)
कुस्मानुनी— कुष्माण्डनी (यक्षिणी)) (नेमि. ८१)
कुसंभ— कुसुम्भी रंग (श्रेयांस. १६)
कूकर—कुत्ता (मारीच. १६।५)
कूट—कूटना (पुष्प. २८)
कूटत— कूटते हुए (बुद्धि. ३८।३)
कूलसेन—कूलसेन (राजा) (महावीर. ५२)
कूह—अंधेरा (वीत. २१।६)
कृतकारित—करना और करवाना (मारीच. ८।३)
कृतवर्मा—कृतवर्मा (राजा) (विमल. ३६)
केत—घर, भवन (राग. १६।८)
केतकी— केतकी (पुष्प) (आदि. १५)
केलि— क्रीड़ा (पंच. ७।३)
केवरा—केवड़ा (पुष्प) (मारीच. १४।५)
केवली—केवलज्ञानी (वीत. २५।३)
केसरि—केशर (पंचवरन. ४।३)
केसरिया— केशर के रंग में रंगा हुआ चावल (श्रेयांस ९)
केहरि— सिंह (बुद्धि २४।१)
कैंधों— कौन; किसे (पद. ८।३)
कोथरी— कोठरी (बुद्धि. १।१)
कोर— किनारा (पद. ८।३)
कोविद— विद्वान् (चक्र. ३०।१)
कौडी— कौड़ी (सप्त. ५।१)
क्रत— किया (बुद्धि ४३।२)
क्रपा— कृपा (पंच. ६।२)
खंडुखदुपति— छहखंड का स्वामी (चक्रवर्ती) (मारीच. २।२)
खंध— स्कन्ध (दरसन. १०।१)
खगपति—गरुड़ (पदि. ९)
खटकीरा— खटमल (जीवचतु. १७।२)
खटा— झगड़ा, द्वेष (बुद्धि. ४८।२)

खर— गधा (मारीच. १६।३)
खर्‌यो— खरा; शुद्ध (पद. २४।७)
खरी— शुद्ध (परमा. २४२)
खरु— गधा (बुद्धि ४६।२)
खरौ— खरा; उत्तम (बुद्धि. ४।३)
खांड— चीनी (श्रेयांस. १८)
खासी— प्रमुख (अजित. ७)
खिमंच— खींचना (राग. ११।७)
खीस— गुस्सा (विवेक. २१।२)
खुरमा— खुरमा नामका बुन्देली व्यञ्जन (श्रेयांस. १८)
खुलासी— स्पष्ट (अष्टा. ४२)
खुशवोह— खुशबू (कुंथ. ३८)
खूजा— खाजा; मठरी (व्यञ्जन) (श्रेयांस. १६)
खेंच—खींचना (सुपार्श्व. ६७)
खेट— छोटा नगर (चक्र. ३।१)
खेट— अस्त्र-विशेष (चक्र. ४३।२)
खेवी— खेना; पार उतरना (जीवचतु. ३०।१)
खेह—धूल (बुद्धि. ११)
खोजै— खोजना (परमा. २५।१)
खोपरा— नारियल (सुमति. १९)
गंग— गंगा नदी (जोग. १०।१)
गंगह— गंगाराम (कवि का भाई) (बुद्धि. ५५।१)
गंता— जाने वाला (शीलांग. ५।१)
गंभीरावृत्त—गहरी रेखाएँ (चक्र. ४५।१)
ग्यान— ज्ञान (वीत. २१।१)
गज— हाथी (चक्र. १६।१)
गजकुंभ— विशाल गण्डस्थल वाला हाथी (पंचवरन. २।४)
गजत— गर्जना; भटकना (बुद्धि. ५४।२)
गजदंत— हाथी का दाँत (धर्म. १०।२)
गढ़ि— गढ़ना; बनाना (पद. २।८)
गद— वाणी (परमा. १३।१)
गद—गदा (पंच. ३।४)
गदूल— गदूल नामका फूल (पार्श्व. ११)
गन्धोदक— तीर्थंकर के अभिषेक का जल (देव. १५)
गनधर—गणधर (पंच. २१।५)
गनिका—वेश्या (राग. १०।६)
गनीजे—गिनना (सुपार्श्व. ५७)
गम— जाना (वीत. १६।४)
गरास— ग्रास (संभव. १२)
गरिष्ट— उत्तम; श्रेष्ठ (पंच. १७।२०; बुद्धि. ४४।१)
गरिहै— गलना (पद. १५।२)
गरीठो—गरिष्ट, श्रेष्ठ (पद. २०।२)
गरीबनवाज— गरीबों पर दया करने वाले (पुकार. १०।१)
गरीस— महान् (चक्र. ४५।१)
गरुड़— गरुड़ नामका यक्ष (कुंथ. ८८)
गरै— गला (राग. ८।२)
गर्भ— गर्भ (पुकार. १४।१)
गर्भु— गर्व (मारीच. ६।८)
गलौ— गलना (मल्लि. ६)
गवन्न— गमन (चक्र. ३८।२)
गसावैं— ग्रसित करना (पद. ५।७)
गहल— गली (पुकार. २४।४)
गहीर— गम्भीर (बुद्धि. ८।१)
गान्धारी—गान्धारी नामकी यक्षिणी (विमल. ६९)
गाभु— गर्व; गौरव (द्वादश. २१।२)
गारी— गाली; अपशब्द (राग. १३।४)
गारौ— मिलाना; निचोड़ना (मुनि. ८)

गाँव— गाँव (चक्र. १।२)
गिरवान—झबले या कमीज की कालर (पंचवरन. १।५)
गिल— गलना; मिलना (वीत. १७।३)
गिला—शिकायत (पद. ५।५)
गिलै— निगलना (सुमति. २८)
गुपाल— गोपाल (कवि का भाई) (बुद्धि. ५५।१)
गुमाओ— गुमा देना, भुला देना (जिनवन्दना. १४।८)
गुल्म— गुल्म (नगरी) (पार्श्व. ३६)
गुह्यक— गुह्यक नामका यक्ष (महावीर. ६३)
गूझै— गूंथना; मिलाना (दरसन. २०।४)
गूते— डूबे हुए; निमग्न (पद. १२।७)
गृह— ग्रह (धर्म. १३।२)
गैन— गमन; स्थानान्तरण (बुद्धि. ४७।३)
गैर— दूसरा (पद. १।१२)
गैरी— अत्यन्त सुरभित; गरिमामय (शान्ति. ३८)
गैल— गली (बुद्धि. ४१।३)
गैहे— पकडना (बुद्धि. ४१।३)
गोत्त— गोत्र (दरसन. ३४।२)
गोपत— छुपाना (महावीर. २१)
गोभा— लहर (जिनवन्दना. २१।३)
गोमुख— गोमुख (यक्ष) (आदि. ६२)
गोमेदक— गोमेदक (यक्ष) (नमि. ४९)
गोहत— गोहना; पिरोना (बुद्धि. २९।४)
गौंच— एक प्रकार का जलचर जीव (जीवचतु. १५।२)
गौज— मैल; अज्ञान (बुद्धि. २९।३)
गौतम— गौतम गणधर (दरसन. २३।२)
गौपै—छिपाना (धर्म. १८।२)

गौरा—संगमरमर पत्थर (बुद्धि. ३६।५)
ग्रसि— पकड़ लेना (तीनमूढ़ ३४।२)
ग्रामपती— गाँव का मुखिया (पुकार. ४।१)
ग्रेह— गृह; घर (पंच. २५।४)
ग्रैवेयक— ग्रैवेयक स्वर्ग (सुपार्श्व. ४७)
घट— घड़ा (वीत. ८।४)
घटयहु— घटित होना (दरसन. १९।६)
घटा—उमड़े हुए मेघ (वीत. ८।४)
घटिका— घड़ी (बुद्धि. १९।४)
घन— मेघ (वीत. ६।२)
घालि— फेंकी (बुद्धि. ४५।१)
घीउ— घी (परमा. २३।१)
घुटान— घोंटना (बुद्धि. ४९।१)
घूले— घूरा (पद. १३।२)
घेउ— घी (पद. १६।४)
घोकौ— रटना (तीनमूढ़. २८।२)
चउथो— चौथा (चार) (पद्म. ६५)
चंडवेग— चण्डवेग नामका दण्ड (चक्र. २५।२)
चंडार— चण्डाल (पंच. २३।३)
चंडिनि-मंडिनि— चण्डिनी-मण्डिनी नामकी देवियाँ (तीनमूढ़. ८।१)
चंदपुरी— चन्द्रपुरी नगरी (चन्द्र. ५४)
चंपापुरि— चम्पापुरी नगरी (वासु. ४५)
चंपौ— चम्पा-फूल (श्रेयांस. १६)
चकवा— चकवा पक्षी (अभि. २)
चक्र— चक्ररत्न (चक्र. २५।१)
चक्री— चक्रवर्ती (चक्र. ४२।२)
चक्रेश्वरी— चक्रेश्वरी देवी (आदि. ६१)
चखे— चखना (पंच. १४।३)
चग्यौ— आनन्द से पूर्ण (वीत. १९।४)
चछु— चक्षु (वीत. १७।४)
चतुराइन— चतुराई पूर्ण (जोग. २२)

चतेवर— चंचल, चतुर (शीलांग. ५)
चटा— चाँटने वाला (बुद्धि. ४९।२)
चतुरानन— ब्रह्मा (केवल. ११)
चर्मरत्न— चर्मरत्न (चक्र. २६।१)
चाखा— चखा (राग. ४।१)
चातुर— चतुर (पद. १०।३)
चात्रक— चातक पक्षी (बुद्धि. ४४।२)
चामी— चमड़ी (बुद्धि. ३८।२)
चिताभे— चिन्ताओं में (पंचवरन. ५।१)
चिकती— मूर्ति; चौकोर टुकड़ा (बुद्धि. ३६।३)
चित्रा— चित्रा नक्षत्र (पद्म. ४९)
चिदानंद— आनन्दमय ब्रह्म (जोग. १४।३)
चिद्रूप— चैतन्य स्वरूप (दसधा. ८।१)
चित्र— चिण्ह (परमा. ७।२)
चीठौ— चाहा हुआ: पहचान लेना (पद. २१।८)
चीन— चिन्ह (कुंथ. १६)
चुकी— समाप्त (जिनवन्दना. २।२)
चुगल— चुगली (पंच. २३।३)
चुत— च्युत (पद. ४।७)
चुनि— चुनना (पंच. १९।४)
चूड़ामणि— चूड़ामणि रत्न (चक्र. २६।२)
चूलौ— चूल्हा (राग. ७।६)
चेरे— दास (पद. २९।१०)
चैत— चैत्रमास (पार्श्व. ३७)
चैतन्य— चेतन आत्मा (पंच. ६।४)
चोखैं— खरे; अच्छे (पद. २१।४)
चौंची— आखिरी छोर, बनावटीपन (जोग. २४।१)
चौज— आश्चर्य (वीत. १९।३)
छंडौ— छोड़ना (नमि. ३)
छकीय— षट्काय (बुद्धि. ५०।२)
छट्टम— छठवाँ (पंच. १८।३)
छडैल— छोड़ दिए गए (बुद्धि. ४८।२)
छदमस्त— छद्मस्थ, सांसारिकता में पड़ा हुआ (आदि. ५५)
छन— क्षण (परमा. १५।१)
छमा— क्षमा (बुद्धि. ९।२)
छरैं— बिखरे हुए; समर्पित (अजित. ११)
छहआवासक— षट्आवश्यक (राग. १८।४)
छाइक— क्षायिकज्ञान (वीत. ९।१)
छाछटि— छयासठ (जिनांत. ९।१)
छाजत— शोभित (पंच. २।३)
छाव— छवि (सप्त. ५।३)
छित— पृथिवी; शीघ्र (पंच. ९।२)
छिप्यौ— छिपा हुआ (संभव. ७)
छीद— संक्रामक बीमारी (बुद्धि. ४८।२)
छुद्रम— कपट-जाल (राग. १०।८)
छूति— संक्रामक रोग, अपवित्र वस्तु का स्पर्श (बुद्धि. ४८।२)
छोइ— नष्ट (सप्त. ५।३)
छोभ— क्षोभ; दुख (विवेक. ३।२)
ज्यान— ज्ञान (राग. १९।७)
ज्येस्ठा— एक नक्षत्र (संभव. ४८)
ज्वालामालिनी— ज्वालामालिनी देवी (शीतल. ६३)
जग्यो— जागना (बुद्धि. २४।१)
जगमग्यो— जगमगाना (राग. २३।४)
जच्छन— उपभोग करना (बुद्धि. ५।२)
जटा— लम्बे बाल (साधुओं के) (जोग. ७।२)
जड़ाव— जटित (चतुर्विं. १३)
जथारथ— यथार्थ (दरसन. १४।४)
जम्बू— जम्बू वृक्ष (विमल. ४९)
जमाति— जमात; पंगत; टोली (विवेक. २६।२)

जयन्त— जयन्त विमान (सुमति. ४५)
जयस्या— जयश्या रानी (विमल. ३७)
जया— जया नामकी यक्षिणी (अरह. ६६)
जर— जड़; मूल (राग. १५।८)
जलरास— जलराशि (जिनांत. ४।२)
जातिफल— जायफल (मुनि. १९)
जातीसमय— अन्तसमय (मुनि. ५३)
जादौराइ— यादवराज नामका कवि (जूववरा. ३)
जादौवंश— यादववंश (सप्त. ३।३)
जाम— प्रहार (पंचवरन. ६।३)
जार— जाल; फंदा (बुद्धि. ६।३)
जासुरानी—जासु नामकी रानी (अनन्त. ३१)
जाहिर— स्पष्ट (पुकार. २४।३)
जितारी— जितारी नामका राजा (संभव. ४६)
जिहाज— जहाज (राग. ४।८)
जीवतव्यता— जीवित रहने योग्य (बुद्धि. ४४।३)
जुग— युग (पंच. २०।६)
जुगलाधर्म— युगलाधर्म (जिनांत. ४।१)
जुठैल— जूठी की हुई (बुद्धि. ४८।४)
जुर— ज्वर; ताप (राग. २२)
जुलांजलु— अंजलि में जल लेना (मारीच. २२।४)
जुवतिय— युवती (बुद्धि. २९।१)
जूम— जुड़ना; प्रकार (जीवचतु. १०।१)
जोट— जोड़ा (चक्र. ३७।१)
जोरि— जोड़ना (पंच. १।५
जौहरी— रत्नों का पारखी (बुद्धि. ५४।१)
झंक— झुंकना (पद. ७।७)
झंगा— बच्चों का झबला नामक वस्त्र (पंचवरन. १।२)
झगरौ— झगड़ा करना (राग. ८।३)
झटा— शीघ्रता से (बुद्धि. ४९।४)
झपनौं— ढँकना (जिनवन्दना. १४।४)
झली— झलना (पंचवरन. २।३)
झुरत— झुरना (पुकार. १६।२)
झौखैं— झौंका; झौंखना (पद. २१।८)
टंक— जरा सा; लेशमात्र (विवेक. ७।८)
टटा— घास-फूस का बना हुआ दरवाजा (बुद्धि. ४९।३)
टारि— टालना (शान्ति. ८५)
टिडि— टिड्डी (एक प्रकार का कीड़ा) (परमा. १७।२)
टोटो— घाटा; नुकसान (जोग. १३।४)
टोह— टटोलना; खोजना (बुद्धि. ३६।२)
टौही— खोजने वाला, आन्तरिक स्थिति को समझने वाला (शान्ति. ३२)
ठकुराई— प्रभुता (पुकार. २३।२)
ठटी— धंसी हुई, स्थिर की गई; (राग. ९।३)
ठवन— स्थान (पद. ६।३)
ठान— निश्चय (वीत. २३।३)
ठाम— स्थान (दरसन. २८।४)
ठाल— स्थान (अभि. ५२)
ठीकौ— धन, (तीनमूढ़. १४।१)
ठेउ— धक्का देना; ठोंकर मारना (पद. १६।६)
ठेर—देर (मारीच. १९।७)
ठेवा— बाधा डालना; रोकना (पद. २।२)
डंभी— दम्भी (बुद्धि. ३५।१)
डगरौ— धीरे-धीरे चलना (राग. ८।८)
डगैगौ— डगमगाना (पद. १९।५)
डभैं— आँसू भरा हुआ (तीनमूढ़. ३१।२)
डार— डाल; शाखा (देव. ५)

डेर— देर (पुकार. २२।१)
डेरा— ठिकाना; पड़ाव (तीनमूढ़. ३५।१)
ढरक— ढंड़कना; लुढ़कना (राग. १३।३)
ढाल— एक प्रकार का राग या छन्द (धर्म. १।१)
ढिग— पास; निकट (बुद्धि. १०।३)
ढेट— दोष पूर्ण (पार्श्व. ४२)
ढेर— देर (राग. ८।१)
णेत— रेशमी वस्त्र (चक्र. १९।२)
तक्कवाद— तर्कवाद (परमा. २०।१)
तज— तजना; त्याग (बुद्धि. ८।१)
तत— तत्व (सप्त. ६।३)
ततच्छ— शीघ्र (मारीच. ४।६)
ततछन— तत्क्षण; (सप्त. ७।३)
तनमा— शरीर में (बुद्धि. ९।४)
तप्यौ— तपना (संभव. ८)
तपन— गर्मी, तपस्या की तपन (वीत. ६।२)
तमोर— सूर्य; तमोलवृक्ष (मल्लि. ४१)
तरसी— तरसना (वीत. ८।३)
तवेर— सुबह (पाश्र्व. १२)
तसकर— चोर. ठग (राग. ९।३)
तहतीक— तीक्ष्णता से तह तक पहुँचना (द्वादश. २७।२)
ताखा— देखा (राग. ४।८)
ताल— तालाब (बुद्धि. ४।४)
तिकत— तीता (पद. १०।८)
तिणही— उन्हीं से (राग. १९।५)
तिन्दुक— तिन्दुक वृक्ष (श्रेयांस. ५३)
तिनिकी— तिनकी, उनकी (जिनवन्दना. ४।४)
तिल— तिल नामक खाद्य पदार्थ (परमा. २४।१)
तिलटी— तिलटी नामका जीव (जोग. १९।२)
तिसौंरी— तिसौरी नामक जीव (जोग. १९।२)
तीत— विरक्त (वीत. २४।२)
तुंवर— तुम्बर नामका यक्ष (सुमति. ६८)
तुम्हसी— तुम्हारे जैसी (पुकार. २३।२)
तुसार— हिम; पाला (पंचवरन. ६।१)
तूप— घी (वीत. २४।३)
तेलु— तेल (परमा. २४।१)
तेव— क्रोध दृष्टि (पदि.)
तोय— जल (वासु. ३)
तौल-माप— तौलना-मापना (राग. ११।६)
त्रास— दुख (पद. ७।५)
त्रिजंच— तिर्यञ्च जीव (धर्म. १८।२)
त्रिभुवन तीनों लोक (पंच. १।२)
त्रिमुख— त्रिमुख नामका यक्ष (संभव. ६३)
थान— स्थान (जिनांत. ६।१)
थापना— स्थापना (आदि. ३६)
थावर—स्थावर जीव (पंच. १८।४)
थिति— पृथिवी; स्थिति (पंच. १८।४)
थूल— स्थूल; मोटा (विवेक. ३०।२)
थेवा— धातु का पत्तर जिस पर मुहर खोदी जाती है (पद. २।४)
थेवा— स्थान (पद. २।४)
द्वारावती— द्वारिका नगरी (नेमि. ४९)
दंड— डंडा (पंचवरन. ३।१)
दगत— दागना (वीत. १९।४)
दछन— दर्शन (बुद्धि. ५।३)
दधि— दधि वृक्ष (धर्मनाथ. ६२)
दमी— दमन करने वाला (दरसन. ९।३)
दरपन— दर्पण (राग. ४।८)
दरमादिक— अनार आदिफल (धर्मनाथ. १६)
दरव— द्रव्य (परमा. ३०।१)

दरी— घाटी (नेमि. १२)
दर्व— द्रव्य (परमा. ८।२)
दशांग— दस अंग (पुष्प. २७)
दहै— द्रह; सरोवर (पुकार. २०।३)
दाग— चला देना (विवेक. १४।२)
दाहत— जलाना (अजित. ९)
दिगविजै— दिग्विजय (चक्र. २९।१)
दिड—दृढ़ (परमा. १०।१)
दिल— हृदय (पद. ३।४)
दिलमाज— हृदय के भीतर (पद. १७।१०)
दिवाकर— सूर्य (पंच. १७।१)
दिवालौ— मन्दिर (नमि. १५)
दिष्टांत— दृष्टान्त; उदाहरण (वीत. ३।२)
दुकान— दुकान (पद. २७।६)
दुखरारा— दुःख की कथा (दरसन. ३१।३)
दुति— चमक (पंच. १६।१)
दुद्धर— दुर्द्धर; कठिन (दरसन. १७।४)
दुर— तिरस्कार करना (पंच. २३।२)
दुरलभ—दुर्लभ; कठिन (जिनांत. ३।१)
दुरवंध— बुराबन्धन (दरसन. १।४)
दुसराइ— प्रतिद्वन्द्विता (पुकार. २३।१)
दूत— द्यूत; जुआ (सप्त. १।१३)
दृढ़रथ— दृढ़रथ नामका राजा (शीतल. ४३)
देउरे— देवला (मन्दिर) (वीत. ९।४)
दैनी दे तो— भाग्य के द्वारा प्राप्त (बुद्धि. ३५।४)
दौंची— दबोचना (जोग. २४।४)
दौर— समझ में आ जाना (जीवचतु. ९।२)
दौरे— दौड़ना (तीन मूढ़. ९।१)
द्रग— नेत्र (दसधा. १।२)
द्रुमेश्वर— वृक्षेश (वट एवं; पीपल वृक्ष) (नेमि. १२)
द्रोनमुख— द्रोणमुख (चक्र. ४।२)
धगरै— झगड़ा करे (राग. १०।१)
धनदत्त— धनदत्त नामका राजा (पार्श्व. ३६)
धरणेन्द्र— धरणेन्द्र नामका देव (पार्श्व. ५)
धरता— धारण करने वाला (शीतल. ३३)
धरम— धर्म (धर्म. १।१)
धर्मज्ञ— धर्मज्ञ नामका राजा (नमि. २७)
धव— धव वृक्ष (पार्श्व. ३५)
धसा— धसना (दरसन. २४।३)
धान्ध्यौ— जबर्दस्ती दबाना (जिनवन्दना. १८।२)
धाम— भवन, घर (धर्म. ४।१)
धारनाक्ष— धारनाक्ष राजा (पद्म. ४६)
धी— बुद्धि (पंच. २१।२)
धुअ— ध्रुव (बुद्धि. ७।१)
धुव— ध्रुव; अटल (पंच. ५।४)
धू— ध्रौव्य (वीत. ११।४)
धूर— धूलि (विवेक. १४।१)
धैन— ध्यान (दसधा. १२।३)
धोक— सिर टेकना (राग. १८।१०)
धोखैं— धोखा (बुद्धि. २१।३)
धोबी— कपड़ा धोने वाला (मारीच. १७।३)
ध्रक-ध्रक— धिक्-धिक् (राग. १३।१)
न्याइ— न्याय (पुकार. २२।२)
नईठौ— इष्ट न होना (पद. २१।४)
नकटी— कटी नाक वाली, अप्रतिष्ठित (राग. ९।२)
नग— पर्वत; बहुमूल्य (पंचवरन. ३।२)
नगीच— पास (पद. ३।६)
नग्र— नगर (अरह. ४५)
नजरि— नजर; दृष्टि (हितो. ११)
नटा— नट; नाचनेवाला (बुद्धि. ४९।१)
नदिय— नदी (धर्म. १५।२)

नन्दनगरी— नन्द नामकी नगरी (विमल. ५२)
नन्दसेन— नन्दसेन राजा (मल्लि. ४८)
नन्दीवृक्ष— नन्दी नामका वृक्ष (शान्ति. ५८)
नमिता— नम्रता (पंच. ३।६)
नय— नीति (पंच. ४।३)
नवाज— रक्षा करने वाला (पुकार. १।१)
नवेरे— दूर करने वाले (पद. २८)
नसीठौ— नष्ट हो जाना (पद. २१)
नाइक— नायक (पंच. १।१)
नाउ— नाव (बुद्धि. ४।३)
नागर— नागर नामका वृक्ष (चन्द्र. ६२)
नाज— अनाज (पद. १७।९)
नाभिराय—नाभिराय राजा (आदि. ४२)
नाव— नाव (धर्म. १४।२)
नाषा— नाश (राग. ४।५)
निंबू— नीबू (मारीच. १४।२)
निकंद— नाश (बुद्धि. ५५।५)
निकाई— अच्छापन; सौन्दर्य (पद. १२।१४)
निघटी— समाप्त हुई (जिनांत. २।१२)
निज्जई— जीत लेना (दसधा. १।३)
निधि— धन; संपत्ति; नौ निधियाँ (चक्र. २०।१)
निना— अलग (आदि. २४)
निपसेव— पसीना रहित (जिन. २।२)
नियरी— पास आई हुई (बुद्धि. ५१।१)
निरक्षर— अज्ञानी, अक्षर रहित (पद. २१।१०)
निरधारना— निश्चित करना (बुद्धि. ४७।१)
निरप्रमाद— प्रमाद रहित (पंच. १५।४)
निरभै— निर्भय (परमा. १३।१)
निरमोख— मोक्ष रहित (बुद्धि. ३६।२)
निरवाद— वाद रहित (पंच. १५।४)
निरवारन— दूर करने वाले (पद. ५।२)
निरसंग— संग रहित (पंच. १५। १३)
निराट— केवल (राग. २१।३)
निरासक— निराकरण करने वाला; (बुद्धि. २७।२)
निरीछनो— निरीक्षण करना (शीलांग. ६।१)
निरोई— नीरोग (धर्म. ४।१)
निर्दूख— निर्दोष (सुपार्श्व. १९)
निर्मलनाथ— विमलनाथ तीर्थंकर (चतुर्वि १३।४)
निवारन— निवृत्ति; छुटकारा दिलाने वाला (पुकार. १।३)
निश्चय— निश्चय नय (परमा. १४।१)
निषाद— अपराध (पुकार. ५।२)
नीकी— अच्छी (बुद्धि. ३५।२)
नीसकती— नि:शक्ति (चक्र. ४०।१)
नृत— नृत्य (जोग. २।३)
नृपनन्द— नृपनन्द (राजा) (चंन्द्र. ५४)
ने— नय (दसधा. ९।१)
नेरौ— पास (राग. ७।३)
नैंकु— जरा भई, कुछ भी नहीं (पंच. २२।४)
नौका— नाव (जिनवन्दना. १८।३)
नौनी— अच्छी (बुद्धि. ३५।२)
पंगति— पंक्ति (जिनांत. १।२; बुद्धि. ५४।२)
पंचपरमगुरु— पंच परमेष्ठी (पंच. १।६)
पंछी— पक्षी (राग. ४।८)
पखारे— धोये (नेमि. ९)
पखेरु— पक्षी (पुकार. १०।२)
पगत— पगे हुए; रचे हुए (वीत. १९।२)
पगन— पगना (बुद्धि. १९।१६)

पछारे— पछाड़ना (सप्त. २।३)
पत्र— सोने का पत्तर (वीत. ४।२)
पट्टन— समुद्र या नदी के किनारे का व्यापारिक स्थान (चक्र. ४।१)
पट— वस्त्र (तीनमूढ़. १६।१)
पटंतर— निरवस्त्र; नग्न (बुद्धि. ३४।१)
पटतर— समानान्तर (कुंथ. ६४)
पढावनी— पढ़ाने वाली (बुद्धि. ४८।२)
पतंग— शलभ (जीवचतु. १७।२)
पताखा— ध्वजा (पंचवरन. ४।२; राग. ४।७)
पद्म— पद्मप्रभु तीर्थंकर (पद्म. १)
पद्मद्युति— पद्मद्युति राजा (सुमति. ५५)
पद्मावती—पद्मावती रानी (पार्श्व. ५)
पय—दूध (वीत. १९।१)
पयास— प्रयास (बुद्धि. ४७।१)
पयूस— पीयूष; अमृत (बुद्धि. ४७।१)
परगासि— प्रकाश (पंच. १।२)
परगाहो— पड़गाहना (राग. १७।१)
परच्यो— परिचय (स्वजोग. ४।१)
परचै— परिचय (वीत. २५।२)
परछी— परखी (जिनवन्दना. ३।५)
परजाई— पर्याय (धर्म. २।१)
परतेक—प्रत्येक (पुकार. ८।३)
परधंदना— दूसरे के वश में (वीत. ९।३)
परधान— प्रधान (जिनवन्दना. १५।६)
परपंच— प्रपञ्च (धर्म. १८।१)
परमा— एकम की तिथि (अनन्त. ३४)
परमावगाढ़— परम अवगाढ़ (दसधा. २।५)
परमोदन— आनन्दित करना (जिनांत. २६।२)
परवान— प्रमाण; सीमा (पद. २८)
पराक्रत— प्राकृत भाषा (द्वादश. ४५)
परिमल— सुगन्ध (पंच. २४।२)
परीसा— परीषह (पंच. १५।२)
पर्म— परम, श्रेष्ठ (बुद्धि. ६।४)
पलहति— प्रफुल्लित, हरी-भरी (राग. ९।१०)
पलास— पलाश वृक्ष (शीतल. ४८)
पलिकियन— झूला (पद. १३।४)
पलैन— पलायन (बुद्धि. ४।३)
पवनंजय— पवनञ्जय नामका घोड़ा (चक्र. ३१।१)
पसराई— फैली हुई (पद. ४।८)
पसिया— पशुयोनि (मारीच. १५।७)
पसीजत— द्रवित होना (पद. ४।६)
पसुवत— पशु समान (धर्म. ४।१)
पहिरनहारो— पहिनने वाला (तीन मूढ़. १६।१)
पहुप— पुष्प (पंच. २४।४)
पहौंची— पहुँचना(जोग. २४।३)
पाउ— पैर (दरसन. १२।२)
पाग— पगड़ी (पंच. १।२)
पाठी— पढ़ने वाला (तीनमूढ़. २६।१)
पाठे— पक्कीछत, पठार (बुद्धि. ४०।१)
पाथरे— पत्थर (सप्त. ७।३)
पादुका— पादुका रत्न (चक्र. ३९।१)
पापर— पापड़ (श्रेयांस. १३)
पारस्यनाथ— पार्श्वनाथ तीर्थंकर (जूववरा)
पारस— पार्श्वनाथ (विवेक. २।२)
पारिसु— पार्श्वनाथ (जोग. ३।३)
पास— निकट (दरसन. २४।२)
पासि— पास में (पुकार. २०।२)
पाहन— पत्थर (बुद्धि. २४।१)
पाहुड— प्राभृत; उपहार (दरसन. ३७।२)
पाहुनी— पाहुनी नामका चाँवल (श्रेयांस. ८)

पिंगला— एक निधिका नाम (चक्र. २०।२)
पिंड— समूह (वीत. ६।१)
पिछानी— पहचानना (वीत. २३।४)
पिन— सम्बद्ध; जकड़ा हुआ (जोग. ४।५)
पिरे— पेलना; प्रेरित करना, (मारीच. १८।८)
पीट— पीटना (वीत. ४।२)
पीठौ— पीठ देना (पद. २०।५)
पीत— पीले रंग का (तीन मूढ. १६।१)
पीरौ— पीला (अभि. ८)
पुतरी— पुतली (पुकार. ११।३)
पुर— नगर (चक्र. २।१)
पुरस— उत्तम (अजित. १९)
पुरातम— प्राचीनतम (जिनवन्दना २१।३)
पुरिया— पुड़ी (श्रेयांस. १७)
पुरिस— पुरुष (जीव चतु. २५।१)
पुरैन— कमलपत्र (वीत. २४।३)
पुलासी— पुलकित होना (वीत. १२।३)
पुलीठो— प्रफुल्लित (पद. २०।३)
पेखौ— देखना (तीनमूढ़. १७।२)
पेड़ा— एक मिष्ठान (श्रेयांस. १३)
पेराख— पेठापाक (मिठाई) (श्रेयांस. १३)
पैठो— प्रेवेश किया (वीत. १८।२)
पै— पर (वीत. २३।३)
पोई— पिरोकर, गूँथकर (राग. २२।५)
पोखै— पालना; पोसना (पद. २१।२)
पोटी— पोटली (बुद्धि. ३५।२)
पोत— जहाज (बुद्धि. ४१।३)
पोरस— पौरुष (विवेक. २।२)
पोरिस— पौरुष (हितो. १०।४)
पौन— पवन (परमा. २।२)
प्रकतै— प्रकृति से (बुद्धि. १९।१)
प्रज्ञप्ति— प्रज्ञप्ति नामकी यक्षिणी (संभव. ६३)
प्रजली— प्रज्ज्वलित करना (पद्म. २३)
प्रत— प्रतिबिम्ब (श्रेयांस. २)
प्रतग्या— प्रतिज्ञा (तीनमूढ़. १५।१)
प्रतछ— प्रत्यक्ष (बुद्धि. २४।२)
प्रतछन— प्रतिक्षण (बुद्धि. ५।४)
प्रतिहार्ज— प्रतिहार्य (दरसन. २९।२)
प्रदाय— देना (महावीर. १२)
प्रभावती— प्रभावती रानी (मल्लि. ३८)
प्रमन्त— महान; बलशाली (संभव. ६६)
प्रमाद— आलस (तीनमूढ़. ३३।६)
प्रवचनसार— प्रवचनसार नामका ग्रन्थ (वीत. २५।४)
प्रवर्त्त— कार्य में लगना (वीत. ३।३)
प्रवर्त्तत— होना (वीत. ११।२)
प्रसांग— प्रासुक; ताजा (पद्म. ३)
प्रहारी— प्रहार करनेवाला (दरसन. ९।४)
प्रातिति— प्रतीति (दरसन. १५।३)
प्रापति— उपलब्धि (दरसन. १५।२ बुद्धि. २८।४)
प्रापु— प्राप्त (अनन्त. ४६)
प्रियंगु— प्रियंगु वृक्ष (सुमति. ५४)
प्रियमित्र— प्रियमित्र नामका राजा (शान्ति. ६२)
प्रीतम— प्रियतम; पति (धर्म. १४।२)
प्रोहित— पुरोहित् (चक्र. २९।२)
फटा— फटना; छेद (बुद्धि. ४९।२)
फटिक— स्फटिक (पुष्प. २)
फदातैं— फाँदना (पद. ९)
फदीत— फजीहत; (उपदेश. ११।२)
फरस— स्पर्श (पद. २५)
फासे— ताजे (पुष्प. ३०)
फिराद— फ़रियाद (पुकार. १८।३)
फूल— पुष्प (पंचवरन. ४।२)

फैंनी— फैंनी नामका पकवान (मुनि. १६)
ब्याल— सर्प (चक्र. ३१।१)
बंजु— व्यापार (जोग. १३।१)
बंद— बन्ध (परमा. २९।१)
बघरूले— बबंडर (पद. १३।९)
बनारस— बनारस नगर (सुपार्श्व. ४५)
बरसाहौ— वर्षा करना (शीतल. १६)
बरा— बड़ा नामका व्यञ्जन (श्रेयांस. १७)
बराई— बड़ाई (पुकार. २३।३)
बलवंड— बलवंत (चक्र. २८।२)
बसंत— बसना (आदि. १६)
बहाहों— प्रवाहित करना (शीतल. ४)
बहिरयंग— बहिरंग (पद. ५।५)
बहुरूपिणी— बहुरूपिणी नामकी यक्षिणी (नमि. ५०)
बाघ— बाघ (वीत. ७।१)
बादाम— बादाम (फल) (आदि. ३०)
बाधि— बाधा, व्याधि (जीवचतु. ३२।१)
बान— आदत (आदि. १७)
बाबर— बाबर नामका पकवान (मुनि. १३)
बार— बाल (केवल. १७)
बालपनै— बालापन, बचपन (पुकार. १४।३)
बाहुबलि— बाहुबलि (ऋषभ पुत्र) (वीत. २२।१)
बाहिरयंग— बहिरंग (पद. ५।७)
बिसार— भूलना (महावीर. ९)
बीन— बीनना, चुनना (कुंथ. १५)
बुढ़ापा— वृद्धावस्था (जिन. १।४)
बुढ़ापौ— वृद्धावस्था (अष्टा. १३)
बूड़ै— डूबना (सप्त. ५।३)
बूढ़ा— वृद्ध (तीनमूढ़. २५।२)
बे— दो (पुकार. ९।२)
बेदरि— विदीर्ण (पद. १५।७)
बेहुरो— देहरी; चौखट (जोग. १३।३)
बैरोटि— बैरोटि नामकी यक्षिणी (अनन्त. ६३)
ब्रह्म— ब्रह्म नामक यक्ष (शीतल. ६३)
ब्रह्म— परमात्मा (परमानंद. १६।१)
ब्रह्मेश्वर— ब्रह्मेश्वर नामका यक्ष (पुष्प. ६५)
भंजत— नाश होना (दरसन. १४।२)
भखे— भक्षण किया (सप्त. २।१)
भगवंत— भगवान (वीत. ११।१)
भडारि— भंडार, भट्टारकी, श्रेष्ठ (बुद्धि. ४८।२)
भडैल— भोंडी; कुरूप; भयंकर (बुद्धि. ४८।२)
भद्दलपुरि— भद्दलपुर नगर (शीतल. ४१)
भदभदा— पर्वत से नीचे गिरने वाला झरना (मारीच. २१।४)
भमैस— भ्रमण (विवेक. ११।२)
भरकहै— दरार पड़ना (राग. १३)
भरणी— भरणी नक्षत्र (शान्ति. ५३)
भरत— भरना (राग. ११)
भरथ— भरत चक्रवर्त्ती (वीत. २२।१)
भरथेस— भरत चक्रवर्त्ती (मारीच. ४।७)
भरे— भरना (सप्त. ५।३)
भवकानन— संसार रूपी वन (स्वजोग. १।१)
भवग्रेवी— संसार को ग्रसित करने वाली; (पद्म. ६५)
भवभांवर— संसार रूपी भँवर; (संभव. ८)
भविता— होनी, भाग्य (पुकार. ३१।३)
भाजन— बर्त्तन (वीत. १९।१)
भादौं— भादों का महिना (पंचवरन. २।४)
भाद्रापद— भद्रा नक्षत्र (विमल. ४३)
भान— सूर्य (परमा. ९।२)

भानु— भानु नामका राजा (धर्म. ५१)
भामण्डल— प्रभा मण्डल (अरह. ३५)
भिंग— भृंग, भौंरा (मारीच. १९।४)
भिम्भनै— भिनभिनाना (सप्त. २।३)
भीत— भयभीत (बुद्धि. ४८।२)
भुजंगम— सर्प (पंच. १९।४)
भूत— व्यन्तरवासी देव, भूत-प्रेत (पंच. २३।१४)
भूम— भूमि (चक्र. ११।१)
भेक— भेद, मेण्ढक (विवेक. १५।१)
भैन— सराबोर, तर-बतर (विवेक. १०।२)
भोगश्च— भोग में लिप्त (दरसन. १४।२)
भोर— सुबह (जोग. ५।४)
भौंदू— बुद्धू (पद. १२।८)
भौर— भँवर; लहर (बुद्धि. ४।४)
मंजार— बिल्ली (मारीच. १९।६)
मंडलीक— राजाओं का अधिपति (चक्र. ५०।१)
मचकुंद— मचकुंद फूल (अभि. १५)
मछ— मछली (मारीच. १५।३)
मझार— बीच में, भीतर (जिनांत. २६।२)
मत्यौ— मतवाला (पद. १।३)
मथना— बिलौना, मथना (दरसन. ४।१)
मदन— कामदेव (बुद्धि. २४।१)
मदोर— मंदूला अर्थात् मिट्टी की बड़ी घरेलू टंकी (बुद्धि. ५०।३)
मधुरा— मधुर शब्द, मधुरता (पद. १०।७)
मनोवेगा— मनोवेगा यक्षिणी (चन्द्र. ७४)
मम— मेरा (धर्म. २।२)
मरकट— बन्दर (राग. ७।८)
मरजाद— मर्यादा (बुद्धि. १०।४)
मरमु— मर्म (बुद्धि. ३०।६)
मरिहों— मरकर (मारीच. ६।४)
महकाती— सुगन्धित करती (नमि. १७)
महतीछन— महातीक्ष्ण (बुद्धि. २३।३)
महव्रती— महाव्रती (धर्म. २१।२)
महाजार— अत्यधिक ज्वार; समुद्र में तूफान आना (बुद्धि. २४।४)
महुरि— मधुर (बुद्धि ३६।३)
माझ— मध्य (बुद्धि. ५४।२)
माछर— मत्सर भाव (बुद्धि. ९।२)
माज— मध्य (पद. १७।१०)
मातैं— मतवाले (पद. ९।५)
माद— गर्व (बुद्धि. ५०।३)
माधकता— मादकता (पद. १३।२)
माफिक— अनुकूल (दरसन. २२।१)
मारग— मार्ग (बुद्धि. ८।४)
मारूत— पवन; वायु (पुकार. ८।१)
मार्गणा— मार्गणा (जैन पारिभाषिक शब्द) (पद. २६।१०)
माल— माला (पुकार. १६।३)
मालत— मालती नामका चाँवल (श्रेयांस. ०८)
मालीच-मालोच— मारीच (मारीच. १।४)
मित्रा— मित्रा रानी (अरह. ४६)
मिथ्यादृष्टि— मिथ्यादृष्टि (बुद्धि. २।५)
मिथला— मिथिला नगरी (मल्लि. ३७)
मीन— मछली (बुद्धि. २४।१)
मुकताहत—मुक्ताफल (मोती) (बुद्धि. ४६।१)
मुकति— मुक्ति (पद. २३।१०)
मुच— मुक्त (स्वजोग. १।५)
मुदौ— डंका (संभव. २८)
मुद्रा— अवस्था (राग. १७।१०)
मुन्यो— मनन करना (द्वादश. ४८।१)
मुहजूद— मौजूद (हितो. ८।१)
मूजौ— समस्त (जिनवन्दना. २०।१)
मूड— मूढ़ (सप्त. ४।१)

मूर— मूल; आधार (जोग. १३।२)
मूरतीक— मूर्तिक (वीत. २१।२)
मूरि— मूलधन (बुद्धि. २३।६)
मूसि— लूटना; चोरी करना (सप्त. ७।१)
मृतुका— मिट्टी का बना (बुद्धि. ४१।२)
मृगु— मृग; हिरन (बुद्धि. ४१।२)
मेर— सुमेरू पर्वत (पुकार. ६।३)
मैन— कामदेव (विवेक. १०।१)
मोख— मोक्ष (बुद्धि. २४।१)
मोजा— मोजा (पंचवरन. १।२)
मोर— मोर पक्षी (पद. १८।१०)
म्रजादा— मर्यादा (तीनमूढ़ २०।१; सप्त. ४।१)
म्रत— मृत (धर्म. ६।१)
रंकु— गरीब (पुकार. १९।२)
रंगति— रंगीन; रंग से भरा (पुकार. २४।१)
रंजे— शोभित (अनन्त. ५)
रक्ष्या— रक्षा करना (पंच. १९।५)
रगरो— रगड़ना (राग. ८।५)
रछ— रक्षा (पंच. १६।४)
रछक— रक्षक (पंच. ८।१)
रक्षपली— रक्षा करना: आच्छादित करना (पंचवरन. ३।२)
रझेउ— रिझाना (पद. १६।५)
रठावनी— रटनेवाली (बुद्धि. ४८।३)
रत्त— अनुरक्त (पंच. २५।३)
रत्ननामापुरी— रत्ननामापुरी नगर (धर्मनाथ. ५०)
रस—आनन्द; स्वाद (पुकार. २४।१)
रसना— जीभ (पंच. ४।६)
रसमा- आनन्द से भरे हुए (बुद्धि. ९/२)
रसिया— रसिक (जोग. ९।३)
रसी— रसिक (सप्त. ४।२)
रहस— रहस्य (पद. २४।)
रहिबू— रहना (बुद्धि. १४।२)
राइयराइ— राजाओं के राजा (पुकार. १९।१)
राजमती— राजमती राजकुमारी (जोग. २।१)
रामा— रामा नामकी रानी (पुष्प. ४५)
रितु— ऋतु (पद. २८।५)
रिनु— ऋण (राग. १४।)
रिषिभि— ऋषभ देव (मारीच. ११।१)
रीन्हौं— रीझना (राग. २।२)
रीष— ईर्ष्या, क्षति का भाव (जन्म. १७)
रुची— रुचिकर (धर्म. २०।१)
रुद्रभाव— क्रोध भाव (धर्म. १७।१)
रेवती— रेवती नक्षत्र (अनन्त. ३७)
रोहिणी—रोहिणी नक्षत्र (अरह. ४९)
लगार—सम्बन्ध (पद.१४।३)
लचिये—झुकना; वशीभूत (राग. १४।८)
लछन—लक्षण (दरसन. २९।४)
लछ— लक्ष्मी, कमल (बुद्धि. २९।२)
लछहर— लक्षणधर (पंच. २३।१४)
लज्या— लज्जा (दरसन. १३।१)
लटा— लिपटा हुआ (बुद्धि. ४९।४)
लटी— ठगने वाली, दुष्टा (राग. ९।१)
लठ— लट्ठ; डंडा (बुद्धि. ३८।३)
लरम— नर्म (बुद्धि. १४।५)
लहलात— लहलहाती (सुपार्श्व. २३)
लांजी— लांजी नामका चाँवल (श्रेयांस. ८)
लामी— लम्बी (बुद्धि ३९।२)
लायची— इलायची (वासु. ३३)
लीक— परिपाटी (पद. २१/३)
लीकल— गीत (हितो. ८।२)

लीन— डूबे हुए (विवेक. १३।२)
लूला— अपंग (दरसन. १२।४)
लोरैं—लोटना; चंचल (शीलांग ११।२)
लौंची— लोंचना (जोग. २४।१)
लौटे—लोटना (हितो. ६।१)
व्यापत— संकट; दुर्भाग्य (चन्द्र. ३)
व्यौहारी— व्यवहारी (तीन मूढ़. २०।२)
वंचत— ठगना (बुद्धि. ३४।३)
वंजु— व्यापार (जोग. १३।१)
वंधन— बन्धन (पंच. २३।२)
वंस— वंश; कुल (तीन मूढ़. ३०।१)
वकतव्य— कथन (पंच. ५।४)
वकुरा— बकरा (सप्त.२।३)
वगरौ— बिखरा (राग. ८।६)
वज्र—वज्र (धर्म. १)
वज्रकोड— वज्रकोड नामका धनुष (चक्र. ४०।१)
वज्रतुण्डा— वज्रतुण्डा नामकी शक्ति (चक्र. ४१।१)
वज्रवृषभनाराच— वज्रवृषभनाराच संहनन (जन्म. ९)
वज्रशृंखला— वज्रशृंखला नामकी यक्षिणी (अभि. ६६)
वज्रांकुशा— वज्रांकुशा नामकी यक्षिणी (सुमति. ६९)
वट— मार्ग (चक्र. ७।२)
वट— वटवृक्ष (आदि. ५२)
वटा— घड़ा (बुद्धि. ४९।१)
वडवार— बिखर जाना; छिन्न-भिन्न हो जाना (पद. १४।८)
वदसूले— बदसूरत (पद. १३।७)
वधुवालुव— बालू का विशाल ढेर (दरसन. ७।२)
वनस्पति— वनस्पति (जीवचतु. १३।१)
वनिज— व्यापार (राग. १९।७)
वपु— शरीर (जन्म. १।१)
वप्रा— वप्रा नामकी रानी (नमि. २८)
वमाना— वमन करना; उल्टी करना (राग. ३।५)
वमीठा— एक प्रकार की लाल चींटी द्वारा बनाया गया मिट्टी का तलगृह (मारीच. २३।१)
वरख— वर्ष (जोग. ७।५)
वरदत्त— वरदत्त राजा (नेमि. ७०)
वरनयो— वर्णन करना (परमा. १४।२)
वराह— शूकर (विमल. १)
वर्द्धमान— वर्द्धमान तीर्थंकर (जोग. ३।३)
ववत— बोना, बोने की क्रिया (राग. २४।२)
ववरे— वावले (परिशिष्ट. पद)
वसत— बसना, मकान (राग. १।१)
वसु— आठ (बुद्धि. १५।६)
वसुदेव— वसुदेव राजा (वासु. ४६)
वसेरौ— बसेरा (तीन मूढ़. २९।२)
वहिरे— बहरे (बुद्धि. ४६।३)
वाइली— निरर्थक, सन्निपात की स्थिति (सप्त. ३।३)
वांछा— इच्छा (पुष्प. ३४)
वाट— मार्ग (राग. २१।३)
वाडत— बढ़ना (पद. ४।२)
वाडि— बहुत अधिक; अत्यन्त (चक्र. १।२)
वादर— स्थूल (पुकार. ७।३)
वाधि— व्याधा (जीवचतु. ३२।१)
वामादेवी— वामादेवी नामकी रानी (पार्श्व. ३०)
वामी— सर्प के रहने का स्थान (बुद्धि. ३८।१)

वारिज— कमल (पंचवर. ३।१)
वासर— दिन (बुद्धि. ४०।३)
वासुपुज— वासुपूज्य तीर्थंकर (पंचवरन. ६।४)
वाहिज—बाहर से, ऊपर से (तीन मूढ. २९।२)
विंजन— व्यञ्जन, (दसधा. ९।२)
विकठ— विकट (पद. ६।३)
विकलपी— विकल्प करना (तीनमूढ. ६।१)
विकलत्रक—विकलत्रय जीव (परमा. १४।२)
विखैं— विषें (विषय) (शान्ति. ६२)
विग— दो (बुद्धि. १०।३)
विगोई— भिंगोकर (विवेक. ३२।१)
विछित्त— विक्षिप्त (धर्म. २७।२)
विजन— व्यञ्जन (विमल. १५)
विजय— विजय नामका विमान (अजित. ४७)
विजय— विजय नामका यक्ष (सुपार्श्व. ६४)
विजयादेवी— विजयादेवी नाम की रानी (अजित. ४८)
विजैगिरि— विजयगिरि पर्वत (चन्द्र. ३१।१)
विजैवर— विजय लक्ष्मी (चक्र. ४०।२)
विडतौंन— बिखरना (राग. १९।७)
वितीते— व्यतीत (जिनांत. ११।२)
विथ्यौ— विनष्ट (जिनवन्दना. १४।४)
विथा— व्यथा (पद. ५।४)
विदारि— विदीर्ण, चीरना (वीत. ७।२)
विद्रुम— मूँगा (पद्म. १)
विभंजन—तोड़ना, भंगकरना (पंच. ११।२)
विभूति— ऐश्वर्य (पंच. २५।३)
विभौ— वैभव (वीत. १२।१)
विभ्रम— भ्रमयुक्त (पंच. ११।२)
वियाजु— ब्याज (पद. १७।८)
विरख— वृक्ष (राग. १३।७)
विरच्चे— विरले (जोग. ११।१)
विरदंत— वृत्तांत (तीन मूढ. २२।१)
विरधापन— वृद्धावस्था (पुकार. १५।३)
विरले— दुर्लभ (धर्म. २७।१)
विरह—वियोग (आदि. १६)
विरावर— राग-विलावल (पद. १)
विललात— विलखना (बुद्धि. ३४।२)
विलात— नष्ट होना (जिनवन्दना. १४।२)
विलाति— नष्ट होना (विवेक. २६।१)
विलावैं— नष्ट हो जायें (पद. ५।५)
विलै— समाप्त (सुमति. २०)
विवर— बिल (राग. १३।८)
विवर्जित—छोड़ा हुआ, परित्यक्त (द्वादश. २१।२)
विवस्था— व्यवस्था (बुद्धि. ५३।१)
विवांसु— जवास वृक्ष (धर्म. १२।१)
विवेष— विवेक (स्वजोग. २।२)
विश्वसेन— विश्वसेन राजा (शान्ति. ४६)
विशाखन— विशाखन राजा (अनन्त. ४६)
विष्णतरु— व्यसन वृक्ष (पद. १५।१०)
विष्णवनाथ— वैष्णवनाथ राजा (श्रेयांस. ४३)
विषमोचिनी— विष को दूर करने वाली (चक्र. ३९।१)
विसन— व्यसन (सप्त ११।१)
विसमै— विस्मय (जिन. २।१)
विहंडन— नष्ट करना (चन्द्र. ४०)
वीन— चुनना (कुंथ. ८)
वृद— वृन्द-समूह (पंच. ३।२)
वृथा— व्यर्थ (बुद्धि. ४१।५)
ब्रम्ह— ब्रह्मा (हितो. १०।२)
वृषभसेन— वृषभसेन राजा (मुनि. ३८)

वेढे— घेरना; घिरा हुआ (चक्र. १।२)
वेणुरानी— वेणु नामकी रानी (श्रेयांस. ४४)
वेद्यौ— बींधना; छेदना; जानना (पंच. १४।३)
वेदना— दुख, कष्ट (वीत. ६।४)
वेदनी— वेदनीय कर्म. (शान्ति. ११)
वेदी— जानकार (बुद्धि. २७।६)
वेदै— कष्ट सहना (वीत. ५।६)
वेमरजादी— मर्यादारहित (जन्म. १९)
वेरा— समय (पार्श्व. ३७)
वेवहार— व्यवहार (दरसन. २०।४)
वेसु— वेश्या (सप्त. १।१)
वेसुवा— वेश्या (बुद्धि. ४९।२)
वैजयन्त— वैजयन्त नामका विमान (चक्र. ५६)
वैद— वैद्य (पुका. २।२)
वैरोटि— वैरोटि नामकी दवी (अनन्त. ६३)
वैस— वैश्य (व्यापारी) (विवेक. ११।१)
वोजि— बोझ (उपदेश. १३।२)
वोट— ओट (चक्र. ३७।१)
वोरहीं— डुबाना (अरह. २८)
वौरा— बौरा; गूंगा, मूक (दरसन. १२।४)
व्रद्धि— वृद्धि (दरसन. ६।२)
श्यामजीरा— श्यामजीरा नामका चाँवल (श्रेयांस. ८)
श्वाद— स्वाद (धर्म. १६।२)
शालवृक्ष— शाल नामका वृक्ष (संभव. ५१)
शिव— शिव (परमा. १६।१)
शिवदेवी— शिवादेवी रानी (नेमि. ५१)
शुक्र— शुक्र नामका स्वर्ग (वासु. ४५)
शैलपुरी— शैलपुरी नगर (पुष्प. ५४)
श्रावण— श्रावण नक्षत्र (श्रेयांस. ४८)
श्रावस्ती— श्रावस्ती नगरी (संभव. ४५)
श्रीखण्ड— श्रीखण्ड वृक्ष (सुपार्श्व. ५२)
श्रीफल— मांगलिक फल; नारियल (रूढ़ार्थ) (आदि. २७)
श्रीमती— श्रीमती नामकी रानी (कुंथ. ६३)
श्रुत— शास्त्र, आगम. सुनना; वेद (दसधा. १२।२)
श्रुभ— शुभ (चक्र. २८।१)
श्रेयांस— श्रेयांस राजा (आदि. ५४)
श्रैनिक— श्रेणिक राजा (वीत. २२।२)
षटा— खटपट, लड़ाई (बुद्धि. ४९।२)
षटु— षट् (जिनांत. २।२)
षेह— राख (बुद्धि. १।५)
स्यादवाद— स्याद्वाद (विवेक. १२।१)
स्वजोग— संयोग (बुद्धि. १०।१)
स्वर्गपुरी— स्वर्गपुरी (पंच. २५।६)
स्वांगु— रूप धारण करना (बुद्धि. ३२।१)
स्वारथ— स्वार्थ (विवेक. ७।२)
संग— अन्तर एवं बाह्य परिग्रह (जोग. २०।३)
संख—शंख (जीवचतु. १६।२)
संछेप—संक्षेप (दसधा. २।३)
संजुक्त— संयुक्त (धर्म. १९।१)
संतपुरिष— सन्तपुरुष (पंच. ९।५)
संवाहन— वाहन-(चक्र. ५।१)
सकति— शक्ति (वीत. ९।१)
सर्कौ—सरकना, खिसकना (तीनमूढ. २३।२)
सखा— मित्र (पद. ९।८)
सघाती— अपनी हानि करने वाला (तीनमूढ़. १३।१)
सटा— सटना, लिपटना (बुद्धि. ४९।२)
सठ— मूर्ख (पद. १।१२)

सक्ति— शक्ति (जीवचतु. २९।२)
सतसंग— सत्संग (बुद्धि. ४।२)
सदके— न्यौछावर (चक्र. १)
सधान— श्रद्धान (राग. १४।३)
सन्यास— संन्यास (मारीच. २२।७)
सनमान— सन्मान (धर्म. १३।२)
सनउ— सनद (प्रमाणित करना) (विवेक. अन्तिम पंक्ति)
सप्तधातु— सात-धातु (तीनमूढ़ ३१।१)
सपर्स— स्पर्श (वीत. १३।१)
सपिंड— पिण्ड सहित (पुकार. १२।३)
सम्यक्-महल— सम्यक्त्व महल (तीनमूढ. ३५।१)
समकित— सम्यक्त्व (जिनांत. २७।२)
समकिती— सम्यक्त्व पालनकरने वाला (दरसन. २२।४)
समतारस— समतारस (मारीच. २२।३)
समधेला— समधी (उपदेश. १६।१)
समना— मन सहित (जीवचतु. २३।१)
समर्प्यै— समर्पित (चक्र. १९।१)
समर—कामदेव (बुद्धि. २०।२)
समरते— स्मरण करते समय (वीत. २२।३)
समरथ — समर्थ (चक्र. २५।१)
समरस— समताधारी (पंच. १४।३)
समरसवंत— समतारस से पूर्ण (मारीच. ९।८)
समरसी—समता रस वाला (दसधा. ११।१)
समिक— श्रमिक, श्रमकरने वाला (बुद्धि. ४३।६)
समिता— समता (पद. ३।४)
समीर— वायु, पवन (जीवचतु. २७।२)
समोइ— मिला देना (वीत. ४।३)
सम्रद्धि— समृद्धि (वीत. ६।२)
सरकरा— शक्कर (स्वजोग. १।२)
सरगंथी— ग्रंथसहित, गाँठसहित (जिनांत. २४।२)
सरदहत— श्रद्धायुक्त होकर (पद. ७।९)
सरदैहै— श्रद्धा रखता है (बुद्धि. ४०।४)
सरधा— श्रद्धा (दसधा. ९।३)
सरधान— श्रद्धान (दसधा. ३।१)
सरधापंथ— श्रद्धापंथ (बुद्धि. ३।४)
सरधावंत— श्रद्धावंत (जिनांत. २७।१)
सरपुर— श्रीपुर नगर (शान्ति. जयमाल. १७)
सरवंग— सर्वांग (पद. ३।२)
सरवग्य— सर्वज्ञ (वीत. २५।२)
सरवसु— सर्वस्व (स्वजोग. ३।२)
सरसुति— सरस्वती (धर्म. १।१)
सराउग— श्रावक (दरसन. २८।४)
सरिता— नदी (पुकार. १३।२)
सरीके—सदृश, समान (दसधा. ८।१)
सरोज— कमल (बुद्धि. ४०।१)
सर्कर— शर्करा नामका नरक (पुकार. १२।१)
सर्की— सरकना (तीनमूढ़. २३।२)
सर्द—श्रद्धा (परमा. २९।२; दरसन. २०।१)
सर्दहै— श्रद्धा करते हैं (परमा. २९।२)
सर्वङ्ग— सर्वाङ्ग (शीलांग. १३।१)
सल्लेखना— सल्लेखना (धर्म. २३।१)
सलाम—(अ.) प्रणाम (द्वादश. १७।२)
सलिल— जल (पद. ३।४)
सलौ— सजा हुआ, (मल्लि. ८)
सलौनी— लावण्य युक्त (वीत. ४।२)
सवायो— सवाया (पद. ८।८)
सहकारी— सहयोग देने वाली (दरसन. २३।२)

सहज— स्वाभाविक (जिनवन्दना. १२।१)
सहस्र— हजार (जिनांत. ७।१)
सहोदरि— एक ही उदर से उत्पन्न (सप्त. ३।२)
साइक— धनुष के समान भौंहें (राग. १७।९)
साखा— शाखा (दरसन. १।१)
साथीयौ— स्वस्तिक का चिन्ह (वासु. २६)
सातर— सात प्रकृतियाँ (राग. ५।९)
सारिम— कुतिया (जिन. ६)
साहजिक— सहजता से (जिनवन्दना. १८।५)
साहिब— स्वामी; (पद. ४।२)
सिंघवाहिनी— सिंघवाहिनी नामक शैय्या (चक्र. ३६।२)
सिंघाटक— सिंघाटक नामकी वर्छी (चक्र. ४१।२)
सिखा— चोटी (पंचवरन. २।४)
सिखिर— शिखर (पंच. १०।१
सियरे— ठण्डे (पंचवरन ६।१)
सिर्जे— बनाना (पंचवरन. ५।२)
सिलपकला— शिल्पकला (चक्र. ३०।१)
सिलपी—शिल्पी (वीत. २२।१)
सीत— शीत, ठण्ड (पद. २८)
सील— चरित्र, आचरण (धर्म. १४।१)
सिलसिंध— शील के सागर (पंच. ११।३)
सुकृत— पुण्य (पद. ३।६)
सुखदास— सुखदास नामक चाँवल (श्रेयांस. १८)
सुखाकर— सुख की खान (पंच. १७।२)
सुगंध—सुगन्ध (वीत. २४।२)
सुठाठी— चैन से रहना (तीन मूढ. २६।१)
सुधाखा— अच्छी तरह देखा (राग. ४।९)
सुपेत— श्वेत (पंचवरन. ६।२)
सुभद्रा— सुभद्रा नामकी निधि (चक्र. ३१।२)
सुभौर— सुन्दर सुबह (पद. १९।४)
सुमति वधू— ज्ञान रूपी वधू (बुद्धि. २१।२)
सुयमेव— स्वयं ही (चक्र. २४।२)
सुरति— स्मृति (विवेक. ११।१)
सुरस— उत्तम रस (विवेक. २।१)
सुसाद— उत्तम स्वाद (बुद्धि ५०।३)
सुहरैंगे— सुधरना (पुकार. २५।२)
सूगौ— सूना, खाली (राग. ७।१)
सूधै— सीधे (पंचवरन. ४।२)
सेत— श्वेत (पंचवरन ३।३)
सेती— पालन करके (दरसन. ३।४)
सेली— कवि की बहिन का नाम (प्रश. चौबीसी पाठ)
सेव-सेवा (पंचवरन. ३।१)
सेसफन— शेषनाग (पंच. ४।६))
सैंदुर-सिंदूर (पद. १८।३)
सोग— शोक (जिनवन्दना २।१)
सोढि— शोध (मारीच. २२।३)
सोनवयार—सोनवयार नामका मूर (प्रशस्ति. चौबीसी पाठ)
सोपान— सीढ़ी (दरसन. २१।४)
सोसु— शोक (बुद्धि. ४३।१)
सौं— समान (पंचवरन. २।१)
सौंम— समवशरण (पंचवरन. ४।१)
सौंझ— समझ, बुद्धि, (पद. १।२)
हंकार— अहंकार (धर्म. १७।१)
हंसराइ— हंसराज (आत्मा) (जोग. १३।१)
हजूर— अ., हजूर, साहिब, (पुकार. २२।२)
हटा— हटा देना (बुद्धि. ४९।४)
हते— (अस्ति) थे (सप्त. १।२)
हथाहथ— हाथों-हाथ (मुनि. १२)

हनिकैं— जोर से; बहुत अधिक (पंच. २५।६)
हमरी— हमारी (जिनवन्दना. १३।४)
हरामजाद— एक बुन्देली अपशब्द (बुद्धि. ५०।३)
हरामी— एक गाली (अपशब्द) (बुद्धि. ५०।३)
हरि— सिंह (बुद्धि. ४१।३)
हरिवंशपुराण— एक पुराण ग्रन्थ (तीन मूढ. ३०।१)
हलौ— हिलाना; घिसना (आदि. ७)
हस्तिनागपुर— हस्तिनापुर (शान्ति. ४५)
हाटक— सोना (पंच. ५।२)
हातु— हाथ (बुद्धि. ४५।१)
हाथ— हाथ (सप्त. ५।२)
हियरे— हृदय (पंचवरन. ६।३)
हियारस— हृदय-रस (बुद्धि. ५३।१)
हियै— हृदय (पंच. १३।१)
हिल— हिल मिलकर (वीत. १७।४)
हीयरा— हृदय (सुमति. ४)
हीरा—हीरा नामक रत्न (पंचवरन ३।२)

१२. सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

अकलंक स्तोत्र— सं. पं. फूलचन्द्रशास्त्री स्व. डॉ ए.एन. उपाध्ये, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

अध्यात्म पदावली— सं. डॉ. राजकुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रथम संस्करण, १९५४

अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद— डॉ. वासुदेव सिंह, समकालीन प्रकाशन, वाराणसी, वि. सं. २०२२,

आचारांग सूत्र— आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९३५ ई.

आदिपुराण में प्रतिपादित भारत— डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, श्री गणेश वर्णी ग्रन्थमाला, नरिया वाराणसी, १९६८ ई.।

कबीर— आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर, बम्बई, सन् १९६८ ई.

कबीर ग्रन्थावली— सं. श्यामसुन्दरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वि. सं. २०२१

कबीर की विचारधारा—डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, साहित्य निकेतन, कानपुर, वि. सं. २०१४

कबीर वचनावली— अयोध्यासिंह

कबीर साहित्य का अध्ययन— पुरुषोत्तम लाल, साहित्य रत्नमाला कानपुर

काव्यालंकार— भामह, वि. वि. प्रेस, काशी, प्रथम संस्करण, सं. २०१८

केशव कौमुदी— सं. लाला भगवान दीन, रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, सन् १९६५ ई.

कौटिल्य अर्थशास्त्र— सं. आर. राम. शास्त्री, मैसूर , सन् १९०९ ई.

छान्दोग्योपनिषद्— गीता प्रेस, गोरखपुर

जायसी का पद्मावत— डॉ. गोविन्द त्रिगुणायत, अशोक प्रकाशन, दिल्ली—६, सन् १९६३ ई.

जायसी ग्रन्थावली— सं. रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, पंचम संस्करण वि. सं. २००८

त्रिलोयपण्णत्ति भाग. १-२— सं. डॉ हीरालाल जैन और डॉ आ. ने. उपाध्ये, जीवराज ग्रन्थमाला शोलापुर, सन् १९४३, १९५२ ई.।

तैत्तरीय उपनिषद्— गीताप्रेस, गोरखपुर, सन् १९३७ई.

त्रिकालवर्त्ती महापुरुष— सं. संग्रहकर्त्ता परमपूज्य १०८ श्री आदिसागर जी शेडवाल

दादू की बानी— वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

पदमावत— सं. डॉ वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी) वि. सं. २०१२।

परमात्मप्रकाश— सं. डॉ. आ. ने. उपाध्ये, रायचन्द्र शास्त्रशाला, अगास, (बम्बई) सन् १९६० ई.।

पाहुडदोहा— मुनिरामसिंह, सं. डॉ. हीरालाल जैन, जैन ग्रन्थमाला, कारंजा, १९६५ ई.।
प्रवचनसार (अप्रकाशित)—ले. देवीदास (हस्तलिखित)
प्राकृत पैंगलम्— सं. डॉ. भोलाशंकर व्यास, वाराणसी. सन् १९६२ ई.
प्राचीन हिन्दी काव्य— सं. अचार्य विश्वनाथ सिंह, पटना, १९८९ ई.
बिहारी रत्नाकर— सं. जगन्नाथदास रत्नाकर, वाराणसी, सन् १९५१ ई.
बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास— गोरेलाल तिवारी, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सन् १९३३ ई.
बुन्देल-वैभव— गौरीशंकर द्विवेदी, बुन्देल वैभव ग्रन्थमाला, टीकमगढ़, सन् १९३३ ई.
बृहत्कथाकोश— हरिषेण, सं. डॉ. ए.एन. उपाध्ये, सिंघी जैन सीरीज, सन् १९४३.
बृहत्कल्पसूत्र— श्वेताम्बर सभा, रतलाम
बृहत्स्वयम्भूस्तोत्र प्रदीपिका— ले. समन्तभद्र सं. प्रो. उदयचन्द्र जैन, श्री गणेशवर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान. वाराणसी, सन् १९९३
ब्रह्माण्डपुराण— वैंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सन् १९१३.
भक्तामर स्तोत्र— मुनि मानतुंग, बृहज्जिनवाणी संग्रह, कलकत्ता
महापुराण— ले. जिनसेन, सं. पन्नालाल जैन. भारतीय ज्ञानपीठ, काशी १९६५ ई.
मानसार— पी. के आचार्या, आक्सफौर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लन्दन
मीरा की प्रेमसाधना— भुवनेश्वरनाथ मिश्र माधव, राजकमल, प्रकाशन, दिल्ली
मीरा की शब्दावली— वेलवेडियर प्रेस,
मीरा पदावली — वेलवेडियर प्रेस,
मीराबाई — डॉ. प्रभात, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई, सन् १९६५ ई.
मीराबाई का जीवन चरित— मुंशी देवीप्रसाद
योगसार— जोइन्दुमुनि, परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई सन् १९३७ई.
रामचरितमानस— ले. तुलसीदास, सं. हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर सन् १८८९ ई.
विनयपत्रिका— ले. तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, सन् १९५० ई.
शिल्परत्न— गणपति शास्त्री, गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेन्द्रम, सन् १९२२ ई.
श्री वर्त्तमान चतुर्विंशति पूजा मण्डल विधान— सं. पं. मोतीलाल, द्रोणगिरि सन् १९७१ ई.
संतकबीर की साखी— वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
संतकाव्य— परशुराम चतुर्वेदी, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५२ ई.
संतसुधासार— सं. वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मण्डल, प्रकाशन, नई दिल्ली सन् १९५३ ई.
सायणभाष्य— ए बर्नेल, सन् १८७३ ई.
साहित्यिक निबन्ध— राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, सन् १९६८ई.

सुन्दर-दर्शन— डॉ. त्रिलोकी नारायण दीक्षित, किताबमहल, इलाहाबाद, सन् १९५३ई.
सूर और उनका साहित्य- डॉ. हरिवंश लाल शर्मा, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़
सूर की काव्यसाधना— डॉ. गोविन्दराम शर्मा, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, सन् १९७० ई.
सूर के सौ कूट— चुन्नीलाल शेष, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, सन् १९६६ ई.
सूरसागर— सं. राधाकृष्णदास, बेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
सूरसारावली— वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
हिन्दी काव्यधारा— राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९४५ ई.
हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास— नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई, १९१६ ई.
हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास— डॉ कामता प्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी सन् १९४७ ई.
हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि— डॉ. प्रेमसागर जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९६४ ई.
हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन. भाग. १-२ — डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९५६ ई.
हिन्दी साहित्य का आदिकाल— डॉ हजारी प्रसाद द्विवेदी, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद, पटना, सन् १९५६ ई.
हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास— आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, अत्तर चन्द कपूर एण्ड सन्स, देहली, अम्बाला, सन् १९५२ ई.
हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ— जयकिशन खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, सन् १९६९ ई.

पत्र-पत्रिकाएँ

अनेकान्त— वर्ष ११, किरण ७—८ अक्टूबर १९५२
अनेकान्त— वर्ष ११ किरण १९. नवम्बर १९५२
अनेकान्त— वर्ष २०, किरण ४. अक्टूबर
अनेकान्त वर्ष २६, किरण ६
जैन सन्देश— १४ दिसम्बर १९८९
जैन सन्देश— २१-२८ दिसम्बर १९८९
जैन सन्देश— ११ जनवरी १९९०
जैन सन्देश— ८ मार्च १९९०
जैन सन्देश— १५ मार्च १९९०
जैन सन्देश— २२ मार्च १९९०
जैन सन्देश— २९ मार्च १९९०
जैन सन्देश— ५ अप्रैल १९९०

सम्पादिका की अन्य रचनाएँ

१. *महाकवि **सिंह** एवं उनका अपभ्रंश महाकाव्य-**पज्जुण्णचरिउ*** (अद्यावधि अप्रकाशित दुर्लभ पाण्डुलिपि का सर्व प्रथम सम्पादन अनुवाद एवं समीक्षा)।

२. ***महावीररास***(राजस्थानी-भाषा के अद्यावधि अप्रकाशित महाकाव्य की दुर्लभ पाण्डुलिपि का सर्वप्रथम सम्पादन-अनुवाद एवं समीक्षा)।

३. ***देवीदास विलास*** (बुन्देली हिन्दी के रीतिकालीन महाकवि देवीदास की अप्रकाशित दुर्लभ पाण्डुलिपियों का सम्पादन एवं समीक्षा)

४. *मध्यकालीन जैन सट्टक-नाटक-संग्रह*

५. *प्राच्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान के महामेरु: आचार्य कुन्दकुन्द।*

६. *हिन्दी के प्रसिद्ध लोककवि।*

७. *महाकवि कालिदास और राजा भोज*

८. *महाकवि कोऊहल कृत **लीलावईकहा**-*प्राकृत-महाकाव्य (छात्रोपयोगी संस्करण)।

९. ***कुमारपालचरियं*** (आचार्य हेमचन्द्र) छात्रोपयोगी संस्करण।

१०. *बाहुबलिचरित-साहित्य: सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन*

११. ***सेतुबन्ध*** (प्राकृत)- महाकाव्य, महाकवि प्रवरसेन छात्रोपयोगी संस्करण।

१२. ***आरामसोहाकहा-***(प्राकृत-भाषा के प्राचीन लघु-उपन्यास का सर्वप्रथम हिन्दी अनुवाद समीक्षा सहित)